कुटुम्बी न होनेपर भी उत्तराधिकारी बताये गये हैं[1]। इन सबका वर्णन मुझसे सुनो ।। ३२ ।।

स्वयंजातः प्रणीतश्च तत्समः पुत्रिकासुतः ।
पौनर्भवश्च कानीनः भगिन्यां यश्च जायते ।। ३३ ।।

'पहला पुत्र वह है, जो विवाहिता पत्नीसे अपने द्वारा उत्पन्न किया गया हो; उसे 'स्वयंजात' कहते हैं। दूसरा प्रणीत कहलाता है, जो अपनी ही पत्नीके गर्भसे किसी उत्तम पुरुषके अनुग्रहसे उत्पन्न होता है। तीसरा जो अपनी पुत्रीका पुत्र हो, वह भी उसके ही समान माना गया है। चौथे प्रकारके पुत्रकी पौनर्भव[2] संज्ञा है, जो दूसरी बार ब्याही हुई स्त्रीसे उत्पन्न हुआ हो। पाँचवें प्रकारके पुत्रकी कानीन संज्ञा है (विवाहसे पहले ही जिस कन्याको इस शर्तके साथ दिया जाता है कि इसके गर्भसे उत्पन्न होनेवाला पुत्र मेरा पुत्र समझा जायगा उस कन्याके पुत्रको 'कानीन' कहते हैं)[3]। जो बहनका पुत्र (भानजा) है, वह छठा कहा गया है ।। ३३ ।।

दत्तः क्रीतः कृत्रिमश्च उपगच्छेत् स्वयं च यः ।
सहोढो ज्ञातिरेताश्च हीनयोनिधृतश्च यः ।। ३४ ।।

'अब छः प्रकारके अबन्धुदायाद पुत्र कहे जाते हैं—दत्त (जिसे माता-पिताने स्वयं समर्पित कर दिया हो), क्रीत (जिसे धन आदि देकर खरीद लिया गया हो), कृत्रिम—जो स्वयं मैं आपका पुत्र हूँ, यों कहकर समीप आया हो, सहोढ (जो कन्यावस्थामें ही गर्भवती होकर ब्याही गयी हो, उसके गर्भसे उत्पन्न पुत्र सहोढ कहलाता है), ज्ञातिरेता (अपने कुलका पुत्र) तथा अपनेसे हीन जातिकी स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र। ये सभी अबन्धुदायाद हैं ।। ३४ ।।

पूर्वपूर्वतमाभावं मत्वा लिप्सेत वै सुतम् ।
उत्तमादवराः पुंसः काङ्क्षन्ते पुत्रमापदि ।। ३५ ।।

'इनमेंसे पूर्व-पूर्वके अभावमें ही दूसरे-दूसरे पुत्रकी अभिलाषा करे। आपत्तिकालमें नीची जातिके पुरुष श्रेष्ठ पुरुषसे भी पुत्रोत्पत्तिकी इच्छा कर सकते हैं ।। ३५ ।।

अपत्यं धर्मफलदं श्रेष्ठं विन्दन्ति मानवाः ।
आत्मशुक्रादपि पृथे मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।। ३६ ।।

'पृथे! अपने वीर्यके बिना भी मनुष्य किसी श्रेष्ठ पुरुषके सम्बन्धसे श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त कर लेते हैं और वह धर्मका फल देनेवाला होता है, यह बात स्वायम्भुव मनुने कही है ।। ३६ ।।

तस्मात् प्रहेष्याम्यद्य त्वां हीनः प्रजननात् स्वयम् ।
सदृशाच्छ्रेयसो वा त्वं विद्ध्यपत्यं यशस्विनि ।। ३७ ।।

'अतः यशस्विनी कुन्ती! मैं स्वयं संतानोत्पादनकी शक्तिसे रहित होनेके कारण तुम्हें आज दूसरेके पास भेजूँगा। तुम मेरे सदृश अथवा मेरी अपेक्षा भी श्रेष्ठ पुरुषसे संतान प्राप्त करो' ।। ३७ ।।

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सम्भवपर्वणि पाण्डुपृथासंवादे ऊनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।। ११९ ।।

इस प्रकार श्रीमहाभारत आदिपर्वके अन्तर्गत सम्भवपर्वमें पाण्डु-पृथा-संवादविषयक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ।। ११९ ।।

[redacted]

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः ।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचनाः ।। २५ ।।

अग्नि कभी ईंधनसे तृप्त नहीं होती, समुद्र कभी नदियोंसे तृप्त नहीं होता, मृत्यु समस्त प्राणियोंको एक साथ पा जाय तो भी उनसे तृप्त नहीं होती; इसी प्रकार सुन्दर नेत्रोंवाली युवतियाँ पुरुषोंसे कभी तृप्त नहीं होतीं ।। २५ ।।

इदमन्यच्च देवर्षे रहस्यं सर्वयोषिताम् ।
दृष्ट्वैव पुरुषं हृद्यं योनिः प्रक्लिद्यते स्त्रियाः ।। २६ ।।

देवर्षे! सम्पूर्ण रमणियोंके सम्बन्धमें दूसरी भी रहस्यकी बात यह है कि किसी मनोरम पुरुषको देखते ही स्त्रीकी योनि गीली हो जाती है ।। २६ ।।

कामानामपि दातारं कर्तारं मनसां प्रियम् ।
रक्षितारं न मृष्यन्ति स्वभर्तारमलं स्त्रियः ।। २७ ।।

सम्पूर्ण कामनाओंके दाता तथा मनचाही करनेवाला पति भी यदि उनकी रक्षामें तत्पर रहनेवाला हो तो वे अपने पतिके शासनको भी सहन नहीं कर सकतीं ।। २७ ।।

न कामभोगान् विपुलान् नालंकारान् न संश्रयान् ।
तथैव बहु मन्यन्ते यथा रत्यामनुग्रहम् ।। २८ ।।

वे न तो काम-भोगकी प्रचुर सामग्रीको, न अच्छे-अच्छे गहनोंको और न उत्तम घरोंको ही उतना अधिक महत्त्व देती हैं, जैसा कि रतिके लिये किये गये अनुग्रहको ।। २८ ।।

अन्तकः पवनो मृत्युः पातालं वडवामुखम् ।
क्षुरधारा विषं सर्पो वह्निरित्येकतः स्त्रियः ।। २९ ।।

यमराज, वायु, मृत्यु, पाताल, बड़वानल, छुरेकी धार, विष, सर्प और अग्नि—ये सब विनाशके हेतु एक तरफ और स्त्रियाँ अकेली एक तरफ बराबर हैं ।। २९ ।।

यतश्च भूतानि महान्ति पञ्च
यतश्च लोका विहिता विधात्रा ।
यतः पुमांसः प्रमदाश्च निर्मिता-
स्तदैव दोषाः प्रमदासु नारद ।। ३० ।।

नारद! जहाँसे पाँचों महाभूत उत्पन्न हुए हैं, जहाँसे विधाताने सम्पूर्ण लोकोंकी सृष्टि है तथा जहाँसे पुरुषों और स्त्रियोंका निर्माण हुआ है, वहींसे स्त्रियोंमें ये दोष भी रचे (अर्थात् ये स्त्रियोंके स्वाभाविक दोष हैं) ।। ३० ।।

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि पञ्चचूडानारदसंवादे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ।। ३८ ।।

समांसैर्भोजनैः स्निग्धैर्मद्यैर्गन्धविलेपनैः।
वस्त्रैर्मनोरमैर्माल्यैः कामः स्त्रीषु विजृम्भते॥३५॥

दुर्जन, शिल्पी, दास, दुष्ट व्यक्ति, ढक्का वाद्य तथा स्त्री, ताड़न से ही ये नम्र होते हैं। ये सत्कार के भागी नहीं होते। किसी काम के लिये लगाये जाने पर भृत्य का स्वभाव पता चलता है। दुःख काल में बन्धुओं की परीक्षा होती है। आपत्ति में मित्र का स्वभाव पता चलता है। सम्पत्ति नाश होने पर पत्नी के भाव का ज्ञान होता है। स्त्री पुरुष से दूना भोजन करती है। उनकी बुद्धि चौगुनी होती है। उनमें काम वासना पुरुष से आठ गुनी अधिक होती है। निद्रा द्वारा निद्रा पर विजय नहीं मिलती। काम क्रीड़ा से स्त्री पर विजय नहीं होती। काठ द्वारा कोई अग्नि को नहीं जीत सकता। मद्य पीने से कोई तृष्णा को नहीं जीत सकेगा। मांसादि स्निग्ध आहार, कई तरह की मदिरा, मनोहर अच्छे वस्त्र तथा उत्तम माला से स्त्री में काम भाव प्रकट होता है॥३१-३५॥

ब्रह्मचर्य्येऽपि वक्तव्यं प्राप्तं मन्मथचेष्टितम्।
हृद्यं हि पुरुषं दृष्ट्वा योनिः प्रक्लिद्यते स्त्रियाः॥३६॥
सुवेशं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं यदि वा सुतम्।
योनिः क्लिद्यति नारीणां सत्यं सत्यं हि शौनक॥३७॥
नद्यश्च नार्य्यश्च समस्वभावाः स्वतन्त्रभावे गमनादिकञ्च।
तोयैश्च दोषैश्च निपातयन्ति नद्यो हि कूलानि कुलानि नार्य्यः॥३८॥
नदी पातयते कूलं नारी पातयते कुलम्।
नारीणाञ्च नदीनाञ्च स्वच्छन्दा ललिता गतिः॥३९॥

ब्रह्मचर्य स्थिति में पुरुष का कामभाव उभरता है। मनोहर व्यक्ति को देख कर स्त्रियों की योनि से स्राव होने लगता है। पिता प्रभृति गुरुजन, किसी भिक्षुक अथवा उत्तम पोशाक वाले धनी को देखकर स्त्रियों की कामभावना दीप्त हो उठती है। हे शौनक! मेरा यह वचन सत्य है। नदी तथा नारी का स्वभाव एक तरह का होता है। नदी (कूल) किनारे को गिरा देती है। नारी कुल को नष्ट कर देती है। दोनों की ही यह स्वच्छन्द तथा ललित गति है॥३६-३९॥

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना॥४०॥

अग्नि में चाहे कितनी ही लकड़ी छोड़ी जाय, अग्नि की तृप्ति नहीं होती, उसे और भी लकड़ी को भस्म करने की कामना बनी रहती है। समुद्र में चाहे जितनी नदियां गिरें, वह तृप्त नहीं होता। यम सभी प्राणियों का संहार करके भी तृप्त नहीं होते। नारियों की आकांक्षा अनेक पुरुषों के संभोग से भी तृप्त नहीं होती!॥४०॥

न तृप्तिरस्ति शिष्टानामिष्टानां प्रियवादिनाम्।
सुखानाञ्च सुतानाञ्च जीवितस्य वरस्य च॥४१॥
राजा न तृप्तो धनसञ्चयेन न सागरस्तृप्तिमगाज्जलेन।
न पण्डितस्तृप्यति भाषितेन तृप्तं न चक्षुर्नृपदर्शनेन॥४२॥
स्वकर्मधर्मार्जितजीवितानां शास्त्रेषु दारेषु सदा रतानाम्।
जितेन्द्रियाणामतिथिप्रियाणां गृहेऽपि मोक्षः पुरुषोत्तमानाम्॥४३॥

शिष्ट पुरुष से बातें करके कोई भी वितृष्ण नहीं होता, साधु व्यक्ति से जितनी भी बात करिये बात करने की इच्छा बलवती होती जाती है। वांछित सुख से किसी की तृप्ति नहीं होती। प्रिय वाणी वाले पुत्र से कोई तृप्त नहीं होता। अपने जीवन से किसी की तृप्ति नहीं होती (वह और भी जीते रहना चाहता है)। राजा धन से, महासमुद्र जल से, पण्डित विद्वान् सत्कथा से, नेत्र नृप दर्शन से कभी तृप्त नहीं होते। अपने धर्म-कर्म के प्रति तत्पर, शास्त्र में तथा केवल अपनी पत्नी में रत, इन्द्रियजित-अतिथिप्रिय लोग ही श्रेष्ठतम मनुष्य होते हैं। वे गृही रहकर भी मोक्ष पाते हैं॥४१-४३॥

मनोऽनुकूलाः प्रमदा रूपवत्यः स्वलङ्कृताः।
वासः प्रासादपृष्ठेषु स्वर्गः स्याच्छुभकर्मणः॥४४॥
न दानेन न मानेन नार्जवेन न सेवया। न शास्त्रेण न शस्त्रेण सर्वथा विषमाः स्त्रियः॥४५॥

सत्कर्म करने वाले व्यक्ति अनुकूला मनोहर अलंकारों से सजी पत्नी को पाकर अट्टालिका में रह स्वर्गसुख भोगते हैं। स्त्रियां सर्वदा विषम बुद्धि होती हैं। उनको कोई भी दान-सम्मान से सन्तुष्ट नहीं कर पाता। उनको सरल व्यवहार तथा सेवा से भी वशीभूत नहीं कर सकते। अस्त्र से डराकर तथा शास्त्रोपदेश से भी उन पर नियन्त्रण नहीं हो पाता॥४४-४५॥

शनैर्विद्या शनैरर्थाः शनैः पर्वतमारुहेत्। शनैः कामञ्च धर्मञ्च पञ्चैतानि शनैः शनैः॥४६॥

मुझे बतलाइये ॥१७॥ **देवी ने कहा—** निस्सन्देह स्त्रियों का मन सदैव पुरुषों में लगा रहता है, इस मनुष्य योनि में चाहे वह उचित हो या अनुचित ॥१८॥ हे नारद ! सुन्दर वेष वाले पुरुष, भाई तथा पुत्र को भी देखकर स्त्रियों की योनि में क्लेदन होने लगता है ॥१९॥ हे नारद ! व्यभिचारयोग्य स्थान, समय तथा प्रार्थयिता के अभाव में ही स्त्रियों का सतीत्व सुरक्षित रह सकता है ॥२०॥ नारी घी के घड़े के समान है और पुरुष तप्त अंगार के समान होता है, इसीलिए घृत के समान नारी को तथा अग्नि के समान पुरुष को एकत्र न रखे ॥२१॥ जिसरह मदमत हाथी को अंकुश और मुग्दर के द्वारा वश में रखा जाता है उसीतरह स्त्री को नियामक तथा श्रेष्ठ रक्षक ही अपने वश में रख सकते हैं ॥२२॥ स्त्री की कुमार्यावस्था में पिता, यौवनावस्था में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र रक्षा करता है। अतएव स्त्री को स्वतन्त्रता नहीं देना चाहिए ॥२३॥ इसीलिए स्वतन्त्र होने पर अपनी इच्छानुसार सुन्दर स्त्रियाँ किसी भी पुरुष के द्वारा प्रार्थना करने पर उसकी इच्छा के अनुसार आचरण करने लगती हैं ॥२४॥ जिसतरह रक्षा के अभाव में तैयार भोजन को कुत्ते तथा कौए खा लेते हैं, उसीतरह स्वच्छन्द होने पर नारी दुष्टों की सङ्गति कर लेती है ॥२५॥ उसके संसर्ग के कारण वंश दूषित हो जाता है, दूसरे वीर्य से उत्पन्न होने वाला वर्णसङ्कर कहलाता है ॥२६॥ जारज (पर पुरुष से उत्पन्न) पापी सङ्कर (दोगला) नरकगामी होता है। उसके बाद वह पृथिवी पर सभी कीट योनियों में जन्म लेता है ॥२७॥ हे ब्राह्मण ! उसके बाद दुष्टा नारी के कारण पूरा वंश ही म्लेच्छ जाति का हो जाता है, अतएव दुष्टा नारी को कभी स्वीकार करना चाहिए ॥२८॥ इस तरह स्त्रियों के दोष को जानकर भी जो उसे क्षमा कर देता है वह

प्रकार से वह धृष्ट हो जाती है । वह कुछ धन लेकर स्वतन्त्र बन जाती है ॥२१॥ वह जिसके साथ व्यवहार करती है वह उसको मारकर उसके द्रव्य को लेकर उसको कहीं फेंक देता है । यदि पहले पति मर जाता है तो अग्नि में प्रवेश नहीं करती है ॥२२॥ वह सोचती है कि विधवा हो जाने पर सारा मेरा धन धर्मार्थ हो जायेगा । विधवा हो जाने पर इस तरह से मन में निश्चित करके वह दिन अथवा रात में योनि रूपी कुण्ड को प्राप्त करके वह दिन अथवा रात्रि में एकान्त में जाकर अपने वस्त्र तथा योनि को खोलकर॥२३-२४॥ योनि पर हाथ रखकर दु:खी होकर कहती है कि अरे योनि तुमने कैसा कर्म किया है ? तुमने भयङ्कर पाप किया है ॥२५॥ क्योंकि तुमने दूसरे शिश्न को अपने भीतर प्रवेश कराया है । इस पाप कार्य को करने वाले ने मेरी सेवा भी नहीं की ॥२६॥ इतना होने पर भी यदि उसकी योनि में खुजली पैदा होती है तो वह अपनी अङ्गुलि को अपनी योनि में डाल देती है और वह खुजली की बुद्धि से विचित्र प्रकार के चेष्टायें करती हैं ॥२७॥ वह योनि को दोनों हाथों से फैलाकार उसको रगड़ती है । अत्यन्त दु:खी होकर वह अपने मुख को खोलकर बार-बार अपने दोनों पैरों को पटकती है ॥२८॥ वह काठ अथवा खाट को पकड़ कर अपनी इच्छा भर स्तनों को दबाती है । उसके पश्चात् चित्त में विकार आ जाने पर वह व्यभिचारिणी हो जाती है ॥२९॥ अथवा दिन में किसी पुरुष के साथ बातें करती है, घर में रात्रि में या संध्या के समय, या विशिखाओं (गलियों) में अपना दूसरा वेष बदलकर जिस किसी व्यक्ति के द्वारा उपभोग की जाती

हो गया ।२५। हे नृप ! मद्य पान के कारण स्मृति नष्ट हो जाने से तथा अल्प सत्व के नाते स्वभावत: उनकी जाँघे भीग गईं। पुराणों में यह बात प्रसिद्ध है कि ब्रह्मचारिणी होती हुई सती स्त्रियों की भी योनि, अत्यन्त मनोहर पुरुष को देखकर (मैथुन के लिए) तर (रसपूर्ण) होने लगती हैं।२६-२८। लोक में देखा भी जाता है कि अत्यन्त मद्य पान करने के नाते लज्जाशील स्त्रियाँ अपनी लाज छोड़ कर निर्भय हो जाती हैं। क्योंकि मांस भोजन, उत्तम आसव का पान एव सुगन्धपूर्ण उत्तम वस्त्रों का धारण करना ये सभी स्त्रियों के कामोत्पादक बताये गये हैं।२९-३०। लोगों के कल्याणार्थ शुक्राचार्य ने भी कहा है कि—विद्वानों को अत्यन्त मद्य पान न करना चाहिए।३१। पश्चात् साम्ब को वहाँ भेजकर नारद भी उसके पीछे ही शीघ्र वहाँ पहुँचे ।३२। उत्तम एवं प्रिय नारद ऋषि को वहाँ आये हुए देखकर वे स्त्रियाँ जो (मद्य) पान से विह्वल (नशे में चूर) हो रही थीं, (प्रणामार्थ) शीघ्र उठकर खड़ी हो गईं।३३। खड़ी होने पर उनके स्खलित वीर्य का बूँद वस्त्रों से चूकर नीचे पत्तों पर गिर पड़ा। उसे देखकर कृष्ण ने क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दिया कि—मुझे त्याग कर तुम्हारे मन औरों में आसक्त हुए इसलिए तुम्हें पतिलोक एवं स्वर्गमार्ग की प्राप्ति अंत में हो सकेगी। और पतिलोक तथा स्वर्ग से भ्रष्ट होकर उस समय अनाथ होने के नाते तुम्हें चोरों के अधीन रहना पड़ेगा।३४-३७

सूमन्तु बोले—कृष्ण के स्वर्ग प्रस्थान करने के पश्चात उन स्त्रियों का शापवश अर्जुन के देखते ही

6:32 AM
Draw 53

पुराणमृषिभिर्दृष्टं धर्मविद्भिर्महात्मभिः ।। ३ ।।

अब मैं तुम्हें यह धर्मका तत्त्व बतलाता हूँ, सुनो। यह पुरातन धर्मतत्त्व धर्मज्ञ महात्मा ऋषियोंने प्रत्यक्ष किया है ।। ३ ।।

धर्ममेवं जनाः सन्तः पुराणं परिचक्षते ।
भर्ता भार्यां राजपुत्रि धर्म्यं वाधर्म्यमेव वा ।। ४ ।।
यद् ब्रूयात् तत् तथा कार्यमिति वेदविदो विदुः ।
विशेषतः पुत्रगृध्नी हीनः प्रजननात् स्वयम् ।। ५ ।।
यथाहमनवद्याङ्गि पुत्रदर्शनलालसः ।
तथा रक्ताङ्गुलितलः पद्मपत्रनिभः शुभे ।। ६ ।।
प्रसादार्थं मया तेऽयं शिरस्यभ्युद्यतोऽञ्जलिः ।
मन्नियोगात् सुकेशान्ते द्विजातेस्तपसाधिकात् ।। ७ ।।
पुत्रान् गुणसमायुक्तानुत्पादयितुमर्हसि ।
त्वत्कृतेऽहं पृथुश्रोणि गच्छेयं पुत्रिणां गतिम् ।। ८ ।।

साधु पुरुष इसीको प्राचीन धर्म कहते हैं। राजकन्ये! पति अपनी पत्नीसे जो बात कहे, वह धर्मके अनुकूल हो या प्रतिकूल, उसे अवश्य पूर्ण करना चाहिये—ऐसा वेदज्ञ पुरुषोंका कथन है। विशेषतः ऐसा पति, जो पुत्रकी अभिलाषा रखता हो और स्वयं संतानोत्पादनकी शक्तिसे रहित हो, जो बात कहे, वह अवश्य माननी चाहिये। निर्दोष अंगोंवाली शुभलक्षणे! मैं चूँकि पुत्रका मुँह देखनेके लिये लालायित हूँ, अतएव तुम्हारी प्रसन्नताके लिये मस्तकके समीप यह अंजलि धारण करता हूँ, जो लाल-लाल अंगुलियोंसे युक्त तथा कमलदलके समान सुशोभित है। सुन्दर केशोंवाली प्रिये! तुम मेरे आदेशसे तपस्यामें बढ़े-चढ़े हुए किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणके साथ समागम करके गुणवान् पुत्र उत्पन्न करो। सुश्रोणि! तुम्हारे प्रयत्नसे मैं पुत्रवानोंकी गति प्राप्त करूँ, ऐसी मेरी अभिलाषा है ।। ४—८ ।।

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्ता ततः कुन्ती पाण्डुं परपुरंजयम् ।
प्रत्युवाच वरारोहा भर्तुः प्रियहिते रता ।। ९ ।।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार कही जानेपर पतिके प्रिय और हितमें लगी रहनेवाली सुन्दरांगी कुन्ती शत्रुओंकी राजधानीपर विजय पानेवाले महाराज पाण्डुसे इस प्रकार बोली— ।। ९ ।।

(अधर्मः सुमहानेष स्त्रीणां भरतसत्तम ।
यत् प्रसादयते भर्ता प्रसाद्यः क्षत्रियर्षभ ।।
शृणु चेदं महाबाहो मम प्रीतिकरं वचः ।।)

'भरतश्रेष्ठ! क्षत्रियशिरोमणे! स्त्रियोंके लिये यह बड़े अधर्मकी बात है कि पति ही उनसे प्रसन्न होनेके लिये बार-बार अनुरोध करे; क्योंकि नारीका ही यह कर्तव्य है कि वह पतिको प्रसन्न रखे। महाबाहो! आप मेरी यह बात सुनिये। इससे आपको बड़ी प्रसन्नता होगी।

पितृवेश्मन्यहं बाला नियुक्तातिथिपूजने ।
उग्रं पर्यचरं तत्र ब्राह्मणं संशितव्रतम् ।। १० ।।
निगूढनिश्चयं धर्मे यं तं दुर्वाससं विदुः ।
... ं सर्वयत्नैरतोषयम् ।। ११ ।।

870 / 15433

... मैं पिताके घर थी, मुझे अतिथियोंके सत्कारका काम सौंपा गया था। वहाँ कठोर व्रतका पालन करनेवाले एक उग्रस्वभावके ब्राह्मणकी, जिनका धर्मके

7:23 AM

Draw 53

समान माना गया है। चौथे प्रकारके पुत्रकी पौनर्भव[2] संज्ञा है, जो दूसरी बार ब्याही हुई स्त्रीसे उत्पन्न हुआ हो। पाँचवें प्रकारके पुत्रकी कानीन संज्ञा है (विवाहसे पहले ही [illegible] कन्याको इस शर्तके साथ दिया जाता है कि इसके गर्भसे उत्पन्न होनेवाला पुत्र मेर[illegible] समझा जायगा उस कन्याके पुत्रको 'कानीन' कहते हैं)[3]। जो बहनका पुत्र (भानजा) है, वह छठा कहा गया है ।। ३३ ।।

दत्तः क्रीतः कृत्रिमश्च उपगच्छेत् स्वयं च यः ।
सहोढो ज्ञातिरेताश्च हीनयोनिधृतश्च यः ।। ३४ ।।

'अब छः प्रकारके अबन्धुदायाद पुत्र कहे जाते हैं—दत्त (जिसे माता-पिताने स्वयं समर्पित कर दिया हो), क्रीत (जिसे धन आदि देकर खरीद लिया गया हो), कृत्रिम—जो स्वयं मैं आपका पुत्र हूँ, यों कहकर समीप आया हो, सहोढ (जो कन्यावस्थामें ही गर्भवती होकर ब्याही गयी हो, उसके गर्भसे उत्पन्न पुत्र सहोढ कहलाता है), ज्ञातिरेता (अपने कुलका पुत्र) तथा अपनेसे हीन जातिकी स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र। ये सभी अबन्धुदायाद हैं ।। ३४ ।।

पूर्वपूर्वतमाभावं मत्वा लिप्सेत वै सुतम् ।
उत्तमादवराः पुंसः काङ्क्षन्ते पुत्रमापदि ।। ३५ ।।

'इनमेंसे पूर्व-पूर्वके अभावमें ही दूसरे-दूसरे पुत्रकी अभिलाषा करे। आपत्तिकालमें नीची जातिके पुरुष श्रेष्ठ पुरुषसे भी पुत्रोत्पत्तिकी इच्छा कर सकते हैं ।। ३५ ।।

अपत्यं धर्मफलदं श्रेष्ठं विन्दन्ति मानवाः ।
आत्मशुक्रादपि पृथे मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।। ३६ ।।

'पृथे! अपने वीर्यके बिना भी मनुष्य किसी श्रेष्ठ पुरुषके सम्बन्धसे श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त कर लेते हैं और वह धर्मका फल देनेवाला होता है, यह बात स्वायम्भुव मनुने कही है ।। ३६ ।।

तस्मात् प्रहेष्याम्यद्य त्वां हीनः प्रजननात् स्वयम् ।
सदृशाच्छ्रेयसो वा त्वं विद्ध्यपत्यं यशस्विनि ।। ३७ ।।

'अतः यशस्विनी कुन्ती! मैं स्वयं संतानोत्पादनकी शक्तिसे रहित होनेके कारण तुम्हें आज दूसरेके पास भेजूँगा। तुम मेरे सदृश अथवा मेरी अपेक्षा भी श्रेष्ठ पुरुषसे संतान प्राप्त करो' ।। ३७ ।।

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि सम्भवपर्वणि पाण्डुपृथासंवादे ऊनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।। ११९ ।।

इस प्रकार श्रीमहाभारत आदिपर्वके अन्तर्गत सम्भवपर्वमें पाण्डु-पृथा-संवादविषयक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ।। ११९ ।।

---

१. बन्धु शब्दका अर्थ संस्कृत-शब्दार्थकौस्तुभमें आत्मबन्धु, पितृबन्धु, मातृबन्धु माना गया है, इसलिये बन्धुका अर्थ कुटुम्बी किया है। दायादका अर्थ उसी कोषमें 'उत्तराधिकारी' है। इसीलिये बन्धुदायादका अर्थ 'कुटुम्बी' होनेसे 'उत्तराधिकारी' किया है। इसके विपरीत, अबन्धुदायादका अर्थ अबन्धु यानी कुटुम्बी न होनेपर उत्तराधिकारी किया है।

२. 'पौनर्भव'का अर्थ पद्मचन्द्रकोषके अनुसार दूसरी बार ब्याही हुई स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र लिया गया है।

३. कानीन—यह अर्थ नीलकण्ठजीने अपनी टीकामें किया है।

861 / 15433

जैसे स्वभाववाली हैं, सो सब विदित है ।।१०।। हे देवर्षे! मुझे ऐसे प्रश्न में प्रवृत्त करने को योग्य नहीं हो, ऐसा कहने पर वह सुन्दर अप्सरा मौन हो गई ।।११।। तब देवर्षि श्रेष्ठ नारदजी उसका वह उत्तम वचन को सुनकर लोकों के हित की कामना से फिर उससे बोले ।।१२।। नारदजी बोले– हे सुमध्यमे! झूंठ बोलने में दोष होता है, सत्य में दोष नहीं होता है, ऐसा तू जान, इस कारण सत्य–सत्य कह ।।१३।। सनत्कुमारजी बोले– ऐसा कहने पर वह निश्चितबुद्धि, सुन्दर हास्य करनेवाली अप्सरा वेग से सनातन स्त्रीदोषों को सत्य–सत्य कहने लगी ।।१४।। पंचचूडा बोली– हे नारदजी! कुलीन, नाथवाली, रूपवाली स्त्रियां भी मर्यादा में नहीं रहती हैं, यह स्त्रियों में दोष है ।।१५।। स्त्रियों से अधिक पापी और कोई नहीं, स्त्रियां पापों का मूल हैं, ऐसा आप जानिये ।।१६।। स्त्रियां जाने हुए धनवाले, प्रत्येक रूपवाले यथेप्सित यतियों (संन्यासियों) के समीप प्राप्त होकर भी प्रतीक्षा करने में समर्थ नहीं होती ।।१७।। हे प्रभो! हम स्त्रियों का यह बड़ा बुरा धर्म है, कि पापी मनुष्यों को भी लज्जा का त्याग करके भजती हैं ।।१८।। जो मनुष्य स्त्री को चाहता है तथा उनके समीप जाता है, थोड़ी भी सेवा करता है, स्त्रियां उसी को चाहती हैं ।।१९।। मनुष्यों के बिना अर्थी होने से तथा पतियों के डर से बिना मर्यादावाली स्त्रियां स्वामी की मर्यादा में ठहरती हैं ।।२०।। इन स्त्रियों को कोई अमान्य नहीं और इनमें अवस्था का निश्चय नहीं है, सुरूप वा कुरूप मनुष्य को भोगती हैं ।।२१।। न तो भय से, न चिल्लाने से अथवा न अर्थ के निमित्त तथा न ज्ञाति, कुल सम्बन्ध से पति की मर्यादा में स्थित रहती हैं ।।२२।। कुलीन स्त्रियां यौवन में वर्तमान हुईं यथेच्छित आभूषण, वस्त्र पानेवाली व्यभिचारिणी स्त्रियों की संगति की अभिलाषा करती हैं ।।२३।। जो नित्य बहुत मानी हुईं प्रिय स्त्रियां रक्षा की जाती हैं, वे स्त्रियां भी कुब्जे, अन्धे, जड, बौने, लंगडे मनुष्यों में आसक्त होती हैं ।।२४।। हे देवर्षे! हे मुने! और भी जो कुत्सित मनुष्य हैं, उनमें आसक्त हो जाती हैं, इससे संसार में स्त्रियों को कोई अगम्य नहीं है ।।२५।। हे ब्रह्मन्! यदि किसी प्रकार मनुष्यों की गति नहीं होवे, तो स्त्रियां परस्पर आसक्त हो जाती हैं, अपने पतियों में प्रवृत्त नहीं होती हैं ।।२६।। पुरुषों के न मिलने से, कुटुम्ब के भय से तथा वध और बन्धन के भय से स्त्री हताश रहती हैं ।।२७।। चंचल स्वभाववाली, दुश्चेष्टावाली स्त्रियां उस प्रकार भाव से दुग्राह्य होती हैं, जैसे बुद्धिमान् पुरुष के रति के ग्रहण करने से वश में होती हैं ।।२८।। काष्ठों से अग्नि नहीं लिप्त होती है, नदियों से समुद्र नहीं तृप्त होता तथा काल सब प्राणियों से नहीं तृप्त होता और स्त्रियां पुरुषों से तृप्त नहीं होती हैं ।।२९।। हे देवर्षे! सम्पूर्ण स्त्रियों का यह और भी रहस्य है, कि मनुष्य को देखकर शीघ्र ही स्त्री की योनि गीली हो जाती है ।।३०।। अच्छी प्रकार

स्नान किये तथा सुगन्धि युक्त निर्मल मनुष्य को देखकर फूटे बर्तन से जल के समान स्त्रियों की योनि बहने लगती है ।।३१।। स्त्रियां शरीर को सुख देनेवाले मान और शान्ति के करनेवाले, परम रक्षा करनेवाले स्वामी को भी सहन नहीं करती हैं ।।३२।। न काम भोग से तथा न अलंकार धन के संचय करने से उस प्रकार का हित मानती हैं, जिस प्रकार रति परिग्रह से हित मानती हैं ।।३३।। काल शान्त करनेवाला मृत्यु, पाताल, बडवानल, अग्नि, क्षुरधारा, विष, सर्प, अग्नि यह एक ओर तथा एक तरफ स्त्री है ।।३४।। हे नारदजी! ब्रह्माजी ने जहां से पंचमहाभूत उत्पन्न किये तथा जहां से लोक उत्पन्न किये, जहां से पुरुष तथा स्त्री निर्माण की, परन्तु वहां स्त्रियों में सदा दोष ही विधान किये हैं ।।३५।। सनत्कुमारजी बोले– ऐसा उसका वचन सुन नारदजी सन्तुष्ट चित्त होकर, सब सत्य मानकर स्त्रियों में विरक्त हो गये ।।३६।। हे व्यासजी! इस प्रकार पंचचूडा ने कहा हुआ स्त्री स्वभाव आपसे आदर से कह दिया, क्या कुछ वैराग्य का कारण सुनना चाहते हो?।।३७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
स्त्रीस्वभाववर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।। २४ ।।

*****

9:18 PM

Draw 53

देवी कुन्तीने बड़ी उतावलीके साथ धर्मदेवताके लिये पूजाके उपहार अर्पित किये। तत्पश्चात् पूर्वकालमें महर्षि दुर्वासाने जो मन्त्र दिया था, उसका विधिपूर्वक जप किया ।। २ ।।

आजगाम ततो देवो धर्मो मन्त्रबलात् ततः ।
विमाने सूर्यसंकाशे कुन्ती यत्र जपस्थिता ।। ३ ।।

तब मन्त्रबलसे आकृष्ट हो भगवान् धर्म सूर्यके समान तेजस्वी विमानपर बैठकर उस स्थानपर आये, जहाँ कुन्तीदेवी जपमें लगी हुई थीं ।। ३ ।।

विहस्य तां ततो ब्रूयाः कुन्ति किं ते ददाम्यहम् ।
सा तं विहस्यमानापि पुत्रं देह्यब्रवीदिदम् ।। ४ ।।

तब धर्मने हँसकर कहा—'कुन्ती! बोलो, तुम्हें क्या दूँ?' धर्मके द्वारा हास्यपूर्वक इस प्रकार पूछनेपर कुन्ती बोली—'मुझे पुत्र दीजिये' ।। ४ ।।

संयुक्ता सा हि धर्मेण योगमूर्तिधरेण ह ।
लेभे पुत्रं वरारोहा सर्वप्राणभृतां हितम् ।। ५ ।।

तदनन्तर योगमूर्ति धारण किये हुए धर्मके साथ समागम करके सुन्दरांगी कुन्तीने एक ऐसा पुत्र प्राप्त किया, जो समस्त प्राणियोंका हित करनेवाला था ।। ५ ।।

ऐन्द्रे चन्द्रसमायुक्ते मुहूर्तेऽभिजितेऽष्टमे ।
दिवामध्यगते सूर्ये तिथौ पूर्णेऽतिपूजिते ।। ६ ।।
समृद्धयशसं कुन्ती सुषाव प्रवरं सुतम् ।
जातमात्रे सुते तस्मिन् वागुवाचाशरीरिणी ।। ७ ।।

तदनन्तर जब चन्द्रमा ज्येष्ठा नक्षत्रपर थे, सूर्य तुला राशिपर विराजमान थे, शुक्ल पक्षकी 'पूर्णा' नामवाली पञ्चमी तिथि थी और अत्यन्त श्रेष्ठ अभिजित् नामक आठवाँ मुहूर्त विद्यमान था; उस समय कुन्तीदेवीने एक उत्तम पुत्रको जन्म दिया, जो महान् यशस्वी था। उस पुत्रके जन्म लेते ही आकाशवाणी हुई— ।। ६-७ ।।

एष धर्मभृतां श्रेष्ठो भविष्यति नरोत्तमः ।
विक्रान्तः सत्यवाक् त्वेव राजा पृथ्व्यां भविष्यति ।। ८ ।।
युधिष्ठिर इति ख्यातः पाण्डोः प्रथमजः सुतः ।
भविता प्रथितो राजा त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।। ९ ।।
यशसा तेजसा चैव वृत्तेन च समन्वितः ।

'यह श्रेष्ठ पुरुष धर्मात्माओंमें अग्रगण्य होगा और इस पृथ्वीपर पराक्रमी एवं सत्यवादी राजा होगा। पाण्डुका यह प्रथम पुत्र 'युधिष्ठिर' नामसे विख्यात हो तीनों लोकोंमें प्रसिद्धि एवं ख्याति प्राप्त करेगा; यह यशस्वी, तेजस्वी तथा सदाचारी होगा' ।। ८-९½ ।।

धार्मिकं तं सुतं लब्ध्वा पाण्डुस्तां पुनरब्रवीत् ।। १० ।।

उस धर्मात्मा पुत्रको पाकर राजा पाण्डुने पुनः (आग्रहपूर्वक) कुन्तीसे कहा — ।। १० ।।

प्राहुः क्षत्रं बलज्येष्ठं बलज्येष्ठं सुतं वृणु ।
(अश्वमेधः क्रतुश्रेष्ठो ज्योतिश्श्रेष्ठो दिवाकरः ।
ब्राह्मणो द्विपदां श्रेष्ठो बलश्रेष्ठस्तु मारुतः ।।
मारुतं मरुतां श्रेष्ठं सर्वप्राणिभिरीडितम् ।
...ात् पुत्रार्थं वरवर्णिनि ।।
...सुतं स प्राणबलवान् नृषु ।)
ततस्तथोक्ता भर्त्रा त वायमेवाजहाव सा ।। ११ ।।

874 / 15433

जो ब्राह्मण अग्निहोत्रका त्याग करके खेती-किसानीमें लग गया है, वह वर्णसंकरताका प्रचार करनेवाला और शूद्रके समान माना गया है ।।

यस्य वेदश्रुतिर्नष्टा कर्षकश्चापि यो द्विजः ।
विकर्मसेवी कौन्तेय स वै वृषल उच्यते ।।

कुन्तीनन्दन! जिसने वैदिक श्रुतियोंको भुला दिया है तथा जो खेतमें हल जोतता है, अपने वर्णके विरुद्ध काम करनेवाला वह ब्राह्मण वृषल माना गया है ।।

वृषो हि धर्मो विज्ञेयस्तस्य यः कुरुते लयम् ।
वृषलं तं विदुर्देवा निकृष्टं श्वपचादपि ।।

वृष शब्दका अर्थ है धर्म; उसका जो लय करता है, उसको देवतालोग वृषल मानते हैं। वह चाण्डालसे भी नीच होता है ।।

स्तुतिभिर्ब्रह्मगीताभिर्यः शूद्रं स्तौति मानवः ।
न तु मां स्तौति पापात्मा स तु चण्डालतः समः ।।

जो पापात्मा मनुष्य ब्रह्मगीता आदिके द्वारा मेरी स्तुति न करके किसी शूद्रका स्तवन करता है, वह चाण्डालके समान है ।।

श्वदृतौ तु यथा क्षीरं ब्रह्म वै वृषले तथा ।
दुष्टतामेति तत् सर्वं शुना लीढं हविर्यथा ।।

जैसे कुत्तेकी खालमें रखा हुआ दूध और कुत्तेका चाटा हुआ हविष्य अशुद्ध होता है, उसी प्रकार वृषल मनुष्यकी बुद्धिमें स्थित वेद भी दूषित हो जाता है ।।

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः ।
धर्मशास्त्रं पुराणं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ।।

चार वेद, छः अंग, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण—ये चौदह विद्याएँ हैं ।।

यान्युक्तानि मया सम्यग् विद्यास्थानानि भारत ।
उत्पन्नानि पवित्राणि भुवनार्थं तथैव च ।।
तस्मात् तानि न शूद्रस्य स्प्रष्टव्यानि युधिष्ठिर ।
सर्वं च शूद्रसंस्पृष्टमपवित्रं न संशयः ।।

भरतनन्दन! मैंने जो विद्याके चौदह पवित्र स्थान पूर्णतया बताये हैं, वे तीनों लोकोंके कल्याणके लिये प्रकट हुए हैं। अतः शूद्रको इनका स्पर्श नहीं करना चाहिये। युधिष्ठिर! शूद्रके सम्पर्कमें आनेवाली सभी वस्तुएँ अपवित्र हो जाती हैं, इसमें संशय नहीं है ।।

लोके त्रीण्यपवित्राणि पञ्चामेध्यानि भारत ।
श्वा च शूद्रःश्वपाकश्च अपवित्राणि पाण्डव ।।

भारत! इस संसारमें तीन अपवित्र और पाँच अमेध्य हैं। पाण्डुनन्दन! कुत्ता, शूद्र और श्वपाक (चाण्डाल)—ये तीन अपवित्र होते हैं ।।

गायकः कुक्कुटो यूपो ह्युदक्या वृषलीपतिः ।
पञ्चैते स्युरमेध्याश्च स्प्रष्टव्या न कदाचन ।
स्पृष्ट्वैतानष्ट वै विप्रः सचैलो जलमाविशेत् ।।

तथा अश्लील गायक, मुर्गा, जिसमें वध करनेके लिये पशुओंको बाँधा जाय वह ख[illegible] रजस्वला स्त्री और वृषल जातिकी स्त्रीसे ब्याह करनेवाला द्विज—ये पाँच अमेध्य माने ग[illegible] हैं; इनका कभी भी स्पर्श नहीं करना चाहिये। यदि ब्राह्मण इन आठोंमेंसे किसीका स्पर्श कर [illegible]श करके स्नान करे ।।

[illegible]ादवमन्यन्ति ये नराः ।
नरकेष्वेव तिष्ठन्ति वर्षकोटिं नराधमाः ।।

10:16 PM

Post

ऋषि कोन होते है
और किस ऋषि की बात को काटी जाती है
और यह कहां लिखा है
तुम शूद्रों को कैसे पता
देखो यह कृष्ण कह रहा

कुन्तीनन्दन! जिसने वैदिक श्रुतियोंको भुला दिया है तथा जो खेतमें हल जोतता है, अपने वर्णके विरुद्ध काम करनेवाला वह ब्राह्मण वृषल माना गया है ।।

वृषो हि धर्मो विज्ञेयस्तस्य यः कुरुते लयम् ।
वृषलं तं विदुर्देवा निकृष्टं श्वपचादपि ।।

वृष शब्दका अर्थ है धर्म; उसका जो लय करता है, उसको देवतालोग वृषल मानते हैं। वह चाण्डालसे भी नीच होता है ।।

स्तुतिभिर्ब्रह्मगीताभिर्यः शूद्रं स्तौति मानवः ।
न तु मां स्तौति पापात्मा स तु चण्डालतः समः ।।

जो पापात्मा मनुष्य ब्रह्मगीता आदिके द्वारा मेरी स्तुति न करके किसी शूद्रका स्तवन करता है, वह चाण्डालके समान है ।।

श्वदृतौ तु यथा क्षीरं ब्रह्म वै वृषले तथा ।
दुष्टतामेति तत् सर्वं शुना लीढं हविर्यथा ।।

जैसे कुत्तेकी खालमें रखा हुआ दूध और कुत्तेका चाटा हुआ हविष्य अशुद्ध होता है, उसी प्रकार वृषल मनुष्यकी बुद्धिमें स्थित वेद भी दूषित हो जाता है ।।

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः ।
धर्मशास्त्रं पुराणं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ।।

चार वेद, छः अंग, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण—ये चौदह विद्याएँ हैं ।।

यान्युक्तानि मया सम्यग् विद्यास्थानानि भारत ।
उत्पन्नानि पवित्राणि भुवनार्थं तथैव च ।।
तस्मात् तानि न शूद्रस्य स्पृष्टव्यानि युधिष्ठिर ।

सर्वं च शूद्रसंस्पृष्टमपवित्रं न संशयः ।।

भरतनन्दन! मैंने जो विद्याके चौदह पवित्र स्थान पूर्णतया बताये हैं, वे तीनों लोकोंके कल्याणके लिये प्रकट हुए हैं। अतः शूद्रको इनका स्पर्श नहीं करना चाहिये। युधिष्ठिर! शूद्रके सम्पर्कमें आनेवाली सभी वस्तुएँ अपवित्र हो जाती हैं, इसमें संशय नहीं है ।।

लोके त्रीण्यपवित्राणि पञ्चामेध्यानि भारत ।
श्वा च शूद्रः श्वपाकश्च अपवित्राणि पाण्डव ।।

भारत! इस संसारमें तीन अपवित्र और पाँच अमेध्य हैं। पाण्डुनन्दन! कुत्ता, शूद्र और श्वपाक (चाण्डाल)—ये तीन अपवित्र होते हैं ।।

गायकः कुक्कुटो यूपो ह्युदक्या वृषलीपतिः ।
पञ्चैते स्युरमेध्याश्च स्प्रष्टव्या न कदाचन ।
स्पृष्ट्वैतानष्ट वै विप्रः सचैलो जलमाविशेत् ।।

3 · 4

Amresh kushwaha
@ErAmreshmehta

Follow

Replying to @MD_ABID_qasmi

ये सब ऐसे ही फर्जी है ।

Post your reply

सामान्यद्रव्यचौरश्च याति नक्रमुखं च सः।
ताडितो यमदूतेन वसेत्तत्राब्दकत्रयम्॥ १६

ततो भवेत्सप्तजन्म गोपतिर्व्याधिसंयुतः।
ततो भवेन्मानवश्च महारोगी ततः शुचिः॥ १७

तुल्य हो जाता है। यक्ष तथा भूतों की पूजा करने से तत्काल चाण्डाल बन जाता है। जबकि यक्ष व भूत शिवजी के गण बताये जाते हैं।

शिवादि के पूजने वाले टट्टी (विष्ठा) के कीड़े बनेंगे

वैष्णवः पुरूषो यस्तु शिव ब्रह्मादि देवतान्।
प्रणमयेद्यर्चयेद्वावि विष्ठायां जायते कृमि॥२६१॥

(बृद्ध हारीत स्मृति)

अर्थ-यदि विष्णु का उपासक भूलकर भी शिव, ब्रह्मा आदि को प्रणाम या उनकी पूजा-अर्चना करता है तो वह मर कर पाखाने का कीड़ा बनता है।

163

कीहुई अग्नि बड़ा भारी देवता है ॥ ४४ ॥ श्मशानों में भी तेजस्वी अग्नि दूषित नहीं होती है और हव्य कव्य याने देव व पितर कार्य से रहित भी ब्राह्मण नहीं दूषित होता है ॥ ४५ ॥ हे वरानने ! महापातकों के कारण वर्जित करने योग्य भी ब्राह्मण पूजनीय है ब्राह्मण सब प्रकार पूज्य हैं व सबप्रकार बड़े भारी देवता हैं ॥ ४६ ॥ इस कारण विपत्ति में प्राप्त ब्राह्मण की सब उपाय से रक्षा करै इस प्रकार हे महादेवि ! ब्राह्मण सब कहीं मनुष्यों से पूजने योग्य हैं ॥ ४७ ॥ फिर संयमचित्तवालों को क्या कहना है और क्षेत्रवासी ब्राह्मण विशेषकर पूजनेयोग्य हैं इसके उपरान्त क्षेत्र में स्थित चारों आश्रमों में वसनेवाले ॥ ४८ ॥

कव्यहव्यपेतोपि ब्राह्मणोनैवदुष्यति ॥ ४५ ॥ महापातकवर्ज्योंहि पूज्योविप्रोवरानने ॥ सर्वथाब्राह्मणाःपूज्याः सर्वथादैवतंमहत ॥ ४६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रक्षेदापद्गतंद्विजम् ॥ एवंविप्रामहादेवि पूज्याःसर्वत्रमानवैः ॥ ४७॥ किंपुनःसंयतात्मानो विशेषात्क्षेत्रवासिनः ॥ अथक्षेत्रस्थितानांच चतुराश्रमवासिनाम् ॥ ४८ ॥ विप्राणांवृत्तिभेदांस्ते प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥ क्षेत्रस्यन्यासंविधिवद् येजानन्तिद्विजातयः ॥ ४९ ॥ वृत्तिभेदक्रमांश्चैव तेक्षेत्रफलभागिनः ॥ यथाक्षेत्रेनिवसता वर्तितव्यंद्विजातिना ॥ ५० ॥ प्राजापत्यादिभेदेन तच्छृणुत्वंवरानने ॥ प्राजापत्यामहीपालाः कपोताग्रन्थिकास्तथा ॥ ५१ ॥ कुटिकाद्याश्चवेताला पद्महंसावरानने ॥ धृतराष्ट्रावकाःकङ्का गोपालाश्चैवभामिनि ॥ ५२ ॥ त्रुटिकाःप्रवराश्चैव गुटिकादण्डिकाःपरे ॥ क्षेत्रस्थानामिमेभेदा वृत्तिंतेषांशृणुष्वथ ॥ ५३ ॥ अहिंसागुरुशुश्रूषा

ब्राह्मणोंकी वृत्ति व भेदों को तुमसे क्रमसे कहताहूं कि जो ब्राह्मण क्षेत्र के संन्यासको विधिपूर्वक जानते हैं ॥ ४९ ॥ और वृत्ति व भेदों के क्रमोंकोही जो जानते हैं वे क्षेत्रके फलके भागी होते हैं जिस प्रकार क्षेत्रमें बसतेहुए ब्राह्मणको प्राजापत्यादिक भेदसे वर्तमान होनाचाहिये हे वरानने ! उसको तुम सुनो कि प्राजापत्य, महिपाल, कपोत व ग्रंथिक ॥ ५०॥५१॥ और हे बरानने ! उसीविधि कुटिकादिक भामिनि ! वेताल व पद्म,हंस,धृतराष्ट्र,बक,कंक,गोपाल भी ॥ ५२॥त्रुटिक, प्रवर, गुटिक व अन्य दंडिक क्षेत्र में टिके हुए ब्राह्मणों के ये भेद हैं इसके उपरान्त उनकी वृत्ति को सुनिये ॥ ५३ ॥ कि हिंसा न करना, गुरु की सेवा करना, निज वेदपाठ करना,

भार्गोको चाहनेवाले देवता प्राप्तहुये व विलम्ब का समय हुआ ॥ २६ ॥ समयहीन कर्म न करना चाहियें क्योंकि कियाहुआ वह फलदायक नहीं होताहै वेदोंमें इस अधिकारको आपही सब विद्वानों ने देखाहै ॥ २७ ॥ वेदके पारगामी ब्राह्मणों से कर्म करनेपर व अध्वर्युसे मन्त्रके द्वारा अग्नि में हवन करने पर ॥ २८ ॥ वैसे ही यज्ञकरने पर देखकर सावित्री देवीजी क्रोधसंयुत हुई ॥ २९ ॥ और सभाके मध्यमें मौन बैठेहुये ब्रह्मासे सावित्री देवी बोलीं कि हे देव ! ऐसा कर्म करने के लिये तुम क्यों इसप्रकार जानते हो ॥ ३० ॥ जोकि मुझको छोड़कर तुमने कामसे पातक किया हे चतुर्मुख ! वह गोपी मेरी चरणधूलिके समान नहीं है ॥ ३१ ॥ कि

वेत् ॥ वेदेष्वयमधीकारो दृष्टस्सर्वैर्मनीषिभिः ॥ २७ ॥ कर्मणिक्रियमाणेतु ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ ज्वलनेहूयमानेतु मन्त्रेणाध्वर्युणातथा ॥ २८ ॥ क्रियमाणेतथायज्ञे दृष्ट्वादेवीक्रुधान्विता ॥ २९ ॥ उवाचदेवीब्रह्माणं सदोमध्येतुमौनिकम् ॥ किमेवंबुद्ध्यसेदेव कर्त्तुमेवंविचेष्टितम् ॥ ३० ॥ माम्परित्यज्ययःकामात् कृतवानसिकिल्बिषम् ॥ तत्तुल्यापादरजसा सामेगोपीचतुर्मुख ॥ ३१ ॥ यद्वदन्तिनरास्सर्वे सङ्गतास्सदसिस्थिताः ॥ आश्चर्यंचप्रभूणान्तु कुरुषेयत्त्वमिच्छसि ॥ ३२ ॥ भवतारूपलोभेन यदेतत्किल्बिषंकृतम् ॥ नपुत्रेषुकृतालज्जा नपौत्रेषुचतेविभो ॥ कामकारकृतंमन्ये एतत्कर्मविगर्हितम् ॥ ३३ ॥ पितामहोसिदेवानामृषीणांप्रपितामहः ॥ कथन्नतत्रयाजाता आत्मनःपश्यतस्तनुम् ॥ ३४ ॥ लोकमध्येकृतंहास्यमहंचैवविगर्हिता ॥ यद्येषतेस्थितोभावस्तिष्ठदेवनमोस्तुते ॥ ३५ ॥ अहंकथंसखीनान्तु दर्शयिष्यामिवैमुखम् ॥ भर्त्राविवाहितापत्नी कथमेवंदृढंवदे ॥ ३६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ऋत्विग्भिरहमाज्ञप्तो दीक्षाकालेतिवर्तते ॥ पत्नीं

जिसको सभा में बैठे आयेहुये सब मनुष्य कहते हैं व समर्थवानों का आश्चर्य करतेहो जो तुम चाहते हो ॥ ३२ ॥ रूपके लोभसे तुमने जो यह पाप कियाहै इससे हे विभो ! न पुत्रोंमें लज्जा किया और न पौत्रोंमें तुमने लज्जा कियाहै इस निन्दित कर्मको मैं कामदेवसे कियाहुआ मानतीहूं ॥ ३३ ॥ तुम देवताओं के पितामह व ऋषियोंके प्रपितामह हो अपने शरीरको देखतेहुये तुमको क्यों नहीं लज्जा आई ॥ ३४ ॥ संसारके मध्यमें हँसीकी गई और मैं निन्दित कीगई हे देव ! यदि तुम्हारे यह भाव स्थितहुआ तो बैठिये तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ३५ ॥ मैं सखियोंको कैसे मुख दिखाऊंगी और दृढ़तासे कैसे ऐसा कहूंगी कि पतिने स्त्रीको व्याहाहै ॥ ३६ ॥

ी होती ॥ २७ ॥ इस प्रकार स्त्रियों व पुरुषों से देखेहुये वे पिता के दर्शनकी लालसा वाले साम्बजी राजमार्ग से निकलगये ॥ २८ ॥ बहिनी व जो मातायें व
ाई की स्त्रिया स्थितथीं वे और ब्राह्मणों की स्त्रियां ऐसी दशाको प्राप्तहुई ॥ २९ ॥ और जो उनकी माता भी व विशेष कर बहनैं थीं वे ऐसी दशाको प्राप्त भई
देन प्राप्तहोने पर वर्षा समय में जब रात आई तब ॥ ३० ॥ कृष्ण पक्ष में अन्धकार होनेपर जब कि आगे प्राप्त भीवस्तु नहीं देख पड़ती थी तब नन्दिनी
 उनकी माता कामदेव के वशमें प्राप्तहुई ॥ ३१ ॥ व उसकी स्त्री का वेषधरकर उन साम्बकी शय्यापै प्राप्तहुई उनने भी अपनी स्त्री जानकर उससे श्रद्धाही

तीसाभविष्यति ॥ २७ ॥ एवंसवीक्ष्यमाणस्तु कामिनीभिर्नरैस्तथा ॥ निर्ययौराजमार्गेण पितृदर्शनलालसः ॥ २८॥
गिन्योमातरोयाश्च भ्रातृपत्न्यश्चयाःस्थिताः ॥ अवस्थामीदृशींप्राप्ता ब्राह्मणानांतथास्त्रियः ॥ २९ ॥ मातरोपिचया
स्तस्य भगिन्यश्चविशेषतः ॥ अन्यस्मिन्नहनिप्राप्ते प्रावृट्कालेनिशागमे ॥ ३० ॥ कृष्णपक्षेतमोभूते अलक्ष्येपिगते
पुरः ॥ तन्मातानन्दिनीनाम कामदेववशंगता ॥ ३१ ॥ तत्पत्न्यावेषमाधाय तस्यशय्यामुपस्थिता ॥ सोपितांचस्व
कांज्ञात्वा सेवयामासकामिनीम् ॥ ३२ ॥ रतोपचारविविधैःश्रद्धयैवविनिर्मितैः ॥ तयातत्रयदुश्रेष्ठो निकाममकरोत्तदा ॥
३३ ॥ अङ्गराजसुतायामे प्राणेभ्योपिगरीयसी ॥ नैवंविधंरतंवेद अनयायद्विनिर्म्मितम् ॥ ३४ ॥ वेश्याअपिनजान
न्ति रतमीदृक्कथञ्चन ॥ ततोगाढंकरेधृत्वा दीपमानीयतत्क्षणात् ॥ ३५ ॥ यावत्पश्यतिसामाता नन्दिनीतिचया
स्मृता ॥ ततश्चगर्हयामास धिक्पापेकिमिदंकृतम् ॥ ३६ ॥ गर्हितंसर्वलोकानां नरकार्तिप्रदंतथा ॥ सापिलज्जासमोपे

कियेहुये अनेक प्रकार के रतिके उपचारोंसे उसे सेवन किया व उस समय यदूत्तम साम्बने इच्छाके अनुकूल रति किया ॥ ३२ । ३३ ॥ व विचार किया कि अंग
जकी कन्या जोकि मुझको प्राणोंसे भी प्यारी है वह इस प्रकार के रतिको नहीं जानती है जैसा कि इसने किया है ॥ ३४ ॥ व वेश्यायें भी किसी प्रकार ऐसे रति
ो नहीं जानती हैं तदनन्तर हाथमें पुष्ट पकड कर व उसी क्षण दीपक को आनकर ॥ ३५ ॥ जब तक देखैं तब तक वह माता थी जोकि नन्दिनी ऐसी कही जाती
ी तदनन्तर निन्दा किया कि हे पापिनि ! तूने यह क्या किया ॥ ३६ ॥ जोकि समस्त मनुष्यों को निन्दित व नरकके क्लेश का दायकहै लज्जासे संयुत व बड़े भय

व म्लेच्छजातिवाले तथा हज़ारों चोरों ॥ ८५ । ८६ ॥ और जो अत्यन्त धर्मवान् नहीं हैं व जो कहीं ब्राह्मणों के शत्रु हैं उनको तथा शूद्रों को बढ़ेहुये चक्रवाले भगवान् कल्की जी नाश करैंगे ॥ ८७ ॥ और समस्त प्राणियों के अदृश्य होकर वे पृथ्वी में घूमैंगे वे प्रभु देवांश से नहीं किन्तु मनुष्य के अंश से ॥ ८८ ॥ होनहार अर्थ से प्रेरित उन सबों को नाशकर अनुगामियों समेत वे कल्की जी गङ्गा यमुना के मध्य में नाश को प्राप्त होंगे ॥ ८९ ॥ तदनन्तर सेनासमेत व मन्त्रियों समेत कल्की के व्यतीत होजानेपर व राजाओं के नष्ट होजानेपर उस समय सत्त्वगुण के ग्रहण करनेवाले प्रजा होवैंगे ॥ ९० ॥ और रक्षाके निवृत्त होजानेपर युद्ध में

निःशेषांशूद्रराज्ञस्तांस्तदासतुहनिष्यति ॥ पाखण्डान्म्लेच्छजातींश्च दस्यूंश्चैवसहस्रशः ॥ ८६ ॥ नात्यर्थंधार्मिकायेच येचब्रह्मद्विषःक्वचित ॥ प्रवृद्धचक्रेभगवाञ्छूद्राणामन्तकोबली ॥ ८७ ॥ अदृश्यस्सर्वभूतानां पृथिवींविचरिष्यति ॥ मानवस्यतुसोंशेन नदेवस्यभुविप्रभुः ॥ ८८ ॥ क्षपयित्वातुतान्सर्वान् भावितार्थेननोदितान् ॥ गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठांप्राप्स्यतिसानुगः ॥ ८९ ॥ ततोऽव्यतीतेकल्कौतु सामात्येसहसैनिके ॥ नृपेष्वथविनष्टेषु तदासत्त्वग्रहाःप्रजाः ॥ ९० ॥ रक्षणेविनिवर्त्तेच हत्वाचान्योन्यमाहवे ॥ परस्परहतास्ताश्च निराक्रन्दाःसुदुःखिताः ॥ ९१ ॥ क्षीणेकलियुगेचास्मिन्दशवर्षसहस्रके ॥ ससन्ध्यांशेतुनिश्शेषे कृतंवैप्रतिपत्स्यति ॥ ९२ ॥ यदाचन्द्रश्चसूर्यश्च यदातिष्येबृहस्पतिः ॥ एकराशौसमेष्यन्ति प्रवर्त्स्यतितदाकृतम् ॥ ९३ ॥ अभिजिन्नामनक्षत्रं जयन्तीनामशर्वरी ॥ मुहूर्त्तोविजयोनाम यत्रजातोजनार्द्दनः ॥ ९४ ॥ देव्युवाच ॥ उक्तंयथावदखिलं भृगुशापविचेष्टितम् ॥ पूर्वावताराःन्मेब्रू

आपसमें मारकर परस्परमें मारेहुये वे प्रजालोग दुःखित होकर रोदन करैंगे ॥ ९१ ॥ व इस कलियुगके क्षीण होजानेपर और सन्ध्यांश समेत दशहज़ार वर्ष शेष रहने पर सतयुग प्राप्त होगा ॥ ९२ ॥ जब कलियुग में चन्द्रमा, सूर्य व बृहस्पति एक राशि में प्राप्त होंगे तब सतयुग प्राप्त होगा ॥ ९३ ॥ जब कि अभिजित् नामक नक्षत्र व जयन्ती नामक रात्रि और विजयनामक मुहूर्त जिसमें कि विष्णु जी उत्पन्न हुये हैं ॥ ९४ ॥ पार्वती देवीजी बोलीं कि हे महेश्वरजी ! भृगुजी के शाप

तीर्थोपवास करना चाहिये उसको मुझसे यथार्थ सुनिये कि गङ्गाजीके समान तीर्थ नहीं है व कृष्णाजी के समान गति नहीं है ॥ ६० ॥ और गायत्री के समान जप नहीं है व व्याहृतियों के तुल्य होम नहीं है वैसेही जल के मध्य में अघमर्षण कर्म के समान पापनाशक कर्म नहीं है ॥ ६१ ॥ और हे देवेशि! तीर्थमें उपवाससे अधिक पापियों का पापनाशक व सज्जनों को चाहेहुये मनोरथ को करनेवाला कुछ नहीं है ॥ ६२ ॥ और देवस्थानमें विशेषकर उपास कहागया है इस संसार में भोजन न करना यही ब्राह्मणका उत्तम तप कहा जाताहै ॥ ६३ ॥ और छठें समय में भोजन करनेवाला जो शूद्र है उसका वही तप विद्वानों से कहा जाता है और

नास्तिगङ्गासमंतीर्थं नास्तिकृष्णासमागतिः ॥ ६० ॥ गायत्रीसदृशंजाप्यं होमंव्याहृतिभिस्समम् ॥ अन्तर्जलेत थानास्ति पापघ्नमघमर्षणात् ॥ ६१ ॥ तीर्थोपवासाद्देवेशिअधिकंनास्तिकिञ्चन ॥ पापिनांपापशमनं सतामीप्सित कारकम् ॥ ६२ ॥ उपवासोविनिर्द्दिष्टो विशेषाद्देवताश्रये ॥ ब्राह्मणस्यत्वनशनं तपःपरमिहोच्यते ॥ ६३ ॥ षष्ठका लाशनःशूद्रस्तपःप्रोक्तंपरंबुधैः ॥ वर्णसङ्करजातीनां दिनमेकंप्रकीर्त्तितम् ॥ ६४ ॥ षष्ठकालात्परंशूद्रस्तपःकुर्याद्य दाकचित् ॥ राष्ट्रहानिस्तदाज्ञेया राज्ञश्चोपद्रवोमहान् ॥ ६५ ॥ शूद्रश्चषष्ठकालाशी यथाशक्त्यातपश्चरन्॥ नदर्भानुद्धरे च्छूद्रो न पिबेत्कापिलंपयः ॥ ६६ ॥ मध्यपत्रेनभुञ्जीयाद् ब्राह्मवृक्षस्यभामिनि ॥ नोच्चरेत्प्रणवंमन्त्रं पुरोडासन्नभ क्षयेत ॥ ६७ ॥ नशिखान्नोपवीतञ्च नोच्चरेत्संस्कृताङ्गिरम् ॥ नपठेद्वेदवचनं त्रिरात्रन्नहिसेवयेत ॥ ६८ ॥ नमस्कारेण शूद्रस्य क्रियाशुद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ निषिद्धाचरणंकुर्य्यात्पितृभिस्सहमज्जति ॥ ६९ ॥ येनैकादशसंख्यानि यन्त्रिता

संकरवर्णवाली जातियों को एक दिन उपास कहा गया है ॥ ६४ ॥ और जब कहीं छठें काल से परे शूद्र तप करता है तब राजा के राज्य की हानि व बड़ा भारी उत्पात जानना चाहिये ॥ ६५ ॥ और यथाशक्ति तपको करता हुआ शूद्र छठें समय में भोजन करै व शूद्र कुशों को न उखाड़ै और न शूद्र कपिला गऊके दूध को न पियै ॥ ६६ ॥ व हे भामिनि! पीपल वृक्षके मध्यपत्रमें भोजन न करै और ॐकारमन्त्र को न कहै व पुरोडास (यज्ञकी खीर) को न खावै ॥ ६७ ॥ और शिखा व यज्ञोपवीत को न धारण करै और संस्कृतवाणीको न बोलै व वेदवचन को न पढ़ै और त्रिरात्र व्रतको न सेवै ॥ ६८ ॥ और शूद्र का नमस्कार करने से निश्चयकर

कर कहूंगा ॥ ३ ॥ कंसारी ऐसी प्रसिद्ध व भाईसे संयुत याज्ञवल्क्यजीकी बहनने पुण्यदायक याज्ञवल्क्यजीके आश्रममें कुमार ब्रह्मचर्य से अति दारुण तपस्या किया इसके अनन्तर हे ब्राह्मणो ! किसी समय किसी उत्तम अप्सराको देखकर तपस्यासे युक्त व तरुणतामें भलीभांति प्राप्त याज्ञवल्क्यजीका वीर्य शीघ्रही वसन मध्यमें स्खलित होगया ॥ ४ । ५ । ६ ॥ उन याज्ञवल्क्यके बहुत वीर्यसे पहननेवाला वसन सब ओर डूबगया प्रभातकाल समुपस्थितहोनेपर उन याज्ञवल्क्यजीने उस वसनको त्याग किया ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! उसीदिन कंसारिकाने स्नानके लिये उस वसनको लिया और सफल वीर्यसे भीगेहुये वसनको न जानती व स्नानकरती

तुविश्रुता ॥ कुमारब्रह्मचर्य्येण तपस्तेपेसुदारुणम् ॥ ४ ॥ याज्ञवल्क्याश्रमेपुण्ये बान्धवेनसमन्विता ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य याज्ञवल्क्यस्यभोद्विजाः ॥ ५ ॥ चस्कन्दरेतोवस्त्रान्ते दृष्ट्वाकांचिद्वराप्सराम् ॥ तारुण्यमावसंस्थस्य तपोयु क्तस्यसत्वरम् ॥ ६ ॥ रेतसातस्यमहतापरिधानंपरिप्लुतम् ॥ तच्चतेनपरित्यक्तं प्रभातेसमुपस्थिते ॥ ७ ॥ कंसारिकाथ तत्राह्निस्नानार्थंवसनंचतत् ॥ अमोघरेतसाक्लिन्नमजानन्त्याद्विजोत्तमाः ॥ ८ ॥ कुर्वन्त्यामज्जनंतस्या जलंवीर्य्यसम न्वितम् ॥ प्रविष्टंभगमध्येतु ऋतुकालउपस्थिते ॥ ९ ॥ ततोगर्भस्समभवत्तस्याउदरमध्यगः ॥ वृद्धिंचाप्यगमन्नि त्यं शुक्लपक्षेयथोडुराट् ॥ १० ॥ सापितंगर्भमासाद्य स्वोदरस्थंतपस्विनी ॥ दुःखेनमहतायुक्ता लज्जयाचतदावृता ॥ ११ ॥ चिन्तयामाससुचिरं विस्मयेनसमन्विता ॥ गोपायतितदात्मानं दर्शनंयातिनोन्नृणाम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मचर्य्यमिषं कृत्वा सदारहसिसंस्थिता ॥ संप्राप्तेदशमेमासि निशीथेसमुपस्थिते ॥ १३ ॥ तस्याःकुमारकोजातो वालार्कसदृशद्यु

हुई उसके ऋतु-समय प्राप्तहोनेपर योनिके मध्यमें वीर्य संयुत जल पैठगया ॥ ८ । ९ ॥ तदनन्तर उसके पेटमें प्राप्तहोकर वह गर्भ भलीभांति होगया व जैसे शुक्ल-पक्षमें चन्द्रमा बढ़ताहै वैसेही नित्य वृद्धिको प्राप्तहुआ ॥ १० ॥ उस समय वह तपस्विनी यह भी अपने पेटमें प्राप्तहुये गर्भको पाकर बड़े दुःखसे संयुतहुई व लज्जासे घिरगई ॥ ११ ॥ व विस्मयसे संयुतहोती हुई उसने बहुत देरतक चिन्तवन किया उस समय अपने शरीरको छिपातीथी व मनुष्योंके दर्शनमें नहीं प्राप्तहोतीथी ॥ १२ ॥ व ब्रह्मचर्य्यका बहाना करके सदैव एकान्तमें स्थिर रहतीथी और दशम महीनेको प्राप्तहोनेपर जब आधीरात भलीभांति प्राप्तहुई तब ॥ १३ ॥ बाल सूर्य्य नारायणके

समय उसने ऐसा निश्चय करके उस माता से कहकर ॥ ३२ ॥ तदनन्तर जुड़ेहुये हाथोंवाली होकर भलीभांति मानीहुई उस ब्राह्मणी को आदर समेत लिपटकर कहा ॥
३३ ॥ कि हे शुभदायिके ! मुझ से पठाई हुई तुम अपने पिता के घर जाओ कि जिस से पिता तुमको महात्मा नागर द्विज के लिये देवै ॥ ३४ ॥ व मैंने कभी जो
झूंठ वचन कहा हो उसको क्षमा कीजिये और तुमने भी जो मुझसे कहा है इस को मैंने अवश्य कर क्षमा किया ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणी बोली, कि आठ वर्षकी गौरी व
नव वर्ष की रोहिणी होती है और दशवर्ष की कन्या होती है इस के ऊपर रजस्वला होती है ॥ ३६ ॥ हे उत्तममुखवाली ! तुम्हारे मेलसे मेरा कुमारपन नष्ट होगया

तदा ॥३२॥ ततःप्रोवाचतांकन्यां ब्राह्मणींसम्मतांसखीम् ॥ कृताञ्जलिपुटाभूत्वा समालिङ्गयचसादरम् ॥३३॥ गच्छत्वं
स्वपितुर्हर्म्ये प्रेषितासिमयाशुभे ॥ येनत्वांयच्छति पिता नागरायमहात्मने ॥ ३४ ॥ क्षमस्वयन्मयाप्रोक्तं कदाचिच्चा
नृतंवचः ॥ त्वयापियन्ममप्रोक्तं क्षान्तञ्चैतन्मयाध्रुवम् ॥ ३५ ॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ अष्टवर्षाभवेद्गौरी नववर्षाचरोहिणी ॥
दशवर्षाभवेत्कन्या अतऊर्ध्वंरजस्वला ॥ ३६ ॥ कौमार्य्यंचप्रणष्टंमे त्वत्सम्पर्काद्वरानने ॥ अतीतेषोडशेवर्षे स्त्रीध
र्म्मेणसमन्विता ॥ ३७ ॥ नमेपाणिग्रहंकश्चिन्नागरोत्रकरिष्यति ॥ स्मृत्यर्थंबुध्यमानस्तुवक्ष्यमाणंवरानने ॥ ३८ ॥
रजस्वलाञ्चयःकन्यामुद्वाहयतिनिर्घृणः ॥ तस्यास्सन्तानमासाद्य पातयत्यपरान्दश ॥ ३९ ॥ रजस्वलाञ्चयःकन्यां
पितायच्छतिनिर्घृणः ॥ सपातयेदसन्दिग्धं दशपूर्वान्दशापरान् ॥ ४० ॥ तस्मादहंकरिष्यामि त्वयासार्द्धन्तपःशुभे ॥
पित्रानैवहिमेकार्य्यं नचमात्राकथञ्चन ॥४१॥ सूतउवाच ॥ एवंतेनिश्चयंकृत्वा कन्यकेद्वेद्विजोत्तमाः ॥ गतेयत्रस्थितः

और सोलह वर्ष बीतने पर स्त्री के धर्म याने रजोधर्म से युक्त होगई ॥ ३७ ॥ हे वरानने ! कहेजाते हुये स्मृति के अर्थ को जानता हुआ कोई नागर ब्राह्मण यहां
मेरा विवाह न करैगा ॥ ३८ ॥ क्योंकि जो निर्घृणी पुरुष रजस्वला कन्याको विवाह करता है वह उसके सन्तान को प्राप्त होकर और दश पुरुषों को गिराता है ॥ ३९ ॥
व जो निर्दयी पिता रजस्वला कन्या को देताहै वह निस्सन्देह दश पहले व दश पीछेवाली पुश्तियों को गिराता याने नरक को पठाताहै ॥ ४० ॥ उसी कारण हे
उत्तमे ! तुम्हारे साथ मैं तप करूंगी और किसी प्रकार माता व पितासे मेरा कार्य नहीं है ॥ ४१ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! वे दोनों कन्यायें इस प्रकार निश्चय

और दश वर्षवाली कन्या होवे है इसके उपरान्त रजस्वला होती है व माता, पिता व बड़ा भाई ॥ १९ ॥ रजस्वला कन्या को देखकर वे तीनों नरक को जाते हैं इसभांति उसके चिन्तन करते हुये द्विजरूपधारी वह चाण्डाल ॥ २० ॥ भिक्षा के लिये उसके घर प्राप्त हुआ उन महात्मा ने देखा व उस प्रकारके रूप को देखकर आश्चर्यही से पूंछा ॥ २१ ॥ कि हे भिक्षुक! तुम यहां कहांसे प्राप्त हुये हो और कहां जावोगे व ऐसे अतिकल्याणरूप होकर किस कारण माधुकरी वृत्ति याने भिक्षुकी जीविका पै प्राप्तहो ॥ २२ ॥ तुम्हारा क्या गोत्र है व कितना प्रवर है यह मुझ से कहो वह बोला कि गौड़देशवाला भोजकट नाम से प्रसिद्ध

त्रयस्तेनरकंयान्ति दृष्ट्वाकन्यांरजस्वलाम् ॥ एवंचिन्तयतस्तस्य सोन्त्यजोद्विजरूपधृक् ॥ २० ॥ भिक्षार्थंतद्गृहं प्राप्तो दृष्टस्तेनमहात्मना ॥ पृष्टश्चविस्मयेनैव दृष्ट्वारूपंतथाविधम् ॥ २१ ॥ कुतस्त्वमिहसम्प्राप्तः कयास्यसिचभिक्षुक ॥ ईदृग्भव्यतरोभूत्वा कस्मान्माधुकरीङ्गतः ॥ २२ ॥ किंगोत्रंतवमेब्रूहि कतमःप्रवरश्चते ॥ सोब्रवीद्गौडदेशीयं स्थानंमेसुमहत्तरम् ॥ २३ ॥ नाम्नाभोजकटंख्यातं नानाद्विजसमाश्रितम् ॥ तत्रासीन्माधवोनामब्राह्मणोवेदपारगः ॥ २४ ॥ वसिष्ठगोत्रेविख्यात एकप्रवरसूचितः ॥ तस्याहंतनयोनाम्ना चन्द्रप्रभइतिस्मृतः ॥ २५ ॥ ततोहमष्टमेवर्षे यदा व्रतधरःस्थितः ॥ तदापञ्चत्वमापन्नः पितामेवेदपारगः ॥ २६ ॥ मातामेसहतेनैव प्रविष्टाहव्यवाहनम् ॥ ततोवैराग्यमापन्नो निष्क्रान्तोहंनिजालयात् ॥ २७ ॥ तीर्थानिभ्रममाणोत्र सम्प्राप्तस्तुपुरेतव ॥ अधुनासम्प्रयास्यामि प्रभासंक्षे

मेरा स्थान है जो कि बड़ाभारी व अनेक भांति के ब्राह्मणों से समाश्रित है वहां वेदों का पारगामी माधव नामक ब्राह्मण हुआ है ॥ २३ । २४ ॥ जो कि एक प्रवर से सूचित व वसिष्ठ गोत्रमें प्रसिद्ध था नाम से चन्द्रप्रभ ऐसा कहा हुआ मैं उसका पुत्र हूं ॥ २५ ॥ तदनन्तर जब मैं आठवें वर्ष व्रतधारी स्थित हुआ याने जब मेरा जनेऊ होचुका तब वेद के पारगामी मेरे पिता जी मृत्यु को प्राप्त होगये ॥ २६ ॥ व मेरी माता उन्हीं के साथ अग्नि में पैठगई तदनन्तर वैराग्य को प्राप्त मैं अपने घर से निकला ॥ २७ ॥ और तीर्थों में घूमताहुआ मैं इस तुम्हारे अति उत्तम पुर में भलीभांति प्राप्त हुआ व इस समय उत्तम प्रभास क्षेत्र को जाऊंगा जहां कि

के योग्य हैं ॥ ६ ॥ उत्तम वंश में उपजीं व पति पुत्रवती तथा नाथवती भी अति चंचल ये स्त्रियां एक पुरुष में स्नेह नहीं करती हैं ॥१०॥ भूमिमें पापके लिये स्त्रियों से और कुछ निश्चयकर नहीं है क्योंकि मनुष्य जिन के सङ्ग को प्राप्तहोकर संसारमें भ्रमता है ॥ ११ ॥ नीच भी जो पुरुष देवताओं मे भी उन स्त्रियों की सेवा क रता है उस कुरूप या अधम मनुष्य को स्त्रियां सेवती हैं ॥ १२ ॥ व मनुष्यों के अनर्थ से तथा परिवार के भय से मर्याद हीन स्त्रियां मर्य्याद में पतियों के समीप-स्थित होती हैं ॥ १३ ॥ सूत जी बोले कि उन मुनि से बहुत निन्दित व फरकतेहुये ओष्ठ सम्पुटों वाली क्रोध संयुत मेनका ने उस मुनि श्रेष्ठ को शाप दिया ॥ १४ ॥

र्वन्त्येताःसुचञ्चलाः ॥ १० ॥ नस्त्रीभ्यःकिञ्चिदन्यद्धि पापायविद्यतेभुवि ॥ सङ्गंयासांसमासाद्य संसारेभ्रमतेजनः ॥ ११ ॥ नीचोपिकुरुतेसेवां यस्तासांदैवतेष्वपि ॥ विरूपंवापिनीचंवा तंसेवन्तेनरंस्त्रियः ॥ १२ ॥ अनर्थत्वान्मनुष्याणांभयात्परिजनस्यच ॥ मर्य्यादायाममर्य्यादाः स्त्रियस्तिष्ठन्तिभर्तृषु ॥ १३ ॥ सूतउवाच ॥ एवंसम्भर्त्सितातेन मेनकाकोपसंयुता ॥ शशापतंमुनिश्रेष्ठं स्फुरमाणोष्ठसम्पुटा ॥१४॥ यस्मात्त्वयापरित्यक्ता सकामाहंसुदुर्मते ॥ त्यजत्वंकामजंधर्म्मं तस्माच्छापंगृहाणमे ॥ १५ ॥ अद्यैवभवदुर्बुद्धेवलीपलितसंयुतः ॥ जराजर्ज्जरिताङ्गश्च तुच्छदृष्टिविरिङ्गितः ॥ १६ ॥ सूतउवाच ॥ उच्यमानेचवचने तत्क्षणान्मुनिसत्तमः ॥ बभूवतादृशस्सद्यस्तयायादृक्प्रकीर्तितः ॥ १७ ॥ ततःकोपपरीतात्मा सोपितांशप्तुमुद्यतः ॥ कमण्डलोर्जलंगृह्य सन्तापाद्रक्तलोचनः ॥ १८ ॥ निर्दोषोपित्वयायस्मा

कि हे दुष्ट बुद्धिवाले ! जिस लिये सकामवती मैं तुम से परित्याग की गई इसलिये तुम मुझ से शाप को ग्रहण करो व काम से उपजे हुये धर्म को छोड़ो ॥१५॥ सूतजी बोले कि हे दुष्ट बुद्धिवाले मुनि ! तुम आजही बुढ़ापे से जीर्ण अङ्गोंवाले व सिमटे और श्वेतबालों समेत तथा तुच्छ दृष्टि व गति रहित होवो ॥ १६ ॥ सूतजी बोले कि इस वचन के कहते हुये उसी क्षण मुनि श्रेष्ठ वैसेही होगये जैसे कि उस ने कहा था ॥ १७ ॥ तदनन्तर कोप से घिरे हुये मानस वाले व सन्ताप से लाल लोचन वाले वे मुनि भी कमण्डलु से जल लेकर उस को शाप देने के लिये उद्यत हुए ॥ १८ ॥ हे वेश्याओं में अधम ! जिसलिये तुमने दोप रहित भी मुझको

११ ॥ नीचोंपिकुरुतेसेवां यस्तासांदैवतेष्वपि ॥ विरूपवापिनाचवा तसवन्तनराश्रयः ॥ १२ ॥ ...
णांभयात्परिजनस्यच ॥ मर्य्यादायाममर्य्यादाः स्त्रियस्तिष्ठन्तिभर्तृषु ॥ १३ ॥ सूतउवाच ॥ एवंसम्भर्त्सितातेन मेन
काकोपसंयुता ॥ शशापतंमुनिश्रेष्ठं स्फुरमाणोष्ठसम्पुटा ॥१४ ॥ यस्मात्त्वयापरित्यक्ता सकामाहंसुदुर्मते ॥ त्यजत्वं
कामजंधर्म्मं तस्माच्छापंगृहाणमे ॥ १५ ॥ अद्यैवभवदुर्बुद्धेबलीपलितसंयुतः ॥ जराजर्ज्जरिताङ्गश्च तुच्छदृष्टिविरिङ्गि
तः ॥ १६ ॥ सूतउवाच ॥ उच्यमानेचवचने तत्क्षणान्मुनिसत्तमः ॥ बभूवतादृशस्सद्यस्तयायादृक्प्रकीर्तितः ॥ १७ ॥
ततःकोपपरीतात्मा सोपितांशप्तुमुद्यतः ॥ कमण्डलोर्जलंगृह्य सन्तापाद्रक्तलोचनः ॥ १८ ॥ निर्दोषोपित्वयायस्मा

कि हे दुष्ट बुद्धिवाले ! जिस लिये सकामवती मैं तुम से परित्याग की गई इसलिये तुम मुझ से शाप को ग्रहण करो व काम से उपजे हुये धर्म को छोड़ो ॥१५॥ हे दुष्ट बुद्धिवाले मुनि ! तुम आजही बुढ़ापे से जीर्ण अङ्गोंवाले व सिमटे और श्वेतबालों समेत तथा तुच्छ दृष्टि व गति रहित होवो ॥ १६ ॥ सूतजी बोले कि इस वचन के कहते हुये उसी क्षण मुनि श्रेष्ठ वैसेही होगये जैसे कि उस ने कहा था ॥ १७ ॥ तदनन्तर कोप से घिरे हुये मानस वाले व सन्ताप से लाल लोचन वाले वे मुनि भी कमण्डलु से जल लेकर उस को शाप देने के लिये उद्यत हुए ॥ १८ ॥ हे वेश्याओं में अधम ! जिसलिये तुमने दोष रहित भी मुझको

च्छप्तोहंगणिकाधमे ॥ तस्माद्भवत्वमप्याशु जराजर्ज्जरिताङ्गका ॥ १९ ॥ सापितद्वचनात्सद्यस्तादृग्रूपाप्यजायत ॥

शापदिया इससे तुमभी शीघ्रही जरा (वृद्धता) से जर्जरित अङ्गों वाली होजावो ॥ १९ ॥ उन मुनिके वचन से वह भी उसीक्षण वैसे रूप वाली होगई जैसे कि ये मुनि सत्तम सिमटे व श्वेत बालोंको केवल धारण किये थे ॥ २० ॥ इसके अनन्तर उस जलाशय में उसी प्रकारके स्वरूप से नहाई हुई वह फिर भी वैसीही होगई जैसी कि पहले भलीभांति स्थित थी ॥ २१ ॥ उस परम आश्चर्य्य को देखकर अत्यन्तही शीघ्रता समेत उन मुनि ने भी उस जलाशयमें स्नान किया व जैसे पहले थे वैसेही होगये ॥ २२ ॥ तदनन्तर तीर्थ के माहात्म्य से रूप व उदारतादि गुणसम्पन्न वे मेनका व विश्वामित्र मुनि बहुत प्रसन्न होते हुये परस्पर में सम्मति कर

वाणी, कर्म और मन से किया गया पाप ॥ ६२ ॥ व जलमें थूकने में व मूसर के नांघने में व वृषली से मैथुन में व गुरुस्त्री के भोग में ॥ ९३ ॥ व कन्या के साथ भोग करनेमें व सोनेकी चोरी में व दारू के पीने में जो पाप होता है उसको तिलधेनु पवित्र करदेती है ॥ ६४ ॥ जो दिन रातके उपाससे मेरे कहनेके अनुसार विधिपूर्वक गऊ दीजावे तो यमराज के पुरमें जो वैतरणी नदी कहीजाती है ॥ ६५॥ व बालूकी जगह जहां पापी पचताहै व अवीचिनरक जहां जोरिहाँ दो पहाड़ हैं ॥ ६६ ॥ व जहां लोहे के मुँहवाले कौवा हैं व जहां डरावनी जगह है व जहां असिपत्रवन है व जहां ताती बालूहै ॥ ६७ ॥ इन सब स्थानों को सुख से नांघकर धर्म-

जलमात्रेष्ठीवनेच मुशलेवाविलङ्घिते ॥ वृषलीगमनेचैव गुरुदारनिषेवणे ॥ ९३ ॥ कन्यायांगमनेचैव सुवर्णस्तेयएव च ॥ सुरापानश्चयच्चापि तिलधेनुःपुनातिहि ॥ ९४ ॥ अहोरात्रोपवासेन विधिवत्सामयोदिता ॥ यासौयमपुरेचैव नदी वैतरणीस्मृता ॥ ९५ ॥ बालुकायास्स्थलेचैव पच्यतेयत्रदुष्कृती ॥ अवीचिनरकोपेतौ यौवैयुगलपर्वतौ ॥ ९६ ॥ यत्र लोहमुखाःकाका यत्रस्थानंभयानकम् ॥ असिपत्रवनंयत्र यत्रतप्तंचबालुकम् ॥ ९७ ॥ तत्सुखेनव्यतिक्रम्य धर्म्मरा जाश्रमंव्रजेत् ॥ धर्म्मराजस्तुतंदृष्ट्वा सूनृतंवाक्यमब्रवीत् ॥ ९८ ॥ वितानंविततंयोग्यं मणिरत्नविभूषितम् ॥ अत्राग च्छनृपश्रेष्ठ गच्छस्वपरमाङ्गतिम् ॥ ९९ ॥ माचपापरतेदानं नतद्दानंपरंहितम् ॥ माविकालेविरूपेच नव्यङ्गेचतथैवच ॥ १०० ॥ अवेदविदुषेचैव ब्राह्मणेमदविक्रये ॥ मित्रघ्नेचकृतघ्नेच व्रतहीनेतथैवच ॥ १ ॥ वेदान्तगायदातव्या तस्यतत्त्वं विजानते ॥ वेदान्तगेतुसादेया श्रोत्रियेऽभूतबालका ॥ २ ॥ सर्वाङ्गरुचिरेदेया पवित्रेचप्रियंवदे ॥ पौर्णमास्याममावा

राज के स्थान को जाताहै धर्मराजभी उसको देख मीठी व सच्ची बात कहते हैं ॥ ६८ ॥ कि मणि व रत्नोंसे सजाहुआ बड़ा योग्य सामियाना खड़ाहै हे नृपश्रेष्ठ! आप यहां आवें और फिर परमगति को जावो ॥ ६९ ॥ पापी को दान मत देवें क्योंकि वह दान अपना हितू नहीं होताहै और बेसमयमें कुरूप व बिगड़ी देहवाले को मत देवे ॥ १०० ॥ जो ब्राह्मण नशा खाता है और वेद नहीं पढ़ाहै मित्रों का द्रोही व कृतघ्न व व्रतहीन है ऐसेको दान न देवे ॥ १ ॥ वेदान्त के पढ़नेवाले को व उसके तत्त्वके जाननेवाले को गऊ देना चाहिये वेदान्तके पढ़नेवाले व वेदपाठी ब्राह्मण को बेबछड़ाकी नई गऊ देना चाहिये ॥ २ ॥ सब अङ्गोंसे सुन्दर व पवित्र

काम कहीं लोक व वेद में नहीं देखा गयाहै कि विवाह की रीति से जो धर्म की करनेवाली उत्तम स्वभावकी स्त्री होतीहै ॥ ३५॥ उसको छोड़कर जो मोहसे चला जाताहै वह भ्रूणघ्न अर्थात् गर्भका गिरानेवाला कहाजाताहै तब उसकी स्त्री बोली कि हे जीवेश ! कुलके मूलरूप अपनेको आप बचावो ॥३६॥ फिर भी आपकी और सैकड़ों व हजारों स्त्रियां होजावेंगी अपने पतिके जीतेहुये जो स्त्री और पतिको चाहतीहै ॥३७॥ वह दुराचार पापिनी स्त्री विष्ठामें कीडा होतीहै पतिसे हीन विधवा स्त्री जो अपने पतिके साथ सती नहीं होती है ॥ ३८॥ वह सौवर्ष भी जीवे परन्तु पापिष्ठाही कही जाती है और पति के जीतेहुये जो पति के आगे मरजाती है ॥ ३९॥ वह

त्यक्त्वागच्छतितांमोहाद् भ्रूणघ्नःसतुकीर्तितः ॥ पत्निएयुवाच ॥ आत्मानंरक्षजीवेश मूलभूतंकुलस्यतु ॥ ३६ ॥ भूयोन्यास्तेभविष्यन्ति भार्याःशतसहस्रशः ॥ जीवमानेतुयापत्यावन्यंकामयतेवरम् ॥ ३७ ॥ सापापिष्ठादुराचाराविष्ठायांजायतेकृमिः ॥ विधवाभर्तृहीनायानुगतानस्वकंपतिम् ॥ ३८ ॥ जीवेद्वर्षशतंयावत्सापापिष्ठाप्रकीर्तिता ॥ पत्यौजीवतियानारी म्रियतेभर्तुरग्रतः ॥ ३९ ॥ भर्तृदत्तोदकश्राद्धैःसायातिपरमाङ्गतिम् ॥ प्रसादाद्यस्यलभ्येत पुत्रालङ्कारकीर्तयः ॥ ४० ॥ कोन्यःप्रियतरस्तस्मादिहलोकेपरत्रच ॥ स्वयंप्राप्तस्तुदावाग्निः शीघ्रंगच्छकथंसुतान् ॥ ४१ ॥ त्यक्त्वागच्छामिजीवेश संहारोवर्ततेधुना ॥ हस्तौपादौनविद्येते पावकोनैवशाम्यति ॥ ४२ ॥ अशक्तानीयमानेतु पक्षिणश्चाण्डजीविनः ॥ सुतांस्त्यक्त्वातुयामाता भयार्तायातिगर्हिता ॥ ४३ ॥ सासप्तजन्मपर्यन्तं सर्पिणीजायतेध्रुवम् ॥

पति के दिये हुये जल व श्राद्धों से परमगति को प्राप्त होती है जिस पति के प्रसादसे लड़के, गहने और कीर्त्ति मिलती है॥ ४० ॥ उससे अधिक इस लोक व परलोक में और दूसरा प्यारा कौन होसक्ता है इससे दावानल आपही प्राप्त होगया है सो तुम बहुत शीघ्र चलेजावो और मैं लड़कोंको छोड़कर हे जीवेश ! कैसे जाऊं अब इस समयमें संहार होरहा है लड़कोंके हाथ पावँ अभी ठीक नहीं हुये हैं और अग्नि बुझती नहीं है ॥ ४१ ॥४२ ॥ अण्डोंसे जीतेहुये बच्चे लेचलने में अशक्त हैं लड़कोंको छोंड़कर भयसे पीड़ित जो नालायक माता चलीजाती है ॥ ४३ ॥ वह सात जन्मोंतक निश्चय करके सांपिनि होतीहै यह कहकर फिर वहीं वे दोनों स्त्री

प्यार व हितमें तत्पर इस प्रकार कहेगये महादेव ॥ १९ ॥ योगीके रूपको बनाकर दारुवन में गये चन्द्रमा जिनका गहनाहै ऐसे महादेव बड़े सांपसे जटाजूट बांध कर ॥ २० ॥ बख्तर व सोनेके कुण्डल पहनकर व्याघ्रचर्मको पहने, हार और बजुल्लाओं से भूषित ॥ २१ ॥ पावोंके गहनोंकी आवाज से पृथिवीको कँपातेहुये वीरों के घण्टाके समान आवाजवाली महाडमरूके शब्द से युक्त ॥ २२ ॥ प्रभातसमय के प्राप्त होनेपर दारुवनको गये तबतक वहां सब ब्राह्मणलोग फूल व मूल व फलों के खानेवाले ॥ २३ ॥ बहुतों के सहित पढ़तेहुये इधर उधर निकलगये हे भारत! महादेवके उस बड़े आश्चर्य्यवाले रूपको देखकर ॥ २४ ॥ स्त्रीलोग मतवाली व

जूटं नियम्यशशिभूषणः ॥ २० ॥ कङ्कत्राणंपरंकृत्वा तथासौवर्णकुण्डले ॥ व्याघ्रचर्म्मपरीधानो हारकेयूरभूषितः॥ २१ ॥ नूपुरारावनिर्घोषैः कम्पयंश्चवसुन्धराम् ॥ महाडमरुघोषेणवीरघण्टानिनादिना॥२२॥प्रभातसमयेप्राप्ते तत्रदारुवनङ्गतः ॥ तावद्द्विजजनस्सर्वः पुष्पमूलफलाशनः॥ २३ ॥निर्गतोबहुभिस्सार्द्धं पठ्यमानइतस्ततः ॥ तद्दृष्ट्वामहदाश्चर्य्यरूपंदेवस्यभारत ॥ २४ ॥ युवतीजनःप्रमत्तश्च कामेनकलुषीकृतः ॥ सुरूपंपरमंदृष्ट्वा सर्वास्ताश्चवराननाः ॥ २५ ॥ क्लेशभावंतदागच्छन् याश्चदारुवनेस्त्रियः ॥ विकाराबहवस्तासान्देवंदृष्ट्वामनोजवम् ॥ २६ ॥ सञ्जाताविप्रपत्नीनां ताञ्छृणुष्वनृपोत्तम ॥ परिधानन्नजानन्ति परिभ्रष्टंकरोद्यताः ॥ २७ ॥ दातुकामातथाभैक्ष्यं चेष्टितुन्नैवशक्यते ॥ काचिद्दृष्ट्वामहादेवंरूपयौवनगर्विता ॥ २८ ॥उत्सङ्गेसंस्थितंबालं पतितंव्यस्मरत्ततः॥ कामबाणहताचान्या बाहुभ्यांपीडतिस्तनौ ॥ २९ ॥ निश्श्वसन्तीतथाचान्या नकिञ्चित्परिजल्पते ॥ एवमक्षोभयत्सर्वा महेशःपतिदे

कामसे मैली करदीगई श्रेष्ठमुखवाली वे सब स्त्रियां बड़े सुन्दर रूपको देखकर॥२५ ॥ उस समय दारुवन में जितनी स्त्रियां थीं वे सब क्लेशभाव को प्राप्तहुई कामरूप महादेवजी को देखकर उन ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंके बहुत विकार पैदाहुये हे नृपोत्तम ! उनको तुम सुनो कि हाथ उठाये हुई स्त्रिया देहसे गिरेहुये अपने पहिरने के कपड़े को नहीं जानतीहैं ॥ २६ । २७ ॥ व कोई भिक्षा देने की इच्छा करतीहुई परन्तु हाथ पावँ चलाने को समर्थ न हुई व कोई स्त्री रूप और जवानी से गर्वको प्राप्तहोरही महादेवजी को देखकर ॥ २८ ॥ गोदी में विद्यमान गिरपड़े बालकको भूलगई व कोई कामबाण से मारीगई दोनों हाथों से अपने स्तनोंको दबाती है ॥ २९ ॥ और

अनेनसं निष्पापाम्। हरिः सूर्यः। हरिरूपेणाऽश्वरूपेण। हरिरूपोऽभूदिति कचित्तदा क्रियाभेदादन्वयभेदः। समभावयत् सङ्गमकरोत् ॥ ११८-११९।

निर्वृत्ति स्वास्थ्यम्। निर्वृतिमिति पाठे सुखम्। युक्तमेतदित्याह। दुष्प्रापमिति ॥ १२२।

सूर्य ने अश्वरूपिणी उस विश्वकर्मा की पुत्री को निरपराधिनी विचार कर स्वयं भी अश्वरूप धारण कर उसके मुख में संगम किया ॥ ११८।

उस अश्विनीरूपा संज्ञा ने चारों ओर से त्वरामुक्त होकर परपुरुष की शंका से सूर्य के वीर्य को नासिकापुट के द्वारा वमन कर (उगिल) दिया ॥ ११९।

उसी से देवताओं के वैद्यवर दोनों अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए। फिर सूर्य ने अपना यथार्थ (असली) रूप उसे दिखलाया ॥ १२०।

तब तो वह पतिव्रता भी, हृदय के संतापहारी, नयनों के आनन्दकारी, सुन्दर-रूपधारी अपने पति सूर्य को देख अत्यन्त सन्तुष्ट हुई और बड़े आनन्द को प्राप्त हुई। (सच है) तपस्या के द्वारा क्या दुर्लभ है? तपस्या ही परम मंगल है और तपस्या ही उत्तम धन है ॥ १२१-१२२।

11:20 AM

यस्येति । दशपूर्वान् दशापरान् दातुरिति शेषः ॥ ९७ ।
न स्त्रोणामिति । न च गाः समनुव्रजेद् गोरक्षणवृत्तिर्न भवेदित्यर्थ ॥ ९८ ।

अपने वृष (पति) को छोड़कर जो दूसरे वृष (पुरुष) से वरदाती है, उसी को वृषलो कहते हैं। कुछ शूद्रों की ही स्त्री वृषली नहीं होतीं, अन्य भो वृषली होती हैं। ॥ ९३ ।

अन्न जब तक उष्ण रहे और मौन होकर भोजन किया जावे, एवं जब तक हवि (भोजन) का गुण इत्यादि न कहा जावे, तभी तक पितृगण भोजन करते हैं ॥९४।

विद्या और विनय से संपन्न श्रोत्रिय, यदि गृह पर आ जावे तो समस्त औषधियाँ (अन्नादिक) इसलिये परमानन्दित होती हैं कि, हम सब परमगति को प्राप्त हो जावेंगी ॥ ९५ ।

इसी प्रकार शौच और व्रताचार से भ्रष्ट, और वेदवर्जित ब्राह्मण के आने पर दान किया जाता हुआ अन्न यह (कहकर) रोता है कि, मैंने ऐसा कौन पाप किया (जो इसके पेट में जा रहा हूँ) ? ॥ ९६ ।

अन्न जिसके उदर (कोठा) में जाकर वेदाभ्यास के परिश्रम से पकता है, वह

के बेचने वालों को उतनी ही भ्रूणहत्या लगती है ॥ १०६ ।

जो पुरुष संन्यास ग्रहण करके फिर भी मैथुन का सेवन करता है, वह साठ सहस्र वर्षों तक विष्ठा में कृमि होकर रहता है ॥ १०७ ।

शूद्र का अन्न, शूद्र का सहवास, शूद्र के साथ एक आसन पर बैठना, अथवा शूद्र से कोई विद्या सीखना—ये सब (कर्म) ज्वलन्त ब्राह्मणों को भी पतित ही बना डालते हैं ॥ १०८ ।

शूद्रादाहृत्य निर्वापं ये पचन्त्यम्बुधा द्विजाः ।

[illegible] । आशीविषोपमा [illegible] । सर्पः पृदाकुभुजगो भुजङ्गोऽहि
भुजङ्गमः । आशोविषो विषधरश्चक्री व्यालः सरीसृपः' इत्यमरः ॥५१।

भर्तेति । स्त्रिया जोवन्मृतो वा भर्ताऽनुयातव्योऽनुगन्तव्य इत्यर्थः । अत्रानुगुणं दृष्टान्तत्रयमाह । देहवदिति पादत्रयेण । विद्युत्वान् मेघः ॥५३।

स्त्रियों का भर्त्ता ही देवता, गुरु, धर्म, तीर्थ, और व्रत इत्यादि सब कुछ है। अतएव सब किसी को छोड़कर एक मात्र स्वामी का सेवन करना चाहिए ॥ ४८ ।

जिस भाँति से जीव से अलग होते ही तुरन्त शरीर अपवित्र हो जाता है, वैसे ही भर्त्ता से हीन स्त्री भी चाहे स्नान कर लिए हुए हो; पर सदैव अशुद्ध ही रहती है ॥४९।

समस्त अमङ्गलों से बढ़कर अमङ्गल मूर्ति विधवा स्त्री ही होती है; (क्योंकि) किसी कार्य के प्रारम्भ में यदि विधवा दिखाई पड़ जाय, तो चाहे कहीं पर हो, फिर वह काम कभी सिद्ध नहीं होता ॥ ५० ।

पण्डितजन, सब अमङ्गलों से रहित एकमात्र माता को छोड़कर, और विधवाओं के आशीर्वाद को भी, सर्प के समान जानकर परित्याग देवें ॥ ५१ ।

कन्याओं के विवाह की वेला में द्विज लोग यही (आशीर्वाद) पढ़ते हैं कि पति के जीते जी अथवा मर जाने पर भी (तुम) सहचरी बनी रहो ॥ ५२ ।

जिस प्रकार से परछाँही देह की, जैसे चन्द्रिका चन्द्रमा की और जिस भाँति बिजली मेघ की सहचरी होती है, स्त्री को भी वैसे ही पति की सदैव अनुगामिनी होनी

लोग गायत्रीमंत्र में परायण व पापनाशक हैं वे अपना व यजमान को निस्सन्देह तारते हैं ॥ २६ ॥ और तृप्त कियेहुए ब्राह्मण व अग्नि कार्य के साधक होते हैं और चातुर्मास्य में विशेषकर उनका पूजन बहुत फलवान् होता है ॥ २७ ॥ और क्रोध कराये हुए वे सब शरीर के नाश के लिये होते हैं तबतक इन्द्र का वज्र व शिवजी का त्रिशूल नहीं नाश करता है ॥ २८ ॥ और तबतक यमराज का दंड नहीं नाश करता है जबतक कि ब्राह्मणों से उपजा हुआ शाप नहीं होता है और अग्नि प्रत्यक्ष वस्तुको जलाती है व शाप बिन देखीहुई भी वस्तुओं को जलाती है ॥ २९ ॥ और पैदाहुए व बिन पैदाहुए भी लोगोंको नाश करती है उस कारण

च तारयन्ति न संशयः ॥ २६ ॥ वह्नयश्च तथा विप्रास्तर्पिताः कार्यसाधकाः ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण तेषां पूजा महाफला ॥ २७ ॥ कोपिताः सर्वदेहस्य नाशनाय भवन्ति हि ॥ तावन्न वज्रमिन्द्रस्य शूलं नैव पिनाकिनः ॥ २८ ॥ दण्डो यमस्य तावन्नो यावच्छापो द्विजोद्भवः ॥ अग्निना ज्वाल्यते दृश्यं शापोदृष्टानपि स्वयम् ॥ २९ ॥ हन्ति जातानजातांश्च तस्माद्विप्रं न कोपयेत् ॥ विप्रकोपाग्निना दग्धो नरकान्नैव मुच्यते ॥ ३० ॥ शस्त्रक्षतोऽपि नरकान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ देवानामपि सर्वेषां सामर्थ्यं भेदने न हि ॥ ३१ ॥ वाङ्मात्रेण हि विप्रस्य भिद्यते सकलं जगत् ॥ ते यूयं गुरवोऽस्माकं विश्वकारणकारकाः ॥ ३२ ॥ प्रसादपरमा नित्यं भवन्तु भुवनेश्वराः ॥ ईश्वरेण विना सर्वे वयं लोकाश्च दुःखिताः ॥ ३३ ॥ तत्कथ्यतां स भगवान् कुत्रास्ते परमेश्वरः ॥ गालव उवाच ॥ ज्ञात्वा मुनिभय

ब्राह्मण को क्रोधित न करावै और ब्राह्मण की क्रोधाग्नि से जला हुआ मनुष्य नरक से नहीं छूटता है ॥ ३० ॥ व शस्त्र से कटाहुआ भी नरक से छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है और भेदन करने में सब देवताओं की भी सामर्थ्य नहीं होती है ॥ ३१ ॥ और ब्राह्मण के वचनही से सब संसार नाश होजाता है वे आप लोग हम लोगों के गुरु हो व संसार के कारण व कर्ताहो ॥ ३२ ॥ और लोकोंके स्वामी आप लोग सदैव प्रसन्नता से श्रेष्ठ होवो हमलोग और सब लोक शिवजी के विना दुःखित हैं ॥ ३३ ॥ इससे कहिये कि वे परमेश्वर भगवान् शिवजी कहां हैं गालवजी बोले कि त्रिशूलधारी शिवजी को मुनियों के भयसे

4:11 PM 4G 63
32/281

के प्रयोग से नहीं है ॥ ७ ॥ दश वधस्थानों के समान कुम्हार होता है व दश कुम्हारों के बराबर तेली होता है और दश तेलियों के समान वेश्य
दश वेश्याओं ान राजा होता है ॥ ८ ॥ व हे रामजी ! राजा का दान भयंकर होता है यह निस्सन्देह सत्य है उसी कारण हमलोग भयदायक दा
नहीं करते हैं कोई एकाहिक व्रतवाले ब्राह्मण थे व कोई अमृत (अयाचित) जीविकावाले थे और कोई ब्राह्मण कुंभीधान्य व्रतवाले व कोई छ
थे ॥ १० ॥ और कोई तीन मूर्तियों को स्थापन करनेवाले थे इस प्रकार सब पृथक् भाववाले व पृथक् गुणोंवाले थे और कितेक ब्राह्मणों ने यह कहा कि

जनम् ॥७॥ दशसूनासमश्चक्री दशचक्रिसमो ध्वजः ॥ दशध्वजसमा वेश्या दशवेश्यासमो नृपः ॥ ८ ॥ राजप्र
ो राम सत्यं न संशयः॥ तस्माद्वयं न चेच्छामः प्रतिग्रहं भयावहम् ॥ ९ ॥ एकाहिका द्विजाः केचित्केचित
वृत्तयः ॥ कुम्भीधान्या द्विजाः केचित् केचित्षट्कर्मतत्पराः ॥ १० ॥ त्रिमूर्तिस्थापिताः सर्वे पृथग्भावाः पृथग
केचिदेवं वदन्तिस्म त्रिमूर्त्याज्ञां विना वयम् ॥ ११ ॥ प्रतिग्रहस्य स्वीकारं कथं कुर्याम ह द्विजाः ॥ न ताम्बूलं
नो यावद्देवैर्नभाषितम् ॥ १२ ॥ विमृश्य स तदा रामो वसिष्ठेन महात्मना ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनां सस्मार
सह ॥ १३ ॥ स्मृतमात्रास्ततो देवास्तं देशं समुपागमन् ॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशविमानावलिसंवृताः ॥ १४ ॥ रा
यथान्यायं पूजिताः परया मुदा ॥ निवेदितं तु तत्सर्वं रामेणातिसुबुद्धिना ॥ १५ ॥ अधिदेव्या वचनतो जी
करोम्यहम् ॥ धर्मारण्ये हरिक्षेत्रे धर्मकूपसमीपतः ॥ १६ ॥ ततस्ते वाडवाः सर्वे त्रिमूर्त्तीः प्रणिपत्य च ॥ मह

की आज्ञा से हमलोग ॥ ११ ॥ ब्राह्मण कैसे दान को स्वीकार करें क्योंकि जबतक देवता नहीं कहते हैं तबतक हमलोग ताम्बूल को नहीं खाते हैं ॥ १२ ॥
वसिष्ठ गुरु समेत श्रीरामजी ने विचार कर ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिक देवताओं को स्मरण किया ॥ १३ ॥ तदनन्तर स्मरण किये हुए वे विमानों की पांति
करोड़ों सूर्यों के समान देवता उस स्थान को आये ॥ १४ ॥ और श्रीरामजी ने उनको बड़े हर्ष से यथायोग्य पूजन किया और उत्तम बुद्धिवाले श्रीरा
सब वृत्तान्त को बतलाया ॥ १५ ॥ धर्मारण्य विष्णुक्षेत्र में धर्मकूप के समीप से मैं अधिदेवी के वचन से जीर्णोद्धार करता हूं ॥ १६ ॥ तदनन्तर वे स

होती है ॥ ५३ ॥ और अपराध समेत पुत्र, पिता व भाई में जो पक्षपात करता है उसके ऊपर हनुमान्जी क्रोधित होते हैं ॥ ५४ ॥ और ये क्रोधित हनुमान्जी धन का नाश करते हैं व पुत्रनाश करते हैं और घर को नाश करतेहैं ॥ ५५ ॥ और सेवाके लिये बनाया हुआ जो शूद्र ब्राह्मणों की सेवा नहीं करता है व जो जीविकाको नहीं देता है उसके ऊपर हनुमान्जी क्रोधित होते हैं ॥ ५६ ॥ व श्रीरामजी का वचन स्मरण करते हुए हनुमान्जी धननाश, पुत्रनाश व स्थाननाश करते हैं ॥ ५७ ॥ व हे नृपोत्तम ! श्रीरामजी की प्रसन्नता से जहां कहीं भी स्थित वे ब्राह्मण या शूद्र धनहीन नहीं होते हैं ॥ ५८ ॥ और जो मूर्ख व अधर्मी पाप और पापण्डमें स्थित होकर अपने

कारिणाम् ॥ ५३ ॥ सापराधे यस्तु पुत्रे ताते भ्रातरि चापि वा ॥ पक्षपातं प्रकुर्वीत तस्य कुप्यति वायुजः ॥ ५४ ॥ कुपितो हनुमानेष धननाशं करोति वै ॥ पुत्रनाशं करोत्येव धामनाशं तथैव च ॥ ५५ ॥ सेवार्थं निर्मितः शूद्रो न विप्रान्परिषेवते ॥ वृत्तिं वा न ददात्येव हनुमांस्तस्य कुप्यति ॥ ५६ ॥ अर्थनाशं पुत्रनाशं स्थाननाशं महाभयम् ॥ कुरुते वायुपुत्रो हि रामवाक्यमनुस्मरन् ॥ ५७ ॥ यत्र कुत्र स्थिता विप्राः शूद्रा वा नृपसत्तम ॥ न निर्द्धना भवेयुस्ते प्रसादाद्राघवस्य च ॥ ५८ ॥ यो मूढश्चाप्यधर्मात्मा पापपाषण्डमाश्रितः ॥ निजान्विप्रान्परित्यज्य परज्ञातींश्च मन्यते ॥ ५९ ॥ तस्य पूर्वकृतं पुण्यं भस्मीभवति नान्यथा ॥ अन्येषां दीयते दानं स्वल्पं वा यदि वा बहु ॥ ६० ॥ वृथा भवति वै पूर्वं ब्रह्मविष्णुशिवैः स्मृतम् ॥ तस्य देवा न गृह्णन्ति हव्यं कव्यं च पूर्वजाः ॥ ६१ ॥ वञ्चयित्वा निजान्विप्रानन्येभ्यः प्रददेत्तु यः ॥ तस्य जन्मार्जितं पुण्यं भस्मीभवति तत्क्षणात् ॥ ६२ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवैश्चैव पूजिता ये

ब्राह्मणों को छोड़कर पराये कुटुम्बों को मानता है ॥ ५९ ॥ उसका पहले किया हुआ पुण्य भस्म होजाता है अन्यथा नहीं होता है और अन्य लोगों को थोड़ा या बहुत जो दान दियाजाता है ॥ ६० ॥ वह वृथा होजाता है ऐसा ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से कहागया है और पूर्वज पितरलोग उसके हव्य व कव्य को नहीं ग्रहण करते हैं ॥ ६१ ॥ और अपने ब्राह्मणों को छलकर जो अन्यलोगोंके लिये दान देता है उसका जन्म में इकट्ठा कियाहुआ पुण्य उसी क्षण भस्म होजाता है ॥ ६२ ॥ ब्रह्मा, विष्णु

करूंगा ॥ ३३ ॥ गालव मुनिने विनय से झुँके हुए शूद्र से धर्मोंको कहा पैजवन बोला कि हे द्विजोत्तम ! तुम मुझसे दया से उपजी हुई बुद्धि को कहो क्योंकि मुझको वेद में अधिकार नहीं है व वेदसार के जपका अधिकार नहीं है ॥ ३४ ॥ व पुराणों व स्मृतियों के पाठका अधिकार नहीं है उस कारण मुझसे कुछ कहिये और तत्त्वात्म के समान कुछ महाफलवान् रूप जान पड़ता है ॥ ३५ ॥ और चातुर्मास्य में विशेषकर मुक्ति साधन करनेवाले यत्न को कहो ॥ ३६ ॥ गालवजी बोले कि, जो मनुष्य सदैव शालग्राम में प्राप्त व चक्रांकित पुटवाले विष्णुजी को पूजते हैं उनके समीपही भक्ति होती है ॥ ३७ ॥ और जिसका मन शालग्राममें होता है

योर्थं चात्मनस्तथा ॥ ३३ ॥ प्रत्युवाच मुनिर्धर्मान् विनयानतकन्धरम् ॥ पैजवन उवाच ॥ मामनुग्रहजां बुद्धिं ब्रूहि त्वं द्विजपुङ्गव ॥ वेदेऽधिकारो नैवास्ति वेदसारजपस्य वा ॥ ३४ ॥ पुराणस्मृतिपाठस्य तस्मात्किञ्चिद्वदस्व मे ॥ तत्त्वात्मसदृशं किञ्चिद्भाति रूपं महाफलम् ॥ ३५ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण मुक्तिसंसाधकं वद ॥ ३६ ॥ गालव उवाच ॥ शालग्रामगतं विष्णुञ्चक्राङ्कितपुटं सदा ॥ येऽर्चयन्ति नरा नित्यं तेषां भक्तिस्त्वदूरतः ॥ ३७ ॥ शालग्रामे मनो यस्य यत्किञ्चित्क्रियते शुभम् ॥ अक्षय्यं तद्भवेन्नित्यं चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ ३८ ॥ शालग्रामशिला यत्र यत्र द्वारावती शिला ॥ उभयोः संगमः प्राप्तो मुक्तिस्तस्य न दुर्लभा ॥ ३९ ॥ शालग्रामशिला यस्यां भूमौ सम्पूज्यते नृभिः ॥ पञ्चक्रोशं पुनात्येषा अपि पापशतान्वितैः ॥ ४० ॥ तैजसं पिण्डमेतद्धि ब्रह्मरूपमिदं शुभम् ॥ यस्याः संदर्शनादेव सद्यः कल्मषनाशनम् ॥ ४१ ॥ सर्वतीर्थानि पुण्यानि देवतायतनानि च ॥ नद्यः सर्वा महाशूद्र तीर्थत्वं प्राप्नुवन्ति हि ॥ ४२ ॥

वह जो कुछ उत्तम कर्म को करता है वह सदैव अक्षय होता है और चातुर्मास्य में विशेषकर अक्षय होता है ॥ ३८ ॥ जहां शालग्राम शिला होती है व जहां द्वारावती शिला होती है और जिसने दोनोंके संगम को पाया है उसको मुक्ति दुर्लभ नहीं है ॥ ३९ ॥ और शालग्राम की शिला को सैकड़ों पापों से सयुत मनुष्य जिस भूमि में पूजते हैं वहां पांच कोसतक यह शिला पवित्र करती है ॥ ४० ॥ यह उत्तम व ब्रह्मरूप तैजसपिंड है कि जिसके दर्शन से शीघ्रही पातकों का विनाश होता है ॥ ४१ ॥ व हे महाशूद्र ! सब तीर्थ तथा देवमन्दिर पवित्र होते हैं और सब नदियां तीर्थत्व को प्राप्त होती हैं ॥ ४२ ॥ और उसकी समीपता से सब कहीं

क्योंकि तुम गुरु माने गये हो ॥ ६० ॥ शूद्र से ऐसा कहे हुये उस ने इस सब को कहा और इसने उस शूद्र को पितृकर्मादिक कराया ॥ ६१ ॥ व पितृकार्य करने पर उस शूद्र से बिदा किया हुआ वह ब्राह्मण चला गया इस के बहुत समय से शूद्रयोनि करके पालित ॥ ६२ ॥ वही यह ब्राह्मण विप्रवृन्दों से छूटा हुआ मृत्यु को प्राप्त हुआ और यमराज के दूतोंने लेजाकर उस को नरकों में डालदिया ॥ ६३ ॥ और करोडों हज़ार कल्प व करोडों सौ कल्पतक क्रम से नरकों को भोग कर उस के बाद स्थावर याने वृक्षादिक हुआ ॥ ६४ ॥ तदनन्तर गदहा पैदाहुआ उस के उपरान्त विड्वराह हुआ इस के उपरान्त कुत्ता हुआ पश्चात् काकत्व को प्राप्त हुआ ॥ ६५ ॥ इसके

शात् ॥ कारयामासतस्यायं पितृकार्यादिकंतथा ॥ ६१ ॥ पितृकार्येकृतेतेन विसृष्टःसद्दिजोगतः ॥ अथदीर्घेणकालेन पोषितः शूद्रयोनिना ॥ ६२ ॥ त्यक्तोविप्रगणैःसोयं पञ्चत्वमगमद्द्विजः ॥ वैवस्वतभटैर्नीत्वा पातितोनरकेष्वपि॥६३॥ कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानिच ॥ भुक्त्वाक्रमेणनरकांस्तदन्तेस्थावरोभवत् ॥ ६४ ॥ गर्दभस्तुततोजज्ञे विड्वराहस्ततःपरम् ॥ जज्ञेथसारमेयोसौ पश्चाद्वायसताङ्गतः ॥ ६५ ॥ अथचण्डालतांप्राप शूद्रयोनिमगात्ततः ॥ गतवान्वैश्यतांपश्चात्क्षत्रियस्तदनन्तरम् ॥ ६६ ॥ प्रबलैर्वध्यमानोसौ ब्राह्मणोवैतदाभवत् ॥ उपनीतःसपित्रातु वर्षेगर्भाष्टमे द्विजः ॥ ६७ ॥ वर्तमानःपितुर्गेहे स्वाचाराभ्यासतत्परः ॥ गच्छन्कदाचिद्गहने गृहीतोब्रह्मरक्षसा ॥ ६८ ॥ रुदन्भ्रमन्स्खलन्मूढः प्रहसन्विलपन्नसौ ॥ शश्वद्धाहेतिचवदन्वैदिकंकर्मसोत्यजत् ॥ ६९ ॥ दृष्ट्वासुतंतथाभूतं पितादुःखेनपीडितः ॥ सुतमादायचस्नेहादगस्त्यंशरणंययौ ॥ ७० ॥ भक्त्यामुनिंप्रणम्यासौ पितातस्यसुतस्यवै ॥ तस्मैनिवेदया

अनन्तर चाण्डालताको प्राप्त हुआ तदनन्तर शूद्रयोनि को प्राप्त हुआ पश्चात् वैश्यताको प्राप्त हुआ तदनन्तर क्षत्रिय हुआ ॥ ६६ ॥ और प्रबल क्षत्रियों से मारा गया यह उस समय ब्राह्मण हुआ और पिता ने उस ब्राह्मण का गर्भ से आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत किया ॥ ६७ ॥ और पिता के घर में वर्तमान अपने आचार के अभ्यास में तत्पर हुआ किसी समय वन में जातें हुये उस को ब्रह्मराक्षस ने पकड़ लिया ॥ ६८ ॥ और रोते, घूमते, लरखराते व हँसते और विलाप करते हुये इस ब्राह्मण ने रुदैव हाहा ऐसा कहते हुये वैदिक कर्म को छोड दिया ॥ ६९ ॥ पुत्रको वैसे हुये देखकर पिता दुःखसे पीडित हुआ और पुत्र को लेकर स्नेहसे अगस्त्यजी के शरण गया ॥ ७० ॥

तुम्हारा आना अच्छा हुआ और तुम किसकी स्त्री हो ॥ ४८ ॥ हे वरारोहे ! इस बहुत भयंकर वन में तुम्हारे आने का क्या कारण है तुम थक गई हो इस मेरी कुटी में बसो ॥ ४९ ॥ उस प्रकार कही हुई उस उत्तम कटिवाली स्त्री ने उस मुनि से कहा कि हे मुने ! सुशीलानामक मैं त्रिवक्र राक्षस की स्त्री हूं ॥ ५० ॥ हे मुने ! मैं फूलों के तोड़ने की इच्छा से इस वन को आई थी पुत्र को चाहते हुये अपुत्र पति ने मुझ को पठाया है ॥ ५१ ॥ कि शुचि मुनि को भलीभांति आराधन कर उन से पुत्र को प्राप्त होवोगी पति से इस प्रकार आज्ञा दी हुई मैं तुम्हारे समीप आई हूं ॥ ५२ ॥ हे मुने ! तुम मेरे ऊपर दया करो व मेरे पुत्र को उत्पन्न करो उस स्त्री से ऐसा

कस्यभार्याशुचिस्मिते ॥ ४८ ॥ किमागमनकृत्यंते वनेस्मिन्नतिभीषणे ॥ श्रान्तासित्वंवरारोहे वसास्मिन्नुटजे मम ॥ ४९ ॥ तथोक्तासातुसुश्रोणी तंमुनिंप्रत्यभाषत ॥ त्रिवक्ररक्षोभार्याहं सुशीलानामतोमुने ॥ ५० ॥ पुष्पोपचयकामेन वनमेतत्समागता ॥ अपुत्राहंमुनेभर्त्रा प्रेरितापुत्रमिच्छता ॥ ५१ ॥ शुचिंमुनिंसमाराध्य तस्मात्पुत्रमवाप्नुहि ॥ इतिप्रतिसमादिष्टा पतिनात्वांसमागता ॥ ५२ ॥ पुत्रमुत्पादयत्वंमे कृपांकुरुमुनेमयि ॥ तथैवमुक्तःसशुचिः सुशीलांतामभाषत ॥ ५३ ॥ शुचिरुवाच ॥ त्वांदृष्ट्वाममचप्रीतिः सुशीलेविद्यतेधुना ॥ मनोरथमहाम्भोधिं त्वमापूरय मामकम् ॥ ५४ ॥ इत्युक्त्वासमुनिस्तत्र तयारेमेदिनत्रयम् ॥ तामुवाचमुनिःप्रीतः सुशीलांसुन्दराकृतिम् ॥ ५५ ॥ तवोदरेमहावीर्यः कपालाभरणाभिधः ॥ भविष्यतिचिरंराज्यं पालयिष्यतिसुन्दरि ॥ ५६ ॥ सहस्रंवत्सराञ्जीवेत्तपसा प्रीणयन्विधिम् ॥ पुरन्दरंविनान्येभ्यो देवेभ्योनास्यवध्यता ॥ ५७ ॥ ईदृशस्तेसुतोभूयादिन्द्रतुल्यपराक्रमः ॥ इत्यु

कहे हुये उन शुचि मुनि ने उस सुशीला स्त्री से कहा ॥ ५३ ॥ शुचि बोले कि हे सुशीले ! इस समय तुम को देखकर मुझ को भी आनन्द होता है तुम मेरे मनोरथ के महासागर को पूर्ण करो ॥ ५४ ॥ यह कहकर उन मुनि ने उस के साथ तीन दिन तक रमण किया और प्रसन्न होते हुये मुनि ने उस सुन्दर आकारवाली स्त्री से कहा ॥ ५५ ॥ कि हे सुन्दरि ! तुम्हारे पेट में बडा बलवान् कपालाभरण नामक पुत्र होगा और यह बहुत दिनोंतक राज्य को पालन करैगा ॥ ५६ ॥ और तपस्या से ब्रह्मा को प्रसन्न करता हुआ वह हज़ारों वर्षोंतक जियेगा और इन्द्र के विना अन्य देवताओं से इस की मृत्यु न होगी ॥ ५७ ॥ इन्द्र के तुल्य पराक्रमी तुम्हारे ऐसा पुत्र

संयुत ॥ ५७ ॥ दशरथकुमार श्रीराम राजा ने अपना को कृतार्थ सा माना और वे शीघ्रता से उठकर आगे पैदल चले ॥ ५८ ॥ और हाथों को जोड़कर हर्ष से आँसुवों को छोड़ते हुए श्रीरामजी ने घुटुनुवों से पृथ्वी को प्राप्त होकर यह वचन कहा ॥ ५९ ॥ कि ब्राह्मणों की प्रसन्नतासे मैं लक्ष्मीपति हूं व ब्राह्मणों की प्रसन्नता से मैं पृथ्वी को धारण किये हूं और ब्राह्मणों की प्रसन्नता से मैं पृथ्वी का स्वामी हूं व ब्राह्मणों की प्रसन्नता से मेरा राम नाम है ॥ ६० ॥ श्रीरामजी से ऐसा कहे हुए वे ब्राह्मण प्रसन्न हुए व उन्होंने जय के आशीर्वादों से पूजकर दीर्घायु होवो यह कहा ॥ ६१ ॥ और श्रीरामजी ने उनको पाद्य, अर्घ्य व विष्टरादिक दिया व दंडा की नाईं

मानपुरःसराः ॥ समागतान्द्विजान्दृष्ट्वा रोमाञ्चिततनूरुहः ॥ ५७ ॥ कृतकृत्यमिवात्मानं मेने दाशरथिर्नृपः ॥ स सं भ्रमात्समुत्थाय पदातिः प्रययौ पुरः ॥ ५८ ॥ करसम्पुटकं कृत्वा हर्षाश्रु प्रतिमुञ्चयन् ॥ जानुभ्यामवनिं गत्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥ ५९ ॥ विप्रप्रसादात्कमलावरोऽहं विप्रप्रसादाद्धरणीधरोऽहम् ॥ विप्रप्रसादाज्जगतीपतिश्च विप्रप्रसादान्मम रामनाम ॥ ६० ॥ इत्येवमुक्ता रामेण वाडवास्ते प्रहर्षिताः ॥ जयाशीर्भिः प्रपूज्याथ दीर्घायुरिति चाब्रुवन् ॥ ६१ ॥ आवर्जितास्ते रामेण पाद्यार्घ्यविष्टरादिभिः ॥ स्तुतिं चकार विप्राणां दण्डवत्प्रणिपत्य च ॥ ६२ ॥ कृताञ्जलिपुटः स्थित्वा चक्रे पादाभिवन्दनम् ॥ आसनानि विचित्राणि हैमान्याभरणानि च ॥ ६३ ॥ समर्पयामास ततो रामो दशरथात्मजः ॥ अङ्गुलीयकवासांसि उपवीतानि कर्णकान् ॥ ६४ ॥ प्रददौ विप्रमुख्येभ्यो नानावर्णाश्च धेनवः ॥ एकैकशतसंख्याका घटोध्नीश्च सवत्सकाः ॥ ६५ ॥ सवस्त्रा बद्धघण्टाश्च हेमशृङ्गविभूषिताः ॥ रूप्यखुरास्ताम्र

प्रणाम करके स्तुति किया ॥ ६२ ॥ और हाथों को जोड़कर स्थित होकर चरणों को प्रणाम किया व विचित्र आसन व सुवर्ण के गहनों को दिया ॥ ६३ ॥ तदनन्तर दशरथ के पुत्र श्रीरामजी ने अँगूठी, वसन, यज्ञोपवीत व कर्णाभरणों को दिया ॥ ६४ ॥ व मुख्य ब्राह्मणों के लिये अनेक प्रकार के रंगवाली तथा घड़ा के समान ऐनवाली बछड़ा समेत एक एक सौ गौवों को मुख्य ब्राह्मणों के लिये दिया ॥ ६५ ॥ और बँधेहुए घंटोंवाली तथा सुवर्ण के शृंगों से भूषित व चांदी के खुर और ताँबे की पीठवाली

को न पढ़ावै न यज्ञ करावै और न शूद्रको व्याकरणादिक शास्त्र पढ़ावै ॥ ४० ॥ और काव्य, नाटक व अलंकार और पुराण व इतिहासको शूद्रको न पढ़ावै ॥४१॥ यदि ब्राह्मण शूद्र को कदाचित् इन उपर्युक्त वस्तुवों का उपदेश करै तो ब्राह्मणों से संयुत ग्राम से उसको ब्राह्मणलोग छोड़ देवैं ॥ ४२ ॥ और शूद्र के लिये उपदेश करने वाले ब्राह्मण को चाडाल की नाईं त्याग करै और अक्षर से संयुत शूद्रको दूरसे छोडदेवै ॥४३॥ इसलिये तुम्हारा कल्याण होवै और श्रद्धा समेत तुम ब्राह्मणोंकी सेवा करो क्योंकि मनु आदिक महर्षियों ने शूद्र को ब्राह्मण की सेवा कहा है ॥ ४४ ॥ तुम नैसर्गिक कर्म को छोड़ने के योग्य नहीं हो मुनिसे ऐसा कहे हुये शूद्रने उससमय विचार

व्याकरणादिकम् ॥ ४० ॥ काव्यंवानाटकंवापि तथालङ्कारमेवच ॥ पुराणमितिहासंच शूद्रंनैवतुपाठयेत् ॥४१॥ यदि चोपदिशेद्विप्रः शूद्रस्यैतानिकर्हिचित् ॥ त्यजेयुर्ब्राह्मणाविप्रं तंग्रामाद्ब्रह्मसङ्कुलात् ॥४२॥ शूद्रायचोपदेष्टारं द्विजंचण्डालवत्त्यजेत् ॥ शूद्रंचाक्षरसंयुक्तं दूरतःपरिवर्जयेत् ॥ ४३ ॥ अतःशुश्रूषभद्रन्ते ब्राह्मणाञ्छ्रद्धयासह ॥ शूद्रस्यद्विजशुश्रूषा मन्वादिभिरुदीरिता ॥ ४४ ॥ नहिनैसर्गिकंकर्म परित्यक्तुंत्वमर्हसि ॥ एवमुक्तस्तुमुनिना सशूद्रोचिन्तयत्तदा ॥ ४५ ॥ किंकर्तव्यंमयात्वद्य व्रतेश्रद्धाहिमेपुरा ॥ यथास्यान्ममविज्ञानं यतिष्येहंतथाद्यवै ॥ ४६ ॥ इतिनिश्चित्यमनसा शूद्रोदृढमतिस्तदा ॥ गत्वाश्रमपदाद्दूरं कृतवानुटजंशुभम् ॥ ४७ ॥ तत्रवैदेवतागारं पुण्यान्यायतनानिच ॥ पुष्पारामादिकं चापि तटाकखननादिकम् ॥ ४८ ॥ श्रद्धयाकारयामासतपःसिद्ध्यर्थमात्मनः ॥ अभिषेकांश्चनियमानुपवासादिकानपि ॥ ४९ ॥ बलिंचकृत्वाहुत्वाच दैवतान्यभ्यपूजयत् ॥ सङ्कल्पनियमोपेतः फलाहारोजितेन्द्रियः ॥ ५० ॥ नित्यंकन्दै

किया ॥ ४५ ॥ कि इससमय मुझ को क्या करना चाहिये पहिले मुझ को व्रत में श्रद्धा हुई है और जिसप्रकार मुझको विज्ञान होवै उसी प्रकार मैं इस समय यत्न करूंगा ॥४६॥ उस समय दृढ़मति शूद्र ने इस प्रकार मन से निश्चय कर आश्रमस्थान से दूर जाकर उत्तम कुटी को बनाया ॥ ४७ ॥ और वहां देवालय व पवित्र मन्दिरों को तथा फूलों का बग़ीचा और तड़ागखनन आदिक ॥ ४८ ॥ अपने तप की सिद्धिकेलिये श्रद्धा से बनवाया और अभिषेक, नियम व उपवासादिक ॥ ४९ ॥ और पूजन

वर्द्धकी नापितो गोप आशापः कुम्भकारकः ।।१०।।
वणिक्किरातकायस्थमालाकारकुटुम्बिनः ।
वरटो मेदचण्डालदासश्वपचकोलकाः ।।११।।
एतेऽन्त्यजाः समाख्याता ये चान्ये च गवाशनाः ।
एषां सम्भाषणात् स्नानं दर्शनादर्कवीक्षणम् ।।१२।।

बढ़ई, नाई, ग्वाला, आशाप, कुम्हार, वणिक्, किरात कायस्थ, माली

और कुटुम्बी, वरट, मेद, चण्डाल, मछेरा, श्वपच और कोलक, और जो गउओं का भक्षण करने वाले है—ये सब अन्त्यज (नीच जाति) कहे गए हैं। इनके साथ वार्त्तालाप करके स्नान करे, और इनका दर्शन होने पर सूर्य का दर्शन करे।

चिंतामापेदिरे सर्वे चिरंते विषयान्विताः। ब्रह्माऽपि चेंद्रियग्रस्तः सुतां रमितुमुद्यतः॥५७॥
इन्द्रोहि जारभावाच्च चन्द्रोहि गुरुतल्पगः। यमः कदर्यभावाच्च चंचलत्वात्सदागतिः॥५८॥
पावकःसर्वभक्षित्वात्तथाऽन्येदेवतागणाः। अशक्ता रावणंजेतुंतपसा च विजृंभितम्॥५९॥

"हे सुरेश्वर गण! इस प्रकार रावण ने शिव से समस्त इच्छित वर प्राप्त कर लिया। अतः तुम सब भी परम तपस्या द्वारा रावण को जय करो। यही मेरा मनोगत अभिप्राय है।" अच्युत का वाक्य सुनकर ब्रह्मादि देवता अपनी विषयासक्ति के कारण चिन्तित हो गये। ब्रह्मा तो इन्द्रियों के वश में होकर अपनी पुत्री से ही रमणेच्छा करने लगे थे। इन्द्र ने जारभाव प्राप्त किया था (अहिल्या आदि से छलपूर्वक रमण किया था)। चन्द्र ने गुरुपत्नी गमन किया था। यम सदा कदर्यभाव के वशीभूत रहते हैं। वायु सर्वदा चंचल हैं। अग्नि सर्वभक्षी हैं। इस प्रकार अन्य देवता भी विषयों में आसक्त हैं। तभी तपबल से उद्दीप्त रावण को जीतने की शक्ति उनमें नहीं है।।५५-५९।।

शैलादो हि महातेजा गणश्रेष्ठः पुरातनः। बुद्धिमान्नीतिनिपुणो महाबलपराक्रमी॥६०॥
शिवप्रियो रुद्ररूपी महात्मा ह्युवाच सर्वानथ चन्द्रमुख्यान्।
कस्माद्यूयं संभ्रमादागताश्च एतत्सर्वं कथ्यतां विस्तरेण॥६१॥
नंदिना च तदा सर्वे पृष्टाः प्रोचुस्त्वरान्विताः॥६२॥

8:23 AM

Post

@WasimAkramTyagi and 2 others

जैसे यह कोई पुस्तक है
और इस का लेखक शूद्रों की जान को सुअर की जान
सुअर की मौत के बराबर बता रहा है

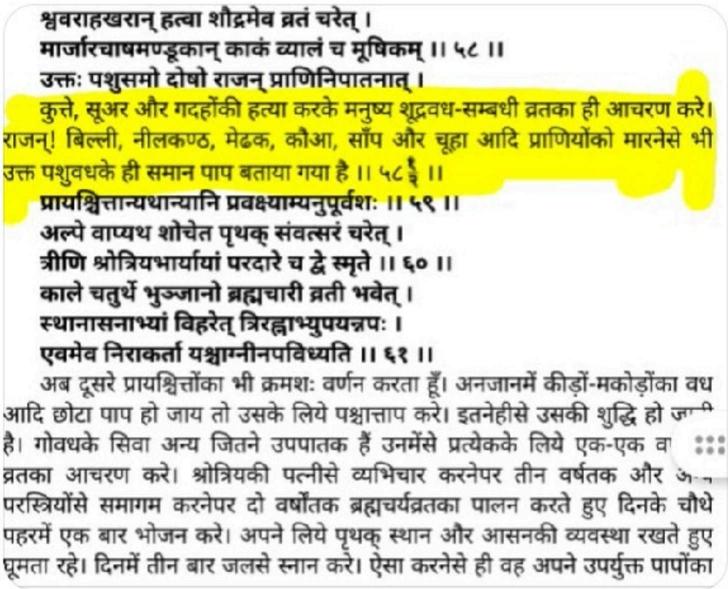

श्ववराहखरान् हत्वा शौद्रमेव व्रतं चरेत् ।
मार्जारचाषमण्डूकान् काकं व्यालं च मूषिकम् ॥ ५८ ॥
उक्तः पशुसमो दोषो राजन् प्राणिनिपातनात् ।

कुत्ते, सूअर और गदहोंकी हत्या करके मनुष्य शूद्रवध-सम्बधी व्रतका ही आचरण करे। राजन्! बिल्ली, नीलकण्ठ, मेढक, कौआ, साँप और चूहा आदि प्राणियोंको मारनेसे भी उक्त पशुवधके ही समान पाप बताया गया है ॥ ५८½ ॥

प्रायश्चित्तान्यथान्यानि प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥ ५९ ॥
अल्पे वाप्यथ शोचेत पृथक् संवत्सरं चरेत् ।
त्रीणि श्रोत्रियभार्यायां परदारे च द्वे स्मृते ॥ ६० ॥
काले चतुर्थे भुञ्जानो ब्रह्मचारी व्रती भवेत् ।
स्थानासनाभ्यां विहरेत् त्रिरह्नाभ्युपयन्नपः ।
एवमेव निराकर्ता यश्चाग्नीनपविध्यति ॥ ६१ ॥

अब दूसरे प्रायश्चित्तोंका भी क्रमशः वर्णन करता हूँ। अनजानमें कीड़ों-मकोड़ोंका वध आदि छोटा पाप हो जाय तो उसके लिये पश्चात्ताप करे। इतनेहीसे उसकी शुद्धि हो जा[illegible] है। गोवधके सिवा अन्य जितने उपपातक हैं उनमेंसे प्रत्येकके लिये एक-एक व[illegible] व्रतका आचरण करे। श्रोत्रियकी पत्नीसे व्यभिचार करनेपर तीन वर्षतक और अ[illegible] परस्त्रियोंसे समागम करनेपर दो वर्षोंतक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए दिनके चौथे पहरमें एक बार भोजन करे। अपने लिये पृथक् स्थान और आसनकी व्यवस्था रखते हुए घूमता रहे। दिनमें तीन बार जलसे स्नान करे। ऐसा करनेसे ही वह अपने उपर्युक्त पापोंका

1 4

Pushkar Jha
@pushkar4u92

Follow

Replying to @MD_ABID_qasmi @WasimAkramTyagi and 2 others

तुम्हें जिसने दुनिया मे लाया है उसका औकात बताया है
हदीस मे गधा और कुत्ते के बराबर 😉

वैसे एडिट किया हुआ ये दिखा कर कुछ भी साबित नहीं कर पाओगे क्यूंकि यहां जो शूद्र है वो अल्लाह और रसूल को बोला गया है 😐😐

Translate post

Post your reply

भीतो दुर्जनसङ्गत्या चरन्द्वीपान्तरे वसन्॥८७॥

पादास्त्रयो गताह्यस्यकलेःपादैऽन्त्यकेऽपि च। गताःसार्द्धत्रयोभागाइदानींजनका इमे॥८८॥

नाऽहं वेद्मि भवद्दुःखंवृथाजन्मगतं मम। यस्मिन्कुले त्वहं जातऋणंपित्रोर्नवैहृतम्॥८९॥

किं तेनजातमात्रेणभूभारेणाऽत्र शत्रुणा। यो जातोनार्चयेद्विष्णुंपितृन्देवानृषींस्तथा॥९०॥

पितृगण का वाक्य सुनकर विस्मित हो गये धर्मवर्ण रुदन करने लगे तथा हाथ जोड़कर कहने लगे। उस समय उनका शरीर कांप रहा था। धर्मवर्ण कहते हैं—"आप लोगों का वंशधर दुराग्रही धर्मवर्ण मैं ही हूं। पुष्कर क्षेत्र की यज्ञभूमि में देवर्षि नारद से सुना था कि कलिकाल में किसी का भी लिंग तथा जिह्वा पर वश नहीं रहेगा। तत्पश्चात् मैंने क्रमशः भूतल पर मानवगण की पापपरायणता को देखा तथा मैं भयभीत हो गया। मैंने तत्काल दुर्जनों का संग त्याग दिया तथा ऊर्ध्वरेता होकर एक द्वीप से दूसरे द्वीप में विचरण करता रहता हूं। हे जनकगण! कलिकाल का पादत्रय व्यतीत हो चुका है। अब अन्तिम पाद चल रहा है। उसका भी साढ़े तीन पाद

8:01 PM

बीत जाने पर पार्वती देवी कुमार को जन्म देंगीं।'' देवगण की यह प्रार्थना सुनकर अग्नि ने 'ओम्' शब्द का उच्चारण किया तथा देवगण की प्रार्थना स्वीकार करके शिव के समीप पहुंचे।।६१-६४।।

वीर्योत्सर्गात्पूर्वमेव गतो वह्नी रतान्तरे। तं दृष्ट्वाव्रीडिता देवी विवस्त्रा विमनाययौ॥६५॥
रतिं विहाय त्वरया ततो रुद्रोऽतिकोपितः। वह्निं प्राह गृहाणेदमभिसृष्टन्तु दुर्मते॥६६॥
मद्वीर्यं दुःसहं पाप रतौविघ्नस्त्वयाऽभवत्। उत्सृजामि मद्वीर्यं त्वन्मुखेहव्यवाहन!॥६७॥
इत्युक्त्वोत्सृष्टवान्वीर्यंहव्यवाहमुखेहरः। तद्धृत्वादह्यमानःसन्स्वोदरेवीर्यमुल्बणम्॥६८॥

अग्निदेव शिव की रति (कामक्रीड़ा) का अवसान होते ही उनके वीर्यपात के पहले ही वहां आ गये। अग्नि को देखते ही विवस्त्रा देवी विमना होकर वहां से चली गयीं। तदनन्तर रति भंग हो जाने के कारण रुद्रदेव ने क्रोधित होकर अग्नि से कहा—''हे दुर्मति! मैं जो यह वीर्यपात कर रहा हूं, इसे तुम धारण करो। हे पापी! तुमने मेरे सुरत कार्य में विघ्न उत्पादित किया है! हे हव्यवाहन! मैं यह दुःसह वीर्य तुम्हारे मुख में छोड़ता हूं।'' तदनन्तर शंकर ने यह कहकर हव्यवाहन के मुख में वीर्य त्याग कर दिया।।६५-६८।।

चिन्तयानो ययौधामदेवानांयज्ञपूरुषः। कथंचित्प्राणतो मुक्तो देवेभ्यस्तन्न्यवेदयत्॥६९॥
देवा वह्नीरितं श्रुत्वाहर्षशोकौसमाययुः। स्थितं वीर्यमितिह्लादं कथं तत्प्रसवोभवेत्॥७०॥

यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवो भुवि॥४०॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां वैष्णवखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये जाबालितीर्थमहिमानुवर्णनंनाम पञ्चविंशोऽध्यायः।।२५।।

सूत जी कहते हैं—महापापी दुराचार इस तीर्थ में स्नान मात्र से पुनर्जन्मरहित होकर विष्णुलोक चला गया। यह आपलोगों से दुराचार का मुक्ति वृत्तान्त कहा है। अतः यह तीर्थ पुण्यतम, सर्वपापहर तथा शोभन है। जिन पापों से कहीं छुटकारा नहीं मिलता, वे सभी पाप इस तीर्थ में नष्ट हो जाते हैं। शूद्र पूजित लिंग अथवा शूद्रपूजित विष्णु मूर्त्ति को जो द्विज प्रणाम करता है, ऋषियों के स्मृतिशास्त्र में उसका कोई प्रायश्चित्त नहीं है, तथापि जाबालि तीर्थ में स्नान मात्र से वह पाप भी नष्ट हो जाता है। विप्रनिन्दक, विश्वासघाती, कृतघ्न तथा भाई की पत्नी से गमन करने वाले का कोई प्रायश्चित्त शास्त्र में नहीं है। जाबालि तीर्थ में स्नान करने से ये भी शुद्ध हो जाते हैं। हे विप्रगण! मैंने आपलोगों से जाबालितीर्थ महिमा कह दिया। इस माहात्म्य को सुनने से मानव सर्वपापरहित हो जाता है।।३३-४०।।

।।पञ्चविंश अध्याय समाप्त।।

न गता ब्रह्महत्या मे कपालं तादृशं करे। तदा वकुण्ठमगमं द्रष्टुं लक्ष्मीपतिं हरिम्॥६॥
विनयावनतो भूत्वा नमस्कृत्य पुनः पुनः। सर्वमाख्यातवांस्तस्मैव्यसनं करुणात्मने॥७॥

शिव कहते हैं—"हे वत्स! जैसे वेद हरि के देहरूप हैं, यह क्षेत्र भी तदनुरूप अनादिसिद्ध है। इसके अधिष्ठाता हैं साक्षात् हरि तथा नारदादि ऋषिगण इनकी सेवा करते हैं। पूर्वकाल में सत्ययुग में ब्रह्मा ने अपनी रूपयौवनयुता कन्या को देखा तथा उससे मैथुनार्थ उद्यत हो गये। मैंने ब्रह्मा का यह दुर्व्यवहार देखा तब क्रोध के कारण खड्ग से उनका शिर काट दिया। मेरे द्वारा ब्रह्मा का शिरच्छेद करने के कारण कपालरूपा ब्रह्महत्या ने मुझ पर आश्रय लिया तब मैं शीघ्रतापूर्वक उस ब्रह्मकपाल को हाथ में लेकर तीर्थ सेवनार्थ निकला। कभी स्वर्ग, कभी भूतल, कभी पाताल पर तपश्चरण एवं तीर्थ सेवा करने लगा तथापि ब्रह्महत्या ने मुझे नहीं छोड़ा। वह कपाल पूर्ववत् मेरी हथेली में ही संलग्न रह गया! तब मैं रमापति हरि के दर्शनार्थ वैकुण्ठ गया तथा विनयावनत होकर पुनः-पुनः नमस्कार द्वारा उन करुणात्मा से अपना समस्त वृत्तान्त कहा।"।।२-७।।

तस्योपदिष्टमादाय बदरीं समुपागतः। तत्क्षणाद्ब्रह्महत्या मे वेपमाना मुहुर्मुहुः॥८॥
अन्तर्हितं कपालं तत्कराद्विगलितं मम। ततः प्रभृति तत्क्षेत्रं पार्वत्या सह सादरम्॥९॥

उन्होंने मुझे बदरीदर्शनार्थ जाने का उपदेश दिया। मैं उनके उपदेश को मानकर बदरीतीर्थ पहुंचा। तब ब्रह्महत्या ने मुझे तत्क्षण त्याग दिया तथा वह कपाल भी मेरे हाथों से गिर गया। हे पुत्र! तब से मैं पार्वती के साथ आदरपूर्वक इस बदरीतीर्थ में निवास करता हूं।।८-९।।

सर्वे सङ्गत्यसम्मन्त्र्यमिथाएवंबभाषिरे। कामीवाऽभूद्रतौनित्यंसक्तोदेव्याहरःस्वराट्॥५८॥

नाऽस्माकं सिद्ध्यते कार्यं नित्यं गर्भस्य संस्त्रवात्।

पुना रतिर्यथा नाऽभूत्तथाऽस्माभिर्विधीयताम्॥५९॥

हे नृपश्रेष्ठ! नारीगण के गर्भ धारण विषय में शचीपति की एक अभिशाप वाणी प्रचलित है। उन्होंने (इन्द्र) अभिशाप दिया था कि यदि स्त्रियां गर्भधारण के उपरान्त पुनः पुरुष संसर्ग करती हैं, तब उनका गर्भस्राव होगा। इस कारण शिव के सम्बन्ध में भी यही घटित हो गया। वे नित्य-प्रति रमण करते थे। इससे पहले दिन का टिका गर्भ अगले दिन नष्ट हो जाया करता था। अतः गर्भ स्थिति नहीं हो रही थी। भगवान् हर के रमण काल में भी यही हो रहा था। इसलिये देवी की गर्भवृद्धि नहीं हो पाती थी। यह देखकर देवगण चिन्तित हो गये कि देवी के गर्भ से भूतपति शम्भु के पुत्र का जन्म नहीं हो रहा है! तब समस्त देवता एकत्र होकर परस्पर यह मन्त्रणा करने लगे कि "स्वराट् शंकर अत्यन्त कामुक की तरह कामक्रीड़ा में देवी के प्रति सतत् आसक्त हो रहे हैं, अतः नित्य गर्भस्राव के कारण हमारा कार्य सम्पन्न नहीं हो पा रहा है। अब हमकों यह करना चाहिये, जिससे भूतपति को पुनः रमण क्रिया की रुचि न हो।।५६-५९।।

मिथ एवं तु सम्भाष्यव्यचिन्वन्क्षणमत्रते। अग्निकृत्येविनिश्चित्यह्यूचुर्मानपुरःसरम्॥६०॥

ते देवता इस प्रकार परस्परतः विचार करने के अनन्तर यह सोचने लगे कि कौन देवता इस कार्य में

तानि नाऽऽप्नोति मनुजः स्वामितीर्थनिमज्जनात्।
पुष्करिण्यां सकृत्स्नानादश्वमेधफलं लभेत्॥३७॥

हे द्विजगण! अनुष्ठान तथा विधिवर्जित होकर जो दाम्भिक यज्ञ में पशुवध करता है, यमकिंकर उसके टुकड़े कर-करके वैशास नरक में फेंक देते हैं, तथापि स्वामिपुष्करिणी में स्नान करने वाला ऐसे नरक भोग को प्राप्त नहीं करता।

जो व्यक्ति अपनी सवर्णा पत्नी को रेतःपान कराता है, वह नरक में वीर्यपायी होता है तथा उसे

यमदूतगण रेतःकुण्ड में फेंक देते हैं, तथापि स्वामिपुष्करिणी में स्नान करने से ऐसा नरक भोग नहीं होता। हे द्विजोत्तमगण! जो दस्यु मार्ग में लूटने हेतु विष देता है, ग्रामदाह करता है, किंवा वणिकों के द्रव्य का हरण करता है, वह मृत्यु के पश्चात् वज्रदंष्ट्र नामक नरक में चिरकाल हेतु गिराया जाता है, तथापि स्वामितीर्थ में स्नान करने से वह मृत्यु के उपरान्त ऐसे नरकों का दर्शन नहीं करता। जो स्वामिपुष्करिणी में मात्र एक बार स्नान

[illegible] शूद्रमेव तु पाठयेत्॥३८॥

कुलपति कहते हैं—मैं हीनजन्मा शूद्र को यज्ञ में दीक्षित कर सकने में समर्थ नहीं हूं। यदि तुम्हारी बुद्धि इस प्रकार प्रशस्त हो गई है, तब तुम सेवा में निरत हो जाओ। देखो! किसी भी हीन जाति को उपदेश देना कर्त्तव्य नहीं है। हीन जाति को उपदेश देने वाला उपाध्याय महादोष भागी हो जाता है। कोई भी बुद्धिमान ब्राह्मण हीन जाति शूद्र का अध्यापन अथवा यजन कार्य नहीं करे। व्याकरणादि उसे न पढ़ायें। यहां तक कि काव्य-नाटक-अलंकार-पुराण-इतिहास भी शूद्र को कभी भी न पढ़ाये।।३५-३८।।

यदि चोपदिशेद्विप्रःशूद्रस्यैतानिकर्हिचित्। त्यजेयुर्ब्राह्मणाविप्रंतंग्रामाद्ब्रह्मसङ्कुलात्॥३९॥
शूद्राय चोपदेष्टारं द्विजं चाण्डालवत्त्यजेत्। शूद्रं चाक्षरसंयुक्तं दूरतः परिवर्जयेत्॥४०॥
तच्छुश्रूषस्व भद्रं ते ब्राह्मणाञ्छ्रद्धया सह। शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा मन्वादिभिरुदीरिता॥४१॥
न हि नैसर्गिकं कर्म परित्यक्तुं त्वमर्हसि। एवमुक्तः स मुनिना सशूद्रोऽचिन्तयत्तदा॥४२॥

"यदि कदाचित् कोई विप्र शूद्र को इन सब शास्त्र का उपदेश देगा, तब इस ब्रह्मसंकुल ग्राम से विप्रगण उसे भगा देंगे। शूद्र को उपदेश देने वाला ब्राह्मण-द्विज तो चाण्डाल के समान त्याज्य है। इसलिये "शूद्र" शब्द का भी दूर से त्याग करो। मनु आदि शास्त्रकारों ने द्विजों की सेवा ही शूद्र धर्म कहा है। अतएव श्रद्धापूर्वक द्विजगण की सेवा करो। यही तुम्हारे लिये श्रेयप्रद है। सुश्रूषा तुम्हारे लिये स्वाभाविक कर्म है। तुम

करोगा। नाना विस्मय के आधार प्रभु शंकर अन्ततः देवी के साथ रमण में प्रवृत्त हो गये।।७८-८१।।

ततो वर्षसहस्त्रेषु देवास्त्वरितमानसाः। ज्वलनं नोदयामासुर्ज्ञातुं शङ्करचेष्टितम्॥८२॥
द्वारि स्थितं प्रतीहारं वञ्चयित्वा च पावकः। पारावतस्य रूपेण प्रविवेशहरान्तिकम्॥८३॥
ददृशे तं च देवेशो विनतां प्रेक्ष्यपार्वतीम्। ततस्तं ज्वलनंप्राह नैतद्योग्यं त्वयाकृतम्॥८४॥
यदिदं क्षुभितं स्थानान्मम तेजोह्यनुत्तमम्। गृहाण त्वंसुदुर्बुद्धेनोवाधक्ष्यामित्वांरुषा॥८५॥

इस रमण में अनेक हजार वर्ष बीत गये। यह देखकर व्याकुल चित्त देवगण ने शंकर का क्रियाकलाप पता लगाने अग्निदेव को भेजा। अग्निदेव कपोत का रूप धारण करके द्वारपाल को धोखा देकर शिव के निकट पहुंच गये। शंकर ने अग्नि को देख लिया। पार्वती भी अग्नि को देखकर क्षुब्ध हो गयीं। तब शंकर ने कुपित होकर पावक से कहा—हे दुर्बुद्धि! तुमने यह उचित कार्य नहीं किया है। मेरा उत्तम तेज (वीर्य) अपने स्थान से उतर चुका है। तुम इसे ग्रहण करो, अन्यथा अपने रोषरूपी तेज से तुमको दग्ध कर दूंगा''।।८२-८५।।

भीतस्ततोऽसौ जग्राह सर्वदेवमुखं च सः। तेन ते वह्निसहिता विह्वलाश्च सुराःकृताः॥८६॥
विपाट्य जठराण्येषां वीर्यं माहेश्वरंततः। निष्क्रान्तं तत्सरो जातं पारदं शतयोजनम्॥८७॥
वह्निश्च व्याकुलीभूतो गङ्गायां मुमुचे सकृत्। दह्यमाना च सा देवी तरङ्गैर्बहिरुत्सृजत्॥८८॥

प्रभु की इस बात से अग्नि भयभीत हो गये। उन्होंने तत्काल उस शिवतेज को ग्रहण किया। अग्नि सभी

अप्राप्तकामासम्प्राप्ताकिमेतत्संशयोमम। रहसीति विचिन्त्याऽथअभिज्ञानाद्विचारयन्॥२८॥
नापश्यद्वामपार्श्वे तु तस्याऽङ्कं पद्मलक्षणम्। लोम्नामावर्तचरितं ततोदेवःपिनाकधृक्॥२९॥
बुद्ध्वातां दानवीं मायां किञ्चित्प्रहसिताननः। मेढ्रे रौद्रास्त्रमाधायचक्रेदैत्यमनोरथम्॥३०॥
स रुदन्भैरवान्नावानवसादं गतोऽसुरः। अबुध्यद्वीरको नैतदसुरेन्द्रनिषूदनम्॥३१॥

महेश्वर की यह बात सुनकर उमारूपी असुर ने आत्मगोपन करते हुये कहा—"आपने जो मुझे काली कह कर विद्रूप किया था, मैं उसी लिये तप करने गई। किन्तु उससे मेरे मन में अशान्ति हो गई। अतः मैं आपके पास आई हूं।" इस बात से शंकर के मन में कुछ शंका हो गई। शंकर ने सोचा कि देवी दृढ़व्रता हैं। यह मैंने स्वयं देखा है। ये कृशांगी मेरे प्रति कुपित होकर तप करने गईं, तथापि अभीष्ट प्राप्त किये बिना ही लौट आईं, इसी से सन्देह हो रहा है। इस सन्देह के निवारणार्थ भगवान् ने यह देखा कि भगवती के वामपार्श्व में रोमों के आवर्त्त से बना एक पद्मचिह्न था, जो इनमें परिलक्षित नहीं हो रहा है, तब पिनाकपाणि दानवी माया को समझ गये। उन्होंने तनिक मुस्कान के साथ अपने लिंग पर ही रौद्रास्त्र योजित किया (भावना तथा मन्त्र द्वारा) तथा उस गिरिजा रूपी दानव (समागम द्वारा) की इच्छा पूर्ण किया, जो योनि में दृढ़ दांत लगाकर आया था। वह दानव लिंगरूपी रुद्रास्त्र के प्रवेश द्वारा भीषण चीत्कार करता अवसन्न हो गया। वीरक इस असुर के संहार वृत्तान्त को समझ ही नहीं सके!।।२५-३१।।

हते च मारुतेनाऽऽशगामिना नगदेवता। अपरिच्छिन्नतत्त्वार्था शैलपत्र्यां न्यवेदयत॥३२॥

उनके पास जाते देखना, तब मुझसे कहना। मैं अविलम्ब उचित उपाय करूंगी।'' यह सुनकर वीरक दुःखरहित तथा आनन्द से आप्लुत होकर बोले—''माता की जो आज्ञा है, वही करूंगा।'' तदनन्तर उन्होंने माता को प्रणाम किया तथा भगवान् त्रिलोचन के दर्शनार्थ चल पड़े।।९-११।।

गजवक्त्रं ततः प्राहप्रणम्य्समवस्थितम्। साश्रुकण्ठं प्रयाचन्तं नय मामपि पार्वति॥१२॥
गजवक्त्रं हि त्वां बाल मामिवोपहसिष्यति। तदागच्छमयासार्धंयागतिर्मेतवापिसा॥१३॥
पराभवाद्धि धूर्तानां मरणं साधु पुत्रक!। एवमुक्त्त्वा समादाय हिमाद्रिं प्रतिसा ययौ॥१४॥

।।इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कुमारेश्वरमाहात्म्ये पार्वत्यास्तपोर्थं गमनवर्णनं नामाऽष्टाविंशोध्यायः।।२८।।

गजानन ने माता को प्रणाम किया तथा नेत्रों में अश्रु भरकर कहा—''मुझे भी साथ ले चलें।'' तब पार्वती ने गजानन से कहा—''वत्स! शंकर मेरी ही तरह गजानन कहकर तुम्हारा उपहास करेंगे। तुम मेरे साथ ही चलो।'' पुत्र! धूर्त के पास पराभव होने से तो मरण ही उचित है।।१२-१४।।

।।अष्टाविंश अध्याय समाप्त।।

चिंतामापेदिरे सर्वे चिरंते विषयान्विताः। ब्रह्माऽपि चेंद्रियग्रस्तः सुतां रमितुमुद्यतः॥५७॥
इन्द्रोहि जारभावाच्च चन्द्रोहि गुरुतल्पगः। यमः कदर्यभावाच्च चंचलत्वात्सदागतिः॥५८॥
पावकःसर्वभक्षित्वात्तथाऽन्येदेवतागणाः। अशक्ता रावणंजेतुंतपसा च विजृंभितम्॥५९॥

"हे सुरेश्वर गण! इस प्रकार रावण ने शिव से समस्त इच्छित वर प्राप्त कर लिया। अतः तुम सब भी परम तपस्या द्वारा रावण को जय करो। यही मेरा मनोगत अभिप्राय है।" अच्युत का वाक्य सुनकर ब्रह्मादि देवता अपनी विषयासक्ति के कारण चिन्तित हो गये। ब्रह्मा तो इन्द्रियों के वश में होकर अपनी पुत्री से ही रमणेच्छा करने लगे थे। इन्द्र ने जारभाव प्राप्त किया था (अहिल्या आदि से छलपूर्वक रमण किया था)। चन्द्र ने गुरुपत्नी गमन किया था। यम सदा कदर्यभाव के वशीभूत रहते हैं। वायु सर्वदा चंचल हैं। अग्नि सर्वभक्षी हैं। इस प्रकार अन्य देवता भी विषयों में आसक्त हैं। तभी तपबल से उद्दीप्त रावण को जीतने की शक्ति उनमें नहीं है।।५५-५९।।

शैलादो हि महातेजा गणश्रेष्ठः पुरातनः। बुद्धिमान्नीतिनिपुणो महाबलपराक्रमी॥६०॥
शिवप्रियो रुद्ररूपी महात्मा ह्युवाच सर्वानथ चन्द्रमुख्यान्।
कस्माद्यूयं संभ्रमादागताश्च एतत्सर्वं कथ्यतां विस्तरेण॥६१॥
नंदिना च तदा सर्वे पृष्टाः प्रोचुस्त्वरान्विताः॥६२॥

महादेव ने विविध वाक्य से भगवती को शान्त करना चाहा, तथापि पार्वती के मर्म पर आघात पहुंचा था, अतः उन्होंने कोप त्याग नहीं किया। उन्होंने शंकर द्वारा पकड़े गये अपने चरणों को झटक कर उनकी पकड़ से छुड़ा लिया। वे द्रुत वेग से आलुलायित (लहराते) केशों की स्थिति में ही वहां से चल पड़ीं। उनको क्रोधपूर्वक जाते देखकर त्रिपुरारि ने पुनः कहा—"तुम सर्वदा अपने पिता के ही समान कन्या हो। हिमालय के समस्त गुण तुममें आ गये हैं। हे देवी! हिमालय के मेघमाला समाकुल शृङ्ग जैसा तुम्हारा मन है। उस शृङ्ग के दुरवगाह (दुरधिगम्य) हृदय जैसा तुम्हारा हृदय है। उस पर्वत की कठोरता जैसा ही तुम्हारी कठोरता है। उसकी विचित्र वनराजि जैसा ही तुम्हारा व्यवहार है। हिमालय की नदियां कुटिल (टेढ़ी-मेढ़ी) बहती हैं, वैसी ही कुटिल हो तथा उसके हिम ऐसा दुःसेव्यत्व (जिसका उपयोग न हो सके) तुम्हारे अन्दर संक्रान्त है।" गिरिजा ने यह सुनकर कोप से कम्पित धुयें जैसे हो गये मुख से अपने चञ्चल अधरों का दांतों से दंशन करके शंकर से कहा—"हे शर्व! आप अपनी तुलना से लोगों की निन्दा न करें। यह तो आपके दुष्ट संसर्ग से ही सभी दोष मुझमें संक्रमित हो गये हैं। आपने सर्पों से अनेक जिह्वत्व (जिह्वा दोहरे वचन बोलना), भस्म से स्नेहशून्यता, चन्द्रमा से हृदय की कलुषता तथा वृष से दुर्बोधत्व पाया है, अथवा अधिक बोलकर व्यर्थ श्रम से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? आप तो श्मशान वासी हैं। नग्नत्व की आपको कोई लज्जा नहीं है। आपके इन दोषों का कहां तक उल्लेख करूं?"।।७५-८४।।

Lal kishore Yadav @iml… · 8h

अपनी अम्मी खुदवाने यहा क्यों आता है, बेटी खोद हम कई बार तुम्हें बोल दिए है कि अगर हमारे धर्म मे कुरीति है तो उसको हम ठीक कर लेंगे वो हमारा इंटरनल मैटर है ! तुम्हें अपने कौम मे कुछ सुधार की बात कर ?? Bsdk.

> محمد عابد قاسمی @MD_ABID_q… · 9h
>
> Replying to @imlalkishore and @Uday_Yadavji
>
> लेखक तुम्हारी जाति को सुअर के पाखाने के समान भी नही मानता
> लेखक को कुछ बोलोगे
>
> वर्द्धकी नापितो गोप आशापः कुम्भकारकः ॥१०॥
> वणिक्किरातकायस्थमालाकारकुटुम्बिनः ।
> वरटो मेदचण्डालदासश्वपचकोलकाः ॥११॥
> एतेऽन्त्यजाः समाख्याता ये चान्ये च गवाशनाः ।
> एषां सम्भाषणात् स्नानं दर्शनादर्कवीक्षणम् ॥१२॥
>
> बढ़ई, नाई, ग्वाला, आशाप, कुम्हार, वणिक्, किरात कायस्थ, माली
>
> ४१८ व्यासस्मृतिः
>
> और कुटुम्बी, वरट, मेव, चण्डाल, मछेरा, श्वपच और कोलक, और जो गउओं का भक्षण करने वाले है—ये सब अन्त्यज (नीच जाति) कहे गए हैं। इनके साथ वार्त्तालाप करके स्नान करे, और इनका दर्शन होने पर सूर्य का दर्शन करे।

8:34 PM

स्वभाववाली, दुश्चेष्टावाली स्त्रियां उस प्रकार भाव से दुर्ग्राह्य होती है, जैसे बुद्धिमान् पुरुष के रति के ग्रहण करने से वश में होती हैं।।२८।। काष्ठों से अग्नि नहीं लिप्त होती है, नदियों से समुद्र नहीं तृप्त होता तथा काल सब प्राणियों से नहीं तृप्त होता और स्त्रियां पुरुषों से तृप्त नहीं होती हैं।।२९।। हे देवर्षे! सम्पूर्ण स्त्रियों का यह और भी रहस्य है, कि मनुष्य को देखकर शीघ्र ही स्त्री की योनि गीली हो जाती है।।३०।। अच्छी प्रकार

स्नान किये तथा सुगन्धि युक्त निर्मल मनुष्य को देखकर फूटे बर्तन से जल के समान स्त्रियों की योनि बहने लगती है।।३१।। स्त्रियां शरीर को सुख देनेवाले मान और शान्ति के करनेवाले, परम रक्षा करनेवाले स्वामी को भी सहन नहीं करती हैं।।३२।। न काम

जैसे स्वभाववाली हैं, सो सब विदित है ।।१०।। हे देवर्षे! मुझे ऐसे प्रश्न में प्रवृत्त करने को योग्य नहीं हो, ऐसा कहने पर वह सुन्दर अप्सरा मौन हो गई ।।११।। तब देवर्षि श्रेष्ठ नारदजी उसका वह उत्तम वचन को सुनकर लोकों के हित की कामना से फिर उससे बोले ।।१२।। नारदजी बोले– हे सुमध्यमे! झूंठ बोलने में दोष होता है, सत्य में दोष नहीं होता है, ऐसा तू जान, इस कारण सत्य-सत्य कह ।।१३।। सनत्कुमारजी बोले– ऐसा कहने पर वह निश्चितबुद्धि, सुन्दर हास्य करनेवाली अप्सरा वेग से सनातन स्त्रीदोषों को सत्य-सत्य कहने लगी ।।१४।। पंचचूडा बोली– हे नारदजी! कुलीन, नाथवाली, रूपवाली स्त्रियां भी मर्यादा में नहीं रहती हैं, यह स्त्रियों में दोष है ।।१५।। स्त्रियों से अधिक पापी और कोई नहीं, स्त्रियां पापों का मूल हैं, ऐसा आप जानिये ।।१६।। स्त्रियां जाने हुए धनवाले, प्रत्येक रूपवाले यथेप्सित यतियों (संन्यासियों) के समीप प्राप्त होकर भी प्रतीक्षा करने में समर्थ नहीं होती ।।१७।। हे प्रभो! हम स्त्रियों का यह बड़ा बुरा धर्म है, कि पापी मनुष्यों को भी लज्जा का त्याग करके भजती हैं ।।१८।। जो मनुष्य स्त्री को चाहता है तथा उनके समीप जाता है, थोड़ी भी सेवा करता है, स्त्रियां उसी को चाहती हैं ।।१९।। मनुष्यों के बिना अर्थी होने से तथा पतियों के डर से बिना मर्यादावाली स्त्रियां स्वामी की मर्यादा में ठहरती हैं ।।२०।। इन स्त्रियों को कोई अमान्य नहीं और इनमें अवस्था का निश्चय नहीं है, सुरूप वा कुरूप मनुष्य को भोगती हैं ।।२१।। न तो भय से, न चिल्लाने से अथवा न अर्थ के निमित्त तथा न ज्ञाति, कुल सम्बन्ध से पति की मर्यादा में स्थित रहती हैं ।।२२।। कुलीन स्त्रियां यौवन में वर्तमान हुईं यथेच्छित आभूषण, वस्त्र पानेवाली व्यभिचारिणी स्त्रियों की संगति की अभिलाषा करती हैं ।।२३।। जो नित्य बहुत मानी हुईं प्रिय स्त्रियां रक्षा की जाती हैं, वे स्त्रियां भी कुब्जे, अन्धे, जड, बौने, लंगडे मनुष्यों में आसक्त होती हैं ।।२४।। हे देवर्षे! हे मुने! और भी जो कुत्सित मनुष्य हैं, उनमें आसक्त हो जाती हैं, इससे संसार में स्त्रियों को कोई अगम्य नहीं है ।।२५।। हे ब्रह्मन्! यदि किसी प्रकार मनुष्यों की गति नहीं होवे, तो स्त्रियां परस्पर आसक्त हो जाती हैं, अपने पतियों में प्रवृत्त नहीं होती हैं ।।२६।। पुरुषों के न मिलने से, कुटुम्ब के भय से तथा वध और बन्धन के भय से स्त्री हताश रहती हैं ।।२७।। चंचल स्वभाववाली, दुश्चेष्टावाली स्त्रियां उस प्रकार भाव से दुग्राह्य होती हैं, जैसे बुद्धिमान् पुरुष के रति के ग्रहण करने से वश में होती हैं ।।२८।। काष्ठों से अग्नि नहीं लिप्त होती है, नदियों से समुद्र नहीं तृप्त होता तथा काल सब प्राणियों से नहीं तृप्त होता और स्त्रियां पुरुषों से तृप्त नहीं होती हैं ।।२९।। हे देवर्षे! सम्पूर्ण स्त्रियों का यह और भी रहस्य है, कि मनुष्य को देखकर शीघ्र ही स्त्री की योनि गीली हो जाती है ।।३०।। अच्छी प्रकार

स्नान किये तथा सुगन्धि युक्त निर्मल मनुष्य को देखकर फूटे बर्तन से जल के समान स्त्रियों की योनि बहने लगती है ।।३१।। स्त्रियां शरीर को सुख देनेवाले मान और शान्ति के करनेवाले, परम रक्षा करनेवाले स्वामी को भी सहन नहीं करती हैं ।।३२।। न काम भोग से तथा न अलंकार धन के संचय करने से उस प्रकार का हित मानती हैं, जिस प्रकार रति परिग्रह से हित मानती हैं ।।३३।। काल शान्त करनेवाला मृत्यु, पाताल, बडवानल, अग्नि, क्षुरधारा, विष, सर्प, अग्नि यह एक ओर तथा एक तरफ स्त्री है ।।३४।। हे नारदजी! ब्रह्माजी ने जहां से पंचमहाभूत उत्पन्न किये तथा जहां से लोक उत्पन्न किये, जहां से पुरुष तथा स्त्री निर्माण की, परन्तु वहां स्त्रियों में सदा दोष ही विधान किये हैं ।।३५।। सनत्कुमारजी बोले– ऐसा उसका वचन सुन नारदजी सन्तुष्ट चित्त होकर, सब सत्य मानकर स्त्रियों में विरक्त हो गये ।।३६।। हे व्यासजी! इस प्रकार पंचचूडा ने कहा हुआ स्त्री स्वभाव आपसे आदर से कह दिया, क्या कुछ वैराग्य का कारण सुनना चाहते हो?।।३७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
स्त्रीस्वभाववर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।। २४ ।।

*****

8:05 PM

पृथ्वीदान सरस्वती (विद्या) दान तथा तुला दान यह प्रशंसनीय दान कहे हैं, उनमें दो दान समान फलदायक हैं और सरस्वती अधिक कही है ।।४।। नित्य दुहनेवाली गाय, छत्र, वस्त्र, जूता, अन्नपान आदि सब दान मांगनेवालों को देने चाहिये ।।५।। जो संकल्प किया हुआ धन ब्राह्मणों को बिना पीड़ित हुए याचकों को दिया जाता है, मनुष्य उस दान से बुद्धिमान् होता है ।।६।। सुवर्ण, तिल, हाथी, कन्या, दासी, गृह, रथ, मणि तथा कपिला गायें ये दश महादान हैं ।।७।। ज्ञानी ब्राह्मण सदा इन सबों को ग्रहण करके शीघ्र ही दाताओं को तथा अपने आपको तारता है, इसमें कुछ संशय नहीं ।।८।। जो मनुष्य शुद्धचित्त से सुवर्ण दान करते हैं, देवता उनको सब कुछ चारों ओर से देते हैं, ऐसा मैंने सुना है ।।९।। अग्नि सब देवतामय कहा है और सुवर्ण अग्नि है, इस कारण सुवर्ण देकर मानो सब देवता दिये ।।१०।। पृथ्वी का दान महाश्रेष्ठ तथा सब कामनाओं के फल देनेवाला है, उसमें भी विशेष कर सुवर्ण की भूमि का दान अति श्रेष्ठ है, जिसे पहले राजा रघु ने किया था ।।११।। जो मनुष्य दान की हुई सुवर्णवती पृथ्वी को देखते

सर्वत्र व्याप्त हो रही है, देवता, दैत्य, मनुष्यों सहित सम्पूर्ण जगत् उनकी माया के आधीन है ।।१५।। उनके सहाय प्रबल मन से उत्पन्न होनेवाले कामदेव ने वीर विष्णुजी आदि प्रबल देवताओं को भी वशीभूत किया ।।१६।। हे मुनीश्वर! शिवजी की माया के प्रभाव से भगवान् विष्णुजी ने काम में मोहित होकर अनेक बार परस्त्री प्रसंग किया ।।१७।। इन्द्र देवताओं का स्वामी होकर गौतमजी की स्त्री पर मोहित होकर पाप करने लगे, तो उस दुष्टात्मा को गौतम मुनि ने शाप दिया ।।१८।। जगत् में श्रेष्ठ अग्नि भी शिवजी की माया से मोहित होकर गर्व से काम के वशीभूत हुए और फिर शिवजी ने ही उनका उद्धार किया ।।१९।। हे व्यासजी! जगत् के प्राण विष्णुजी भी शिवजी की माया से मोहित होने से काम के वशीभूत होने से परस्त्री में प्रेम करने लगे ।।२०।। तीव्र किरणोंवाले सूर्य भी शिवजी की माया से मोहित होकर काम में व्याकुल होकर घोड़ी को देखकर शीघ्र ही घोड़े का रूप धारण करनेवाले हुए ।।२१।। शिवजी की माया से मोहित हुए काम से व्याकुल चन्द्रमा ने भी गुरुपत्नी का हरण किया और शिवजी ने ही उनका उद्धार किया ।।२२।। पहले घोर तप में प्रवृत्त हुए मित्र और वरुण नामक दो मुनि भी शिवजी

7:33 PM

प्रबल देवताओं को भी वशीभूत किया ।।१६।। हे मुनीश्वर! शिवजी की माया के प्रभाव से भगवान् विष्णुजी ने काम में मोहित होकर अनेक बार परस्त्री प्रसंग किया ।।१७।। इन्द्र देवताओं का स्वामी होकर गौतमजी की स्त्री पर मोहित होकर पाप करने लगे, तो उस दुष्टात्मा को गौतम मुनि ने शाप दिया ।।१८।। जगत् में श्रेष्ठ अग्नि भी शिवजी की माया से मोहित होकर गर्व से काम के वशीभूत हुए और फिर शिवजी ने ही उनका उद्धार किया ।।१९।। हे व्यासजी! जगत् के प्राण विष्णुजी भी शिवजी की माया से मोहित होने से काम के वशीभूत होने से परस्त्री में प्रेम करने लगे ।।२०।। तीव्र किरणोंवाले सूर्य भी शिवजी की माया से मोहित होकर काम में व्याकुल होकर घोड़ी को देखकर शीघ्र ही घोड़े का रूप धारण करनेवाले हुए ।।२१।। शिवजी की माया से मोहित हुए काम से व्याकुल चन्द्रमा ने भी गुरुपत्नी का हरण किया और शिवजी ने ही उनका उद्धार किया ।।२२।। पहले घोर तप में प्रवृत्त हुए मित्र और वरुण नामक दो मुनि भी शिवजी की माया से मोहित होकर ।।२३।। तरुण (युवती) उर्वशी अप्सरा को देखकर वे दोनों काम से पीड़ित हुए, तब मित्र ने घड़े में अपना वीर्य छोड़ा और वरुण ने जल में छोड़ा ।।२४।। तब उस कुम्भ से मित्र के पुत्र वशिष्ठजी उत्पन्न हुए, वरुण से वडवानल के समान कान्तिवाले अगस्तजी उत्पन्न हुए ।।२५।। शिवजी की माया से मोहित हुए ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष भी अपने भाइयों सहित वाणी के साथ भोग करने की इच्छावाले हुए ।।२६।। और ब्रह्माजी ने अनेक बार शिवजी की माया से मोहित होकर आसक्त हुई अपनी पुत्रियों से भोग करने की इच्छा की ।।२७।। शिवमाया से मोहित हुए महायोगी च्यवन ऋषि ने भी काम में आसक्त होकर अपनी कन्या में आसक्ति की ।।२८।। शिवमाया से मुग्ध होकर कश्यपजी ने भी काम के वश में होकर अज्ञान से धन्वा राजा की कन्या

7:47 PM

होते हैं ।।३४।। अपनी आशा से प्राप्त हुए भूख, प्यास, श्रम से व्याकुल हुए अभ्यागत और अनाथों को घर पर आये हुए स्वतन्त्रों को ।।३५।। अन्न की इच्छा करनेवाले वा दीनों को, बालक, वृद्ध, दुर्बल रोगियों पर जो मूर्ख दया नहीं करते हैं, वे नरक सागर में पड़ते हैं ।।३६।। घर में धन पडे रह जाते हैं, भाई बन्धु भी श्मशान से लौट आते हैं, जीव पुण्य और पाप का अनुगामी होकर जाता है ।।३७।। बकरी तथा भैंस का क्रय–विक्रय करनेवाला, समुद्र पर रहनेवाला, शूद्रा का पति शूद्र के समान क्षत्रिय वृत्ति करनेवाला नीच ब्राह्मण नरक गामी होता है ।।३८।। शिल्पी, बढ़ई, वैद्य, सुनार, राजा की पताका बनानेवाला, कपट छल से नौकरी करनेवाला यह सब नरक गामी कहे हैं ।।३९।। जो (योग्य) शास्त्र को उल्लंघन करके अपनी इच्छा से कर (महसूल) हरण कर लेता है तथा जो दण्ड की रुचिवाला मनुष्य है, यह नरक में दुःख भोगता है ।।४०।। जिस राजा के राज्य में प्रजा घूस लेनेवाले, अपनी इच्छानुसार क्रय करनेवाले तथा तस्करों से पीड़ित होती है, वह राजा भी नरक में पड़ता है ।।४१।। जो ब्राह्मण अन्याय में स्थित

गवां लक्षं छेदनं च हरिणानां द्विलक्षकम्।
चतुर्लक्षं शशानां च कूर्माणां च तथा कुरु॥६१॥
दशलक्षं छागलानां भेटानां तच्चतुर्गुणम्।
पर्वणि ग्रामदेव्यै च बलिं देहि च भक्तितः॥६२॥

एतेषां पक्वमांसं च भोजनार्थं च कारय। परिपूर्णं व्यञ्जनानां सामग्रीं कुरु भूमिप॥६३॥

एक सहस्त्र घृत की, १ हजार मधु की, १ हजार दधि की, १ हजार दुग्ध की, ५०० तैल की, दो लाख गुड़ की, पांच सौ चीनी की नहरें बनवायें। मिष्ठान्न के २००० ढेर, जौ-गेहूं के चूर्ण के सौ-सौ ढेर, चिवड़ा के ४ लाख ढेर, अन्य अन्न के चार लाख ढेर, १ लाख गौ, २ लाख हरिण, ४ लाख खरगोश, ४ लाख कच्छप, १० लाख बकरे, चालीस लाख भेड़, इनकी बलि पर्वकाल में ग्रामदेवी के समक्ष भक्ति से प्रदान करें। इनका पक्वमांस भोजनार्थ पाक करायें। हे राजन! सभी व्यंजन परिपूर्ण रहें। हे राजन! यह सब साम्रगी एकत्र करायें।।५८-६३।।

१. क. ०राठं।
२. मङ्गलश्चेति पाठान्तरम्।

भुवन तथा प्रमथासुर के युद्ध को देखा।।३८।। उन शुक्रजी ने सौ वर्ष पर्यन्त शिवजी के उदर में चारों ओर भ्रमण करते हुए उसमें इस प्रकार वह कोई रन्ध्र (छेद) नहीं देखा, जैसे खल पुण्यात्मा में दोष देखता है, तो भी नहीं देख पाता।।३९।। फिर वह भार्गव शिवजी के दिये योग से इस मन्त्र को जपकर शिवजी वीर्यरूप में शिवजी के उदरपंजर

से।।४०।। लिंग मार्ग से निकले और शिवजी को प्रणाम किया, तब पार्वती ने उनको पुत्ररूप से ग्रहण किया और विघ्न रहित किया।।४१।। लिंग में से वीर्यरूप निकले हुए शुक्र को देखकर दयासागर शिवजी हँसकर बोले।।४२।। शिवजी बोले– हे भृगु के पुत्र! जिस कारण कि तुम मेरे लिंग से वीर्यरूप में निकले हो, इस कर्म से तुम शुक्र नामवाले मेरे पुत्र हुए, अब जाओ।।४३।। सनत्कुमारजी बोले– शिवजी के ऐसा

हम दोनों का समर पूर्ण एक वर्ष तक होता रहा, हे कामिन! उसमें सब असुरों का नाश हो गया ।।२५।। ब्रह्माजी ने आकर दोनों में प्रीति करा दी, मैंने ब्रह्माजी के कहने से देवताओं को अधिकार दे दिये ।।२६।। मैं अपने घर चला आया और शिवजी शिवलोक को गये, सबको स्वस्थता हुई और उपद्रव दूर हुए ।।२७।। सनत्कुमारजी बोले– जगत्पति ने ऐसा कहकर शयन किया और रमापति ने उसके साथ विहार किया ।।२८।। तब वह साध्वी उस सर्वात्मारूप आकर्षणवाले रमण को देखकर तर्कना करने लगी और बोली– आप कौन है? ।।२९।। तुलसी बोली– आप कौन है? सत्य कहिये, आपने माया से मुझे भोगा है, आपने मेरा सतीपन दूर किया है, मैं आपको शाप देती हूँ ।।३०।। सनत्कुमारजी बोले– हे व्यासजी! तुलसी के वचन सुनकर शाप के भय से हरि ने लीला से अपनी मनोहर मूर्ति धारण की ।।३१।। तुलसी ने वह रूप देखकर और चिह्न से उन्हें जानकर अपना पतिव्रतधर्म भंग होने के कारण क्रोध करके कहा ।।३२।। तुलसी बोली– हे विष्णुजी! आप में दया नहीं है, आपका मन पाषाण के समान है, पतिव्रतधर्म भंग करके आपने मेरे स्वामी का वध कराया है ।।३३।। आप पाषाण के समान दयाहीन

4:32 PM

किया ।।१०।। साक्षात् भगवान् शिवजी जब कैलास पर आये, तब सब गण प्रसन्न होकर अनेक प्रकार के सुख मनाने लगे ।।११।। शिवजी के कैलास आने पर बड़ा महोत्सव हुआ, देवता बड़े प्रसन्न होकर अपने स्थानों में गये ।।१२।। तब महादेव शंकरजी शिवा गिरिजा से विवाह करके महा दिव्य मनोहर एकान्त स्थान में गये ।।१३।। पुष्प, चन्दन से चर्चित रति की बढ़ानेवाली सेज बनाकर, जो बड़ी अद्‌भुत थी और जिसमें सम्पूर्ण भोग की वस्तुएँ विद्यमान थीं ।।१४।। भगवान् शिवजी पार्वती सहित उस स्थान में रमण करने लगे और वह मान के देनेवाले देवताओं के सहस्र वर्ष तक विहार करते रहे ।।१५।। दुर्गा के अंग के स्पर्श मात्र से लीला से ही शिवजी मूर्छित हो गये और भगवती भी शिवजी के अंग स्पर्श से मूर्छित हो गई और दिन–रात कुछ नहीं जाना ।।१६।। जिस समय शिवजी भोग में प्रवृत्त हुए तब उनको बहुत समय भी क्षणमात्र के समान बीत गया ।।१७।। तब सब देवता एक समय इकट्ठे होकर इन्द्रादि के साथ सलाह करने लगे और सब एकत्र हुए ।।१८।। देवता बोले– ईश्वर शंकरजी ने हमारे निमित्त विवाह

4:25 PM

व्याकुल हो गये और शिवजी से यह शुक्राचार्यजी की सब बात कहीं।।५०।। वह सुनकर भगवान् रुद्र ने बड़ा क्रोध किया और बड़े भयंकर रौद्र रूप से दिशाओं को प्रज्ज्वलित करने लगे।।५१।। तब रुद्र के मुख से बड़ी भयंकर कृत्या उत्पन्न हुई, जिसकी ताल के समान जांघे थीं और जो स्तनों से वृक्षों को पीड़ित कर सकती थी।।५२।। हे मुनिसत्तम! वह बहुत शीघ्र ही युद्धभूमि में आकर प्राप्त हुई और महाअसुरों को भक्षण करती युद्धभूमि में विचरने लगी।।५३।। और वह युद्धभूमि में बड़े वेग से गमन करती हुई वहां पहुँची, जहां दैत्यश्रेष्ठ के साथ भृगुजी विद्यमान थे।।५४।। हे मुने! वह अपने तेज से आकाश और भूमि को व्याप्त करके और शुक्रजी को अपनी योनि में गुप्त करके आकाश में अन्तर्धान हो गई।।५५।। यह शुक्रजी की दशा देखकर बड़े मलीन मुख होकर दैत्य युद्धभूमि से युद्ध में दुर्मद हुए भी निकले।।५६।। तब गणों के भय से दैत्यों की सेना छिन्न-भिन्न होने लगी, जैसे वायु के वेग से हत होकर तृण

है।।४६।। भगवान् गरुड़ध्वज ने जगदम्बा के वह वचन सुनकर हाथ जोड़कर, सिर झुकाते हुए प्रणाम करके पार्वती से कहा।।४७।। श्रीभगवान् बोले– हे देवि! आपकी कृपा से वह वृत्तान्त मैंने जान लिया है, हे मातः! जो आप आज्ञा दे, सो मैं करने के लिये उपस्थित हूँ।।४८।। सनत्कुमारजी बोले– विष्णुजी के यह वचन सुनकर वह जगन्माता धर्मनीति सिखाती हुई बोलीं।।४९।। पार्वती बोलीं– जो मार्ग उस दैत्य ने खोल दिया है, उसीका अनुसरण उचित है, मेरी आज्ञा से आप उसकी स्त्री का पतिव्रतधर्म नष्ट करो, अब इसमें दोष न होगा।।५०।। हे रमेश्वर! अन्यथा वह दैत्य मारा न जायेगा, पृथ्वी पर पतिव्रतधर्म के समान दूसरा धर्म नहीं है।।५१।। सनत्कुमारजी बोले– यह आज्ञा पाते ही विष्णुजी उस आज्ञा को सिर पर धरकर जलन्धर के पुर में वैसा ही छल करने गये।।५२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे जलन्धरयुद्धवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः।। २२ ।।

7:59 PM

सुख देने वाला अद्भुत महोत्सव हुआ।।१२।। हे तात! उस समय वहां विस्मय करने वाला अद्भुत चरित्र हुआ, सो आपसे कहता हूँ, उसे सुनिये।।१३।। शंकरजी की माया दु:ख से जानने योग्य है, उसी ने चर-अचर मनुष्यों से युक्त संसार और देवताओं को मोहित कर रखा है।।१४।। जो मैं कपट के द्वारा पूर्व ही शंकरजी को मोहित करना चाहता था, हे तात! उन्हीं शंकरजी ने मुझे अपनी लीला से मोहित कर लिया।।१५।। जो दूसरे का अपकार चाहता है, उसका शीघ्र ही वह हो जाता है, यह मान कर पुरुष किसी का अपकार न करे।।१६।। हे द्विजश्रेष्ठ मुने! सती के अग्नि की परिक्रमा करने

समय वस्त्र उड़ने से जो पदद्वय का दर्शन हुआ, उसे देख कर मैं शिवमाया से मोहित, मदन से आविष्टचित्त हो सती के अंगों का अवलोकन करने लगा।।१७-१८।। कौतुक से सती के जैसे-जैसे उत्तम अंगों को देखता वैसे-वैसे मैं प्रसन्न होने लगा।।१९।। हे मुने! दक्ष से उत्पन्न हुई पतिव्रता सती को इस प्रकार देख कर मैं काम से आविष्टचित्त हो मुख देखने की इच्छा करने लगा।।२०।। न मैंने शिवजी की लज्जा से उनका मुख देखा और न उन्होंने लज्जा के मारे मुख खोला।।२१।। काम से दु:खी हो कर मैंने उसे देखने के लिये अत्यन्त धुआं करने की इच्छा की, तत्पश्चात् इसका मुख देखें यही सोचते हुए मैंने यह किया कि।।२२।। अग्नि में खूब गीली लकड़ी छोड़ी और धीरे-धीरे थोड़ी-थोड़ी आहुति के छोड़ने से गीले द्रव्यों से उत्पन्न बहुत धुआं चारों ओर फैल गया और धूमाधिक्य होने के कारण वेदी के आसपास की पृथ्वी धुम्र युक्त हो गई।।२३-२४।। नाना लीलाओं को करने वाले समर्थ परमेश्वर शिवजी ने धूम्र से व्याकुल हो कर दोनों हाथों से अपने नेत्र मूँद लिये।।२५।। फिर प्रसन्न हो कर मुझ कामार्त ने सती के मुख के वस्त्र को हटा कर सती का मुख देखा।।२६।। हे पुत्र! मैं बार-बार सती के मुख को देखने लगा और इन्द्रिय विकार को भी प्राप्त हो कर मेरा चार बिन्दु वीर्य पृथ्वी पर गिर गया।।२७-२८।। तब चकित मौनी मैं, अत्यन्त आश्चर्य को प्राप्त हो गया और मैंने उस वीर्य को छिपाया, जिससे और कोई न जाने।।२९।। भगवान् शम्भुजी दिव्य चक्षु द्वारा यह वीर्यस्खलन जान कर क्रुद्ध हो कर बोले।।३०।। रुद्र बोले- जो आपने विवाह में मेरी कान्ता के मुख को राग से देखा, यह कैसा कुत्सित कर्म आपने किया?।।३१।। आपने सोचा, कि शिवजी ने यह कर्म कुछ नहीं जाना, परन्तु ऐसी कौन सी बात संसार में है, जिसे मैं नहीं जानता?।।३२।। जैसे तिल में तैल, वैसे ही तीनों लोकों और स्थावर-जंगम में मैं हूँ।।३३।। ब्रह्माजी बोले- यह कह कर विष्णुप्रिय शंकरजी विष्णुजी के वचन को स्मरण करते हुए शूल ले कर मुझ ब्रह्मा को मारने की इच्छा करने लगे।।३४।। मुझे मारने के निमित्त शम्भुजी ने शूल लेते ही मरीच्यादिकों ने हाहाकार किया।।३५।। तब सब देवता और मुनियों ने व्याकुल हो कर क्रोधित हुए शिवजी की स्तुति की।।३६।। देवता बोले- हे शरणागतवत्सल देवदेव परमेश्वर शिवजी! कृपा कीजिये और ब्रह्माजी की रक्षा कीजिये।।३७।। आप संसार के पिता और सतीजी संसार की माता है और ब्रह्मादिक देवता सब आपके दास हैं।।३८।। आपकी लीला अद्भुत है और आपकी माया अद्भुत है, उसी ने आपकी भक्ति से विरक्त रहने वाले को मोह रखा है।।३९।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार वृद्ध मुनियों ने नम्रतापूर्वक देवताओं के साथ नम्र हो कर क्रोध युक्त देवदेवेश शिवजी की स्तुति की।।४०।। उसी समय महासन्देह को प्राप्त हो कर दक्षजी ने शिवजी के समीप आ कर हाथ उठा कर कहा कि, कृपा कर के ऐसा न कीजिये।।४१।। फिर शिवजी आगे दक्ष

को देख कर और विष्णुजी की प्रार्थना को स्मरण करते हुए यह प्रिय वचन बोले।।४२

बोले– इस प्रकार वह सत्यवादी आदमियों के सत्य वचन सुन कर मन में बड़े क्षुभित हुए और उसे लेने की इच्छा की ।।१५।। हे गिरिराज! तब मुनि स्नान कर के और अपने इष्टदेव शंकरजी का विधिपूर्वक पूजन कर के काम के वशीभूत हो कर कन्या की प्राप्ति के लिये राजा अनरण्य की सभा में गये ।।१६।। राजा ने मुनि को देखते ही भय से प्रणाम किया और मधुपर्कादि दे कर भक्ति से पूजा की ।।१७।। मुनि ने सब पूजा को ग्रहण कर राजा से कन्या को मांगा, राजा सुनते ही अवाक् हो गया और कुछ भी कहने को समर्थ न हुआ ।।१८।। मुनि ने कहा– हे राजन्! अपनी कन्या

आप हमें दो, नहीं तो क्षण में सब भस्म कर दूंगा ।।१९।। हे मुने! मुनि के तेज से सब सेवक गण व्याप्त हो गये और उस समय राजा कन्या के लिये रोने लगे, कि ब्राह्मण

4:14 PM

उनचासवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– तब ईश्वर ने मेरी आज्ञा से ब्राह्मणों द्वारा अग्नि को स्थापन करके पार्वती को अंक में लेकर होम किया ।।१।। ऋक्, यजु और सामवेद के मन्त्रों से अग्नि में शिवजी ने आहुति दी और काली के भ्राता मैनाक ने लाजाञ्जलि दी ।।२।। हे तात! तब लोकाचार का विधान करके शिवजी और पार्वती ने विधिपूर्वक अग्नि की प्रदक्षिणा की ।।३।। हे मुने! उस समय गिरिजापति शंकरजी ने एक अद्भुत चरित्र किया, वह सुनिये। मैं आपके प्रेम के कारण उसे वर्णन करता हूँ ।।४।। उसी समय शिवजी की माया से मोहित होकर मैंने देवी के मनोहर नखचन्द्र का दर्शन किया[१] ।।५।। हे मुने! दर्शनमात्र से ही मैं क्षुभित हो गया और काम से मेरा मन क्षोभ को प्राप्त हो गया[२] ।।६।।

१– यह अध्याय अध्यात्म तत्त्व के लिये हुए हैं।

२– आशय यह है कि, इस कथा में ब्रह्माजी का रजोगुण पात हो गया है।

बारंबार मोहित होकर मैं देवी के नखचन्द्र को देखने लगा और उसी के दर्शन से मेरा रेत पृथ्वी पर पतित हुआ (अर्थात् सृष्टि रचना का अहंकार पतित हुआ) ।।७।। उस रेत के पात होने से मैं बड़ा लज्जित हुआ और चरणों से उसे छिपाते हुए गुप्तांग को मर्दित किया ।।८।। हे नारदजी! यह देखकर महादेवजी को बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और मुझ काममोहित को शीघ्र ही मारने की इच्छा की ।।९।। हे नारदजी! उस समय सर्वत्र महान् हाहाकार होने लगा, सब मनुष्य कांप गये, संसार भयभीत हो गया ।।१०।। हे मुने! तब विष्णुजी आदि देवता शिवजी की स्तुति करने लगे। उस समय उनके कोप का तेज मानो मार डालना ही चाहता था ।।११।। देवता बोले– हे देव देव! हे जगत् में व्यापक! हे परमेश! हे सदाशिव! हे जगत्पति जगन्नाथ! हे जगन्मय! आप प्रसन्न हो ।।१२।। हे ईश्वर! सब भावों के आप आत्मा, हेतु और ईश्वर हो, निर्विकार, अविनाशी, नित्य निर्विकल्प अक्षर और सबसे परे हो ।।१३।। आपका आदि, अन्त, मध्य यह सब कुछ नहीं है, बाहर–भीतर सबसे आप परे हो, यह जो कुछ है, सो आप नहीं हो, आप सत्य स्वरूप ब्रह्म और चिद्रूप हो ।।१४।। मुक्ति की कामनावाले दृढ़व्रत मुनिजन आप ही के चरणों को सब संग छोड़कर उपासना करते हैं ।।१५।। आप पूर्णब्रह्म, अमृत स्वरूप, शोक रहित, निर्गुण और परम हो, आनन्दमात्र व्यग्रता रहित, विकार रहित आत्मा से भी परे हो ।।१६।। संसार के उत्पत्ति, पालन और प्रलय के आप ही हेतु हो, हे विभु! हे आत्मा के ईश्वर! आपको कुछ अपेक्षा नहीं और दूसरे आपकी अपेक्षा करते हैं ।।१७।। आप एक ही सत्–असत्, द्वैत–अद्वैत हो, जैसे सुवर्ण की वस्तुओं में सुवर्ण से कुछ भेद नहीं है ।।१८।। अज्ञान से पुरुषों ने आप में विकल्प का आरोप किया है, इससे उपाधि में भ्रम है, निरुपाधि में भ्रम का प्रतीकार हो जाता है ।।१९।। हे महेशान! हम धन्य हैं, जो आपके दर्शनमात्र से हम भक्तजनों को दृढ़ आनन्द मिला है। हे भक्तवत्सल! अब दया करें ।।२०।। आप ही आदि–अनादि प्रकृति से परे पुरुष हो, आप विश्वेश्वर जगन्नाथ निर्विकार, परे से परे हो ।।२१।। यह पितामह ब्रह्माजी रजोगुण की विश्वमूर्ति हैं और आपके प्रसाद से पुरुषोत्तम विष्णुजी सत्वगुण की मूर्ति हैं ।।२२।। कालाग्नि रुद्र परमात्मा तम और गुणों से परे हैं, वह आप सदाशिव महेशान सर्वव्यापी महेश्वर हैं ।।२३।। व्यक्त, महतत्त्व, पञ्चमहाभूत, तन्मात्रा और इन्द्रिय; हे महेश्वर! हे विश्व की मूर्ति! यह सब आपमें ही अधिष्ठान किये हुए हैं ।।२४।। हे महादेव! हे परेश! हे करुणामय! हे शंकर! हे देवदेवेश पुरुषोत्तम! अब आप प्रसन्न हो जाइये ।।२५।। सातों समुद्र आपके वस्त्र, दशों दिशा आपकी दश भुजा, हे विभो! द्युलोक आपका सिर, आकाश नाभि और वायु आपकी नासिका है ।।२६।। अग्नि, रवि और सोम आपके नेत्र हैं, हे विभो! मेघ आपके केश हैं, नक्षत्र, तारे और ग्रह यह आपके भूषण हैं ।।२७।। हे व्यापक परमेश्वर! हे देवेश! मैं किस प्रकार आपकी स्तुति कर सकता हूँ? हे शंकर!

स कथं मृतकादाता दुष्करं समुपासते। यो विधिः कर्मसाक्ष्यादिवन्द्यो मान्यः पितामहः॥४५॥

मोहिनीमोहितो देहमुत्ससर्ज कथं स च।
यः शिवः शिवदः साक्षात्प्रकृतीशः परात्परः॥४६॥
स कथं देवपत्नीगः श्मशानाशुभचेष्टितः।
तस्माद्द्विज सदाचारो निषेव्यो विधिना विधिः॥४७॥

उर्वशी नन्दन वसिष्ठ ने लोकोपकारार्थ योगवासिष्ठ नाम वाले उत्तम शास्त्र को रचा, वेद तथा पुराण में साम्यत्व प्रदर्शित किया, जो स्वयं सर्वेश्वर राम के गुरु थे, वे विश्वामित्र से शापित होकर तिर्यक् योनि में गये! जिन्होंने महापर्वत विन्ध्य का दमन किया, वातापि असुर का नाश किया, सागर पान कर लिया, वे दुष्कर तप क्यों कर रहे हैं? जो ब्रह्मा कर्मसाक्षी आदि, वन्द्य मान्य पितामह हैं, वे मोहिनी के प्रति मोहित होकर देह त्यागार्थ क्यों चले गये थे? जो प्रभु शिव सर्व कल्याणप्रदाता, प्रकृति के ईश्वर तथा परात्पर प्रभु हैं, वे देवपत्नीगमन करके श्मशानवासी क्यों हो गये? हे द्विज! यही कारण है कि सभी सविधि सदाचार की सेवा करें।।४२-४७।।

तमहंभावनायुक्तो नो हेयाद्यो विदां वरः। स शांतिमाप्नुयादग्र्यां धर्म्यामुभयसंस्थिताम्॥४८॥

रखना चाहिये। कृष्णपक्षीय चतुर्दशी के घोर तमसाच्छन्न निशाकाल में स्नान करके लाल वस्त्र तथा लाल माला एवं लेप धारण करे और छिन्नमस्ता ऐसी आकृति वाली सुन्दरी, यौवनसम्पन्न, पांच लोगों से समागम करने वाली, उत्तम मुस्कान युक्त, मुक्तकेशी, आभूषणभूषित ललना को विवस्त्र करके पूजा करे। तदनन्तर १०००० मन्त्र जप तथा बलि अर्पण करना होगा। इस प्रकार रात बीत जाने पर उस नारी को धनादि से सन्तुष्ट करके विदा करे। तदनन्तर प्रातः विविध अन्न-भोजनादि से सविधि ब्राह्मण भोजन कराये।।३१-३५।।

अनेन विधिना लक्ष्मीं पुत्रान्पौत्रान्धनं यशः।
नारीमायुः सुखं धर्ममिष्टं च समवाप्नुयात्॥३६॥

8:21 PM

जो द्विज घोर विपत्तिकाल में बौद्ध मन्दिर में रहता है, वह सैकड़ों प्रायश्चित्त द्वारा भी उद्धार नहीं पाता। बौद्ध वेदनिन्दक तथा पाखण्डी कहे गये हैं। वे धर्म बहिष्कृत हैं। द्विज को चाहिये कि उनकी ओर दृष्टिपात भी न करे।।५१-५२।।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि द्विजो बौद्धालयं विशेत्।
ज्ञात्वा चेन्निष्कृतिर्नास्ति शास्त्राणामिति निश्चयः।।५३।।
एतेषां पापबाहुल्यान्नरकं कोटिकल्पकम्।
प्रायश्चित्तविहीनानि प्रोक्तान्यन्यानि च प्रभो।।५४।।
पापानि तेषां नरकान्गदतो मे निशामय।।५५।।
महापातकिनस्तेषु प्रत्येकं युगवासिनः। तदन्ते पृथिवीमेत्य सप्तजन्मसु गर्दभाः।।५६।।
ततःश्वानो विद्धदेहा भवेयुर्दशजन्मसु। आशताब्दं विट्कृमयः सर्पा द्वादशजन्मसु।।५७।।

जो जाने-अनजाने यदि बौद्धालय में प्रवेश करते हैं, उनमें से भी जो जानबूझ कर बौद्धालय में जाते हैं, तब उनके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है। जो अनजाने में बौद्धालय जाते हैं, वे पापाधिक्य के कारण कोटिकल्प काल तक नरकगामी होते हैं। हे प्रभो! जो प्रायश्चित्त रहित पातक है तथा अन्य जो पाप हैं, उनके लिये मिलने वाले नरक के सम्बन्ध में सुनिये। वहां महापापी अनेक युगान्त पर्यन्त पड़े रहते हैं। तत्पश्चात् पृथिवी पर सप्तजन्म

वरण आदि करते हैं अतः पहले अपनी ऐसी धारणा बताओ कि—मेरा वरण करने के लिए कोई प्रस्तुत है। मैं भी अपने विचारों से इसी निष्कर्ष पर पहुँच रहा हूँ कि— किसी महान् व्यक्ति के साथ सम्बन्ध हो तो अच्छा है और जहाँ तक हो सके मैं देवों की निन्दा का पात्र न बन सकूं वैसा ही करना! अतः पुत्रि! मैं ने धर्मशास्त्रों के आलोकन से यह निश्चय किया कि—अब तुम अपना विवाह संस्कार अवश्य करो, क्योंकि विवाह संस्कार हीन कन्या अपने पिता के घर यदि रजोवती होती है तो उसके पिता को ब्रह्म हत्या का दोषभागी होना पड़ता है और वह कन्या वृषली कही जाती है। इसलिए पुत्रि! मैं तुम्हें कुछ मंत्रियों के साथ भेज रहा हूँ तुम स्वयं वर का अन्वेषण कर उसे अपनाओं। जाने के लिए शीघ्रता करो और मेरी बातों का ध्यान रखना। इसे स्वीकार कर सावित्री राजर्षियों के रमणीयक तपोवन के लिए निकल पड़ी। वहाँ के मान्य एवं वृद्धों के चरण-पूजन करके वह सभी-कल्याण तीर्थों में गयी और मंत्रियों के साथ पुनः घर लौट आयी। घर आकर उसने अपने पिता के पास बैठे हुए देवर्षि नारद को देखा, जो उत्तम आसन पर सुशोभित हो रहे थे। मन्द मुसुकान करती हुई उसने उन विप्रदेव को प्रणाम कर उनके समक्ष

कर्मभूमेरुत्तरे च खण्डान्यष्टौ ततः परम् । लवणाब्धिस्ततो द्वीपस्ततः क्षीराब्धिरेव हि ॥
ततो द्वीपस्ततः सिन्धुस्ततो द्वीपस्ततोऽब्धिकः ॥२०६
कोटचर्द्धलक्षव्यानेन योजनेन विधे स्वयम् ॥२०७
कर्मभूमेः स वै ज्ञेयो लोकालोका महाचलः । लोकालोको दक्षिणे च पश्चिमे च स वै गिरिः ॥२०८
पूर्वे च कर्मभूमेश्च लोकालोकस्तथाविधः । एतेषां समुदायानां ब्रह्माण्डोऽयं प्रकीर्तितः ॥२०९
त्वत्तो भविष्यति विधे कल्पपर्यन्तमेव हि । ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ततो विष्णुस्त्रिधाभवत् ॥२१०
अद्य विष्णुः स वै कृष्ण इह विष्णुः स वै विराट् । इति विष्णुः स वै ज्ञेयः पुराणपुरुषोत्तमः ॥२११
पुराणपुरुषो ज्ञेय आदिब्रह्मा चिरायुगः । दैवे युगसहस्रे द्वऽहोरात्रं तस्य कीर्तितम् ॥२१२
विष्णोस्तु रोमकूपेषु ब्रह्माण्डाः कोटिशोऽभवन् । अद्य विष्णुरहं ब्रह्मन्विध्महा तव भूतले ॥२१३

भूमि से ऊपर एक लक्ष योजन की दूरी पर सूर्य स्थित हैं, उनसे उतनी ही दूर चन्द्रमा और उनसे ऊपर उतने दूर पर नक्षत्रों का मण्डल स्थित है। उनसे दो लक्ष योजन की दूरी पर मंगल, उनसे उतनी दूर बुध, बुध से उतनी दूरी पर बृहस्पति, बृहस्पति से उतने दूर शुक्र, शुक्र से शनि, शनि से राहु और राहु से केतु उपरोक्त दो लाख की समान दूरी पर स्थित हैं। केतु से सात लाख योजन की दूरी पर सप्तर्षियों का

5:22 AM

वत्सल भगवान् कृष्ण ने अपने यादवगणों समेत आकर उनका मनोरथ पूरा किया । पश्चात् विष्णुधर्म प्रिय नरश्री ने काशीपुरी में जाकर रामानन्द की शिष्य सेवा स्वीकार की ।६२-६६

बृहस्पति जी बोले—एकबार भगवान् अत्रि ऋषि ने अपनी अनसूया नामक पत्नी समेत गंगा के तट पर ब्रह्मध्यान में निमग्न होकर महान् तप करना आरम्भ किया । उस समय ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव जी ने अपने-अपने वाहनों पर बैठकर वहाँ पहुँचने का प्रयत्न किया । वहाँ पहुँचकर उन लोगों ने ब्रह्मपुत्र अत्रि से वरयाचना करने के लिए कहा । किन्तु अत्रि इन लोगों की बात पर कुछ ध्यान न देकर पूर्व की भाँति ब्रह्मध्यान में मग्न ही रहे । उनके भाव को जानकर उन तीनों देवों ने उनकी पत्नी अनसूया के पास जाकर उनसे कहना आरम्भ किया । उस समय अनसूया के वशीभूत होकर रूद्र हाथ से लिंग ग्रहण किये थे, विष्णु उसमें रस वृद्धि कर रहे थे और ब्रह्मा अपनी कामवासना नष्ट करने पर तुले थे । वे लोग उससे बार-बार यही कह रहे थे कि—मदभरे नेत्रों से कटाक्षपात करने वाली प्रिये ! मुझे रति दान प्रदान करो, अन्यथा तुम्हारे सामने मेरा प्राण निकल रहा है । उस समय पतिव्रता अनसूया ने उन लोगों की उस अशुभ वाणी को सुनकर भी उनके कोपभय से भयभीत होने के नाते उन लोगों से कुछ नहीं कहा । किन्तु अत्यन्त मोहित उन बलवान् देवों ने जो माया विमुग्ध थे, बलात् उसे पकड़कर मैथुनार्थ प्रयत्न किया ।६७-७३।

अध्याय ८

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—इसे सुनकर वैताल ने राजा से कहा—राजन् ! विदेह प्रदेश में मिथिला नामक नगरी है, धन-धान्य सम्पन्न गुणाधिप नामक राजा वहाँ राज कर रहा था । सेवावृत्ति के लिए चिरंदेव नामक एक राजपुत्र मिथिला पुरी में आकर रहने लगा । एक वर्ष के पश्चात् राजा गुणाधिप ने अपनी चतुरङ्गिणी सेना समेत आखेट के लिए जंगल में जाकर एक वाघ का शिकार किया । उसी क्रोध के आवेश में राजा उस बाघ के मार्ग से किसी जंगल में पहुँच गये । चिरंदेव भी उनके पश्चात् उसी गहन वन

रात्रौ स देवरूपश्च बहुमायाविशारदः । पैशाचं देहमास्थाय भोजराजं हि सोऽब्रवीत् ।।२३

सूत जी बोले—इस स्तुति को सुनकर शिव जी ने राजा से कहा—भोजराज ! आप महाकालेश्वर स्थान के वाहीक नामक भूमि प्रदेश में जाइये, वह भूमि म्लेच्छों द्वारा दूषित हो रही है। उस भीषण 'वाहीक प्रान्त में आर्यधर्म नहीं है। यहाँ बलि दैत्य से प्रेषित यही त्रिपुरासुर पुनः आ गया है, जिस महामायावी को मैंने भस्म कर दिया था। वह अयोनि से उत्पन्न, श्रेष्ठ, एवं दैत्यवंश का वर्द्धक है। 'महामद' (मुहम्मद) उसका नाम है, जो सदैव पिशाच कर्म ही करता रहता है। अतः राजन् तुम इस धूर्त एवं पिशाच के प्रदेश में मत ठहरो, मेरी कृपा से तुम्हारी शुद्धि हो जायगी । इसे सुनकर राजा अपने देश के लिए चल दिये । अपने शिष्यों समेत महामद भी सिंधु नदी के तटपर आया । उस कुशल मायावी ने प्रेम भाव से राजा से कहा—महाराज ! आपके देव मेरे दास हैं, नृप ! देखिये ये मेरा उच्छिष्ट भोजन करते हैं । इसें देख सुनकर राजा को महान् आश्चर्य हुआ ।९-१६। और वह भी उस भीषण म्लेच्छ-धर्म का अनुयायी होने के लिए सोचने लगा । उस समय कालिदास ने क्रुद्ध होकर महामद से कहा—धूर्त ! राजा को मोहित करने के लिए यह तुम्हारी माया है, अतः तुम ऐसे दुराचारी एवं वाहीक के अधमाधम का मैं वध कर दूँगा । इतना कहकर वह ब्राह्मण नवार्ण मंत्र का दशसहस्त्र जप करने के उपरांत उसके दशांश से आहुति-प्रदान करने लगा । उसी में वह भस्म होकर म्लेच्छों का देवता हो गया । पश्चात् उसके सभी शिष्यगण भयभीत होकर वाहीक देश चले गये । वहाँ अपने गुरु (मुहम्मद) का भस्म ले जाकर भूमि के मध्य

5:22 AM

थ। पश्चात् उस युद्ध में पराजित होकर दैत्यों ने पलायन किया। उस समय विवस्वान् ने संज्ञा को रथ पर बैठाकर ले जाकर विश्वकर्मा को सौंप दिया। उस समय देवश्रेष्ठ विवस्वान् को प्रसन्न देखकर संज्ञा ने उनसे कहा—आप मेरे पति होकर मेरा कार्य सदैव किया करें। क्योंकि भगवन्! तुम्हीं ने उस वली बलि को पराजित कर विजय रूप में मुझे प्राप्त किया है। भाई की पुत्री (भतीजी) का ग्रहण करने में कोई दोष भी न होगा, क्योंकि मुनियों ने यह स्वीकार किया है कि नारी सदैव वीरभोग्या हैं और विशेषकर स्त्रीरत्न-गुणयुक्ता प्रकृति देवी अपने को गुण भेद द्वारा चार रूपों विभक्त करती है— एक भाग से वह सनातनी प्रकृति माता, सतोगुण रूप से भगिनी, रजोगुण रूप से गृहिणी, और तमोगुण रूप से कन्या होती है, अतः उस देवी को नमस्कार है। तथा एकरूपी उस निर्गुण को अनेक पुरुष रूपों में विभक्त किया है, जो चैतन्य, अज्ञानी एवं प्रकृति द्वारा उत्पन्न कहे जाते हैं। अलोक निवासी सभी लोग पापकर्म द्वारा ब्रह्मादि देवों से उत्पन्न हैं। और उसे ही ज्ञानमयी नारी पुरुष रूप में वरण करती है। अतः उस स्त्री के पुत्र, पिता, भ्राता और पति कौन हो सकते हैं? क्योंकि ब्रह्मा ने अपनी पुत्री, विष्णु ने अपनी माता, एवं भगवान् शंभु ने अपनी भगिनी का (स्त्रीरूप) ग्रहणकर श्रेष्ठता प्राप्त की है। अदितिपुत्र विवस्वान् ने इस वेदमयी वाणी को सुनकर उस भ्रातृपुत्री संज्ञा का ग्रहणकर श्रेष्ठता प्राप्त की।१५-२८। पश्चात् उन दोनों के द्वारा कन्या सुत यम और यमुना वैवस्वत तेजपूर्ण जन्म हुआ। उस समय संज्ञा ने अपने पति को तेजपुञ्ज जानकर अपनी प्रतिनिधि छाया को वहाँ रखकर स्वयं तप करने के लिए प्रस्थान किया। अनन्तर

वह राजलक्ष्मी रुदन कर रही थी, उस शुभ मुखवाली से प्रियवाणी कहा—देवि ! क्यों रुदन कर रही हो, तुम्हें क्या महान् कष्ट है, मुझे बताओ ! इसे सुनकर राजलक्ष्मी ने उस वीरसेन से कहा—वलिन् ! मै राजा रूपसेन की राजलक्ष्मी हूँ, इस मास के अन्त समय में मेरा प्रलय (नाश) हो जायेगा, इसीलिए मैं शोक कर रही हूँ । पश्चात् उसने कहा—देवि ! सुनो इससे तो तुम्हारी अल्पायु मालूम हो रही है, किन्तु किसी पुण्य के द्वारा तुम्हारी दीर्घायु संभव हो सके, तो उसे बताने की कृपा करो ।१-१२

देवी जी बोली—महाबाहो, महाप्राज्ञ ! यदि तुम, अपने पुत्र का शिर चण्डिका देवी के लिए अर्पित कर सको तो हे अनघ ! मेरी दीर्घायु हो जाये । अतः अपने स्वामी के लिए इसकी सिद्धि अवश्य करो । इसे सुनकर वीरवर ने स्वयं अपने घर, आकर प्रसन्न हृदय से पत्नी से कहा—पुत्र, देवी जी के लिए समर्पित कर दो' उस पतिव्रता ने निर्भय होकर उसे स्वीकार किया, पश्चात् पुत्र से कहा—'पुत्र ! राजा के किसी कार्य के लिए ही तुम्हारे शरीर का पालन-पोषण किया गया है, अतः उसे अवश्य पूरा करो ।' पुत्र ने उसे स्वीकार कर अपनी भगिनी और माता के साथ चण्डिका देवी के मंदिर में पहुँचकर अपने पिता से कहा—हे पिता ! मेरा शिर चण्डिका के लिए समर्पित कर दीजिये क्योंकि राजलक्ष्मी जिस प्रकार से दीर्घायु प्राप्त करें, वह

(सिपाही) उसे चोर समझ बाँधकर राजा के सामने उपस्थित किये । राजा दन्तावक्त्र उससे बोले—हे मनुष्य ! यह सुन्दर आभूषण तुम्हें कहाँ कैसे प्राप्त हुआ, सब बातें मुझसे कहो ! उस जटाधारी ने कहा—राजन् ! श्मशान स्थान में मेरे गुरु रहते हैं, सुवर्ण से आच्छन्न इस आभूषण को विक्रयार्थ उन्होंने मुझे दिया है । इसे सुनकर राजा ने शीघ्र उस गुरु को बुलाकर उस भूषण प्राप्ति के विषय में पूँछा । अनन्तर योगी ने कहा—(मैं बता रहा हूँ) आप लोग सुनिये ! मैं योगी का वेष धारण कर श्मशान में मंत्र सिद्धि कर रहा था, उसी बीच कोई पिशाचिनी वहाँ आई । मैंने अपने त्रिशूल से उसके घुटने में चिह्नकर दिया है, उसी ने यह आभूषण प्रदान किया । राजा उसके कारण को समझ कर अपनी पुत्री को घर से निकाल दिया । पश्चात् बुद्धिदक्ष वज्रमुकुट समेत उस राजकुमारी को साथ लेकर अपने घर आया । इतनी बातें कहने के उपरांत बैताल ने हँसकर विक्रमादित्य से कहा—राजन् सुनो ! इन चारों में किसको अधिक पाप का भागी होना पड़ा ! ५१-५८

सूतजी बोले—इसे सुनकर राजा विक्रमादित्य ने हँसकर कहा कि पाप का भागी राजा हुआ क्योंकि मंत्री ने मित्रकार्य, सेवकों ने स्वामी का कार्य और राजकुमार ने अपना स्वार्थ सम्पन्न किया । अतः महापापी राजा ही हुआ जिसके नाते उसे नरक की प्राप्ति हुई । जो मनुष्य अपनी कन्या का विवाह उसके रजस्वला होने की जानकारी रखते हुए भी नहीं करता है, उस पापी को साठ सहस्र वर्ष तक नरक का अनुभव करना पड़ता है । अपने गान्धर्व विवाह के लिए कन्या के तैयार होने पर जो कोई उसमें बाधक

यज्ञ को किस भाँति किया था मुझे विस्तार पूर्वक बताने की कृपा करें।

सूत जी बोले—एक समय क्षेमक के पुत्र प्रद्योत अपने हस्तिनगर की राजधानी में सिंहासनारूढ़ हो कुछ कथाओं की चर्चा कर रहे थे कि उसी समय वहाँ महर्षि नारद का आगमन हुआ। उन्हें देखकर परम प्रसन्नता प्रकट करते हुए उस धार्मिक राजा ने उनका विधिवत् आतिथ्य सत्कार किया। सुखासीन होकर नारद मुनि ने राजा प्रद्योत से कहा—'म्लेच्छों द्वारा तुम्हारे पिता का निधन हुआ है, इसीलिए उन्हें यमलोक को प्रस्थान करना पड़ा, अब वे म्लेच्छ यज्ञ के प्रभाव से ही स्वर्ग निवासी हो सकते हैं, सुनते ही क्रुद्ध होने के कारण उसकी आँखे ताँबे की भाँति रक्त वर्ण की हो गईं। उसने शीघ्र वैदिक विद्वान् ब्राह्मणों को निमंत्रित करके कुरुक्षेत्र में म्लेच्छयज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया। उस अनुष्ठान में चौकोर एवं सोलह योजन के विस्तृत यज्ञ-कुण्ड की रचना करके देवता के ध्यान पूर्वक उस राजा ने उसमें म्लेच्छों की आहुति प्रदान करना आरम्भ किया। वेदमंत्र के प्रभाव से उसने हार, हूण, बर्बर, गुरुण्ड (अंग्रेज), शक, खस, यवन, पल्लव, रोमज, खरसंभव, द्वीपनिवासी कामरू, चीनी, एवं सागर के मध्यवर्ती प्रदेशों के म्लेच्छों को मंत्र द्वारा बुलाकर आहुति करके भस्म कर दिया। पुनः ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान करने के उपरांत अभिषेक भी सविधान समाप्त किया। तत्पश्चात् राजा क्षेमक को स्वर्गलोक की प्राप्ति हुई। उसी

वाचक के सम्मुख आसन पर बैठे। भूपते ! महाबाहो, जिस समय वाचक, व्यास को नमस्कार कर स्थिर हो जाये, उस समय श्रोताओं को केवल सन्देह विषय के अतिरिक्त अन्य विषय की बातें न करनी चाहिए।६७-६९। यदि कहीं श्रोता को संदेह उत्पन्न हो जाये, तो वाचक को प्रसन्न करके उसे पूँछना चाहिए, क्योंकि वाचक वहाँ के उपस्थित लोगों का गुरु एवं धर्मतः बन्धु रूप बताया गया है।७०। नृप ! वाचक को भी श्रोताओं के ऊपर कृपा कर इस प्रकार की सरल भाषा एवं प्रिय वाणी का उपयोग करना चाहिए, जिससे उन्हें निर्भ्रान्त अर्थ का ज्ञान हो क्योंकि वह सब भाँति उनके गुरु रूप हैं।७१। नृपशार्दूल ! शूद्र वर्ण के श्रोताओं के सामने वैश्य, तथा वैश्यों के सामने क्षत्रिय एवं सभी के मध्य में वाचक को बैठकर कथा सुननी चाहिए। राजन् ! वर्ण शंकर वालों को शूद्र के पीछे बैठना चाहिए। ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी अन्य वर्ण वाले को वाचक न बनाना चाहिए, क्योंकि अन्यवर्ण के वाचक द्वारा पुराणादि सुनने पर नरक की प्राप्ति होती है।७२-७४। राजन् ! कुरुनन्दन ! इस प्रकार श्रोताओं को प्रत्येक मास में पुराणों की समस्त पंक्तियों के श्रवण विधान को सुसम्पन्न करके पारण करना बताया गया है।७५। राजन् !

---

१. इदं पूर्वान्वयि।

1:14 PM

आदि की सुरक्षा करना एक मात्र ब्राह्मणों का ही कर्तव्य है क्योंकि देवगण ब्राह्मण के मुख द्वारा ही हव्यों के भक्षण करते हैं । और पितर लोग कव्यों के । इसलिए उनसे बढ़कर कोई नहीं है । ब्राह्मण जन्म से ही सर्वप्रधान है, अतः सभी भाँति की अर्चा के योग्य हैं ।२-३। द्विजोत्तम ! ब्राह्मण सर्वत्र अपनी ही वस्तु का भक्षण करता है और उसी का पालन पोषण भी । तीनों जातियों की वृद्धि एवं नाश के लिए ब्राह्मण की रचना हुई है । भली भाँति सन्तुष्ट होने पर ब्राह्मण उनकी वृद्धि करता है इसमें संदेह नहीं, तथा क्रुद्ध होने पर उनके सर्वनाश का मूल कारण भी होता है, इसलिए ब्राह्मण सदैव उनके लिए पूज्य है ।४-५। द्विजः जिस ब्राह्मण के गर्भाधानादि संस्कार सुसम्पन्न हुए हैं तथा वह शास्त्र के अड़तालीस प्रकार के नियमों से निवृत्त हो गया है, अतः ब्राह्मणत्व प्रधान होने के नाते उसे ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है ।६। प्रथम संस्कार द्वारा पवित्र, दूसरे वेदाध्ययन द्वारा पूत, तीसरी विद्याद्वारा पूत, पश्चात् तीर्थ-यात्रादि से पूत एवं क्षेत्रपूत (पवित्र क्षेत्र से उत्पन्न), ऐसे विशिष्ट पूत ब्राह्मणों की पूजा अवश्य करनी चाहिए । इससे पूजने वाले को स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है, अन्यथा (इनकी पूजा न करने से) श्रम व्यर्थ हो जाता है ।७-८। सभी पवित्रों में परम पवित्र, गुरुओं के परम गुरु एवं सभी प्रकार के सत्त्व समेत ब्राह्मणों को ब्रह्मा ने सर्वप्रथम ही उत्पन्न किया है ।९। देवगण ब्राह्मणों की अर्चा के द्वारा ही स्वर्ग का अक्षय उपभोग प्राप्त किये हैं और मनुष्य भी अपने-अपने राज्य की प्राप्ति द्वारा देवत्व की प्राप्ति करते रहते हैं ।१०।

सूत उवाच

श्रृणुध्वं विप्रसन्घाताः पुराणं देवसंमतम् । यच्छ्रुत्वा मुच्यते पापात्पुरुषो ब्रह्महत्यया ।।१

लिए चेष्टा भी न करनी चाहिये।११७। शूद्रों को विशेषकर शब्दशास्त्र (व्याकरण) का अध्ययन वर्जित किया गया है, क्योंकि ब्रह्मयोनि ब्रह्मा ने उन्हें ब्राह्मणों का दास बनाया है।११८। जिस प्रकार कुतिया श्रृगाली एवं गधी के दूध को पान करने के अयोग्य बताया गया है, उसी भाँति शूद्रों के मुख से निकले धार्मिक संस्कृत शब्द, श्रवण-मनन के अयोग्य हैं।११९। अपवित्र वस्तु जल से पवित्र की जाती है, उसी प्रकार शूद्र (पुराणादिक) सुनने से शुद्ध होता है। व्याकरण शास्त्र का अध्ययन करने वाला शूद्र नितान्त अपवित्र होता है। राजाओं को शास्त्रीय अथवा वैदिक धर्मों के उपदेष्टा शूद्रों का वध तथा चक्र अस्त्र द्वारा उनकी जिह्वा कटवा लेनी चाहिए।१२०-१२१। सम्पूर्ण ग्रन्थों के अर्थ उसके मर्मस्थलों के विशेषज्ञ एवं सुन्दर ढंग से उसकी व्याख्या करने वाले ब्राह्मण को व्यास कहा गया है।१२२। जिस ग्राम, या नगर में ऐसे ब्राह्मण का निवास होता है, वह पुण्य प्रदेश बताया गया है, इस प्रकार व्याख्याता जिस नगर आदि में निवास करता है, वे धन्य हैं, कृतकृत्य हैं और कृतार्थ हैं, इसमें संदेह नहीं।१२३। द्विजगण! सूर्यहीन वासर और चन्द्रहीन रात्रि की भाँति, व्यास की अनुपस्थिति में सभा सुशोभित नहीं होती है। जिस घर में बच्चे न हों, उस घर की शोभा कभी नहीं हो सकती है। जिस प्रकार एक ओर समस्त ग्रह सुशोभित हैं और एक ओर सूर्य, उसी भाँति घर में

10:01 PM

अध्याय २५

पुरुषों के लक्षण का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—जिस पुरुष का लिङ्ग दाहिनी ओर झुका हो तो उसके पुत्र तथा बायें ओर झुकने से कन्यायें उत्पन्न होती हैं।१। मोटी-मोटी नसों वाला एवं विषम लिंग दरिद्र सूचक होता है। सीधा तथा वर्तुलाकार लिंग पुत्रवान होने का सूचक होता है।२। नीचे पैर बैठने से जिसका लिंग पृथ्वी में छू जाय उसे निःसन्देह दुःखी जानना चाहिए।३। इसी प्रकार भूमि में पैर पर बैठने पर यदि गुल्फ (एंड़ी), में लिंग छू जाय तो वह स्त्रियों का प्राणप्रिय और राजा होता है।४। सिंह तथा बाघ के समान छोटे लिंग वाला पुरुष समस्त भोगों को भोगने वाला होता है।५। समुद्र के कथनानुसार जिसके लिंग का अग्रभाग रेखा के समान हो वह राजा होता है।६। इसी प्रकार सुवर्ण, चाँदी, मणि, मोती और पुवाल के समान वर्ण एवं स्निग्ध अग्र

---

१. खड्गशूकरयोस्तथा। २. दुर्लभम।

हो गया ।२५। हे नृप ! मद्य पान के कारण स्मृति नष्ट हो जाने से तथा अल्प सत्व के नाते स्वभावतः उनकी जाँघे भीग गईं। पुराणों में यह बात प्रसिद्ध है कि ब्रह्मचारिणी होती हुई सती स्त्रियों की भी योनि, अत्यन्त मनोहर पुरुष को देखकर (मैथुन के लिए) तर (रसपूर्ण) होने लगती हैं।२६-२८। लोक में देखा भी जाता है कि अत्यन्त मद्य पान करने के नाते लज्जाशील स्त्रियाँ अपनी लाज छोड़ कर निर्भय हो जाती हैं। क्योंकि मांस भोजन, उत्तम आसव का पान एव सुगन्धपूर्ण उत्तम वस्त्रों का धारण करना ये सभी स्त्रियों के कामोत्पादक बताये गये हैं।२९-३०। लोगों के कल्याणार्थ शुक्राचार्य ने भी कहा है कि—विद्वानों को अत्यन्त मद्य पान न करना चाहिए।३१। पश्चात् साम्ब को वहाँ भेजकर नारद भी उसके पीछे ही शीघ्र वहाँ पहुँचे।३२। उत्तम एवं प्रिय नारद ऋषि को वहाँ आये हुए देखकर वे स्त्रियाँ जो (मद्य) पान से विह्वल (नशे में चूर) हो रही थीं, (प्रणामार्थ) शीघ्र उठकर खड़ी हो गईं।३३। खड़ी होने पर उनके स्खलित वीर्य का बूँद वस्त्रों से चूकर नीचे पत्तों पर गिर पड़ा। उसे देखकर कृष्ण ने क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दिया कि—मुझे त्याग कर तुम्हारे मन औरों में आसक्त हुए इसलिए तुम्हें पतिलोक एवं स्वर्गमार्ग की प्राप्ति अंत में हो सकेगी। और पतिलोक तथा स्वर्ग से भ्रष्ट होकर उस समय अनाथ होने के नाते तुम्हें चोरों के अधीन रहना पड़ेगा।३४-३७

सुमन्तु बोले—कृष्ण के स्वर्ग प्रस्थान करने के पश्चात् उन स्त्रियों का शापवश अर्जुन के देखते ही

7:40 PM

किसी को भी जल, वायु, अग्निजनित भय उत्पन्न नहीं होता था। वृद्धों को बालकों का प्रेतकर्म नहीं करना पड़ता था (अर्थात् वृद्ध के सामने उनके रहते उनके परिवार में बालक, युवक का मरण नहीं होता था)। क्षत्रियगण ब्राह्मणों का पालन करते थे। वैश्यगण क्षत्रियों की शुश्रूषा करते तथा शूद्रगण तीनों वर्णों की सेवा अहंकार रहित होकर करते रहते।।१४७-१४८।।

नार्यो नात्यचरन्भर्तॄन्भार्या नात्यचरत्पतिः। सर्वमासीज्जगद्दान्तं निर्दस्युरभवन्मही॥१४९॥

राम एकोऽभवद्भर्ता रामः पालयिताऽभवत्। आसन्वर्षसहस्राणि तथा पुत्रसहस्रिणः॥१५०

अरोगाः प्राणिनाश्चाऽऽसन्रामे राज्यं प्रशासति।

देवतानामृषीणां च मनुष्याणां च सर्वशः॥१५१॥

पतिगण पत्नियों का तथा पत्नीगण अपने पतियों का त्याग कभी नहीं करती थीं। समस्त जगत् उस समय सुशासित था। समस्त धरती दस्यु रहित थी। प्राणीगण रोग रहित थे। उस समय अकेले श्रीराम ही प्रजा के पालक तथा स्वामी थे। प्राणीगण सहस्रों सन्तान वाले होकर सहस्राधिक वर्ष जीवित रहते थे। उस समय राम के राज्य में पृथिवी पर सर्वत्र देवता, ऋषि तथा मनुष्यों की प्रतिष्ठा थी।।१४९-१५१।।

(440 / 707)

तत्र कामगुणैः सर्वैः समुपेता मुदान्विताः। महाकाया महाभोगा धना भवति मानवाः॥८॥

एते देवि महाभागाः प्राणिनो दानशालिनः।
ब्रह्मणा वै पुरा प्रोक्ताः सर्वस्य प्रियदर्शनाः॥९॥

महेश्वर कहते हैं—जहां महामति मानव दाता, ब्राह्मणों का सत्कारकर्ता होता है, जो व्यक्ति दीन, आर्त्त, विपन्न लोगों को भक्ष्य-भोज्य-पानीय तथा वस्त्रादि प्रदान करता है, जन सामान्य हेतु वासस्थल, सभा, प्याऊ, पुष्करिणी, प्रभृति निर्मित कराता है, नियमित तथा पवित्र होकर नित्य कर्मों को सम्पन्न करता है, सुप्रशान्त मन द्वारा आसन, शय्या, यान, गृह, धन, रत्न, नाना अन्न, खेत तथा नारी प्रभृति प्रदान करता है, हे देवी! वह नर देवलोकवासी हो जाता है। वह वहां नन्दनकानन आदि में अप्सराओं के साथ सानन्दचित्त होकर विहार भी करता है। वह अन्ततः (पुण्यक्षय होने पर) इन अत्युत्तम भोगास्वादनोपरान्त स्वर्गच्युत होकर धन-रत्न से समृद्ध महाभाग्यवान् कुल में जन्मलाभ करता है। वह मानव वहां सभी प्रकार के काम्य भोगों से युक्त, प्रीतिपूर्ण चित्त वाला, धनी तथा विविध सत्कार्य करने वाला होकर प्रसिद्धि लाभ करता है। हे देवी! दानी लोग इहलोक में महाभाग्यवान् तथा प्रियदर्शन होकर उत्पन्न होते हैं। यह ब्रह्मा का कहना है।।२-९।।

अपरे मानवा देवि प्रदानकृपणा द्विजाः।
येऽल्पानि न प्रयच्छन्ति विद्यमानेऽप्यबुद्धयः॥१०॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवी पार्वती यह देख कर लज्जित हो गईं। उन्होंने शंभु से कहा—"हे देव! अब प्रयोजन नहीं है" (विलास का प्रयोजन नहीं है।) तब शंकर ने सामने फिर रहे पक्षीरूपी अग्नि से कहा—"हे

अग्नि! तुम पहचान लिये गये। कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। अपना मुख खोलो तथा उसमें यह लेकर जाओ।" यह कहकर महेश्वर ने अग्नि के मुख में अपना वीर्य प्रचुर परिमाण में छोड़ दिया। उस समय अग्नि उस शिव के वीर्य का वहन मुख में कर सकने में असमर्थ हो गये। वे किसी प्रकार अत्यन्त कष्ट के साथ थके हुये देवसरिता गंगा के तट पर पहुंचे और वहां समागत कृत्तिकाओं में उन्होंने वह वीर्य छोड़ दिया। कृत्तिकाओं में जाकर वह वीर्य कार्तिक नामक पुत्ररूप में उत्पन्न हो गया।।२०-२३।।

अन्यान्य वीर्य से मिश्रित होकर जन्म लेने वाले अग्नि के पुत्र-कन्या दोषयुक्त थे। सुवर्ण अनेक रूप धरता था। वह देवगण के उत्तम रूप को धारण करके इन्द्र, वायु, कुबेर, जलेश्वर वरुण तथा अन्य मुनियों का रूप धरता उनकी पत्नियों से सतत् संगम करता रहता। जिस रमणीय रूप को जो नारी रुचिकर मानती, सुवर्ण वैसा ही रूप धारण करता तथा उस नारी से संगम करता। वह अग्निपुत्र इस प्रकार से पतिव्रता नारीगण से भी

उनके पति का रूप धारण करके संगमरत हो जाता। वह इस प्रकार नित्य अपनी इच्छा से कामवासना तृप्त करता रमणरत रहता। वह इस प्रकार कामदेव को तृप्त करता रहता था।।२९-३१।।

क्रत्वा गता क्वापि चैवं सवर्णा, धर्मस्य भार्याऽपि सुवर्णनाम्नी।

4:11 PM

विक्रीणीते यश्च कन्यामश्वं वा गां तिलानपि॥११॥

विष्टि कहती है—जो पिता बाल्यावस्था में ही सुरूप पात्र को कन्या प्रदान करता है, वही इस लोक में कृतार्थ है। अन्यथा पिता दुष्कृति कहा जाता है। चतुर्थ वर्ष से लेकर जब तक दशम वर्ष की आयु (कन्या की) व्यतीत नहीं हो जाती, तब तक इस काल के बीच में ही कन्या का विवाह कर देना पिता का कर्त्तव्य है। श्रीमान्, विद्वान्, युवा, कुलीन, यशस्वी, उदार, अभिभावकवान, पात्र को ही कन्या प्रदान करना पिता का कर्त्तव्य है। जो एतद्विपरीत कार्य करता है, वह सर्वदा नरकगामी हो जाता है। हे भास्कर! विद्वान् मनुष्य हेतु कन्या धर्म का साधन है, लेकिन काम से दग्ध लोगों के लिये, इन मूर्खों के लिये, वह नरक की हेतुरूपा है। एक ओर शैल-वन-कानन समन्विता पृथिवी है तो दूसरी ओर उत्तम अलंकृता रोगहीना सुकन्या है। ये दोनों बराबर, एक तुल्य कथित हैं। जो मनुष्य कन्या, अश्व, गौ तथा तिल का विक्रय करता है।।६-११।।

न तस्य रौरवादिभ्यः कदाचिन्निष्कृतिर्भवेत्।
विवाहातिक्रमः कार्यो न कन्यायाः कदाचन॥१२॥

षष्टितमोऽध्यायः

राजा भगीरथका चरित्र

नारद उवाच

भगीरथं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
(परित्राणाय पूर्वेषां येन गङ्गावतारिता ।
यस्येन्द्रो बाहुवीर्येण प्रीतो राज्ञो महात्मनः ।।
योऽश्वमेधशतैरीजे समाप्तवरदक्षिणैः ।
हविर्मन्त्रान्नसम्पन्नैर्देवानामादधान्मुदम् ।।
यस्येन्द्रो वितते यज्ञे सोमं पीत्वा मदोत्कटः ।
असुराणां सहस्राणि बहूनि च सुरेश्वरः ।।
अजयद् बाहुवीर्येण भगवाँल्लोकपूजितः ।)
येन भागीरथी गङ्गा चयनैः काञ्चनैश्चिता ।। १ ।।

नारदजी कहते हैं—सृंजय! हमारे सुननेमें आया है कि राजा भगीरथ भी मर गये, जिन्होंने अपने पूर्वजोंका उद्धार करनेके लिये इस भूतलपर गंगाजीको उतारा था। जिन महामना नरेशके बाहुबलसे इन्द्र बहुत प्रसन्न थे, जिन्होंने प्रचुर एवं उत्तम दक्षिणासे युक्त हविष्य, मन्त्र और अन्नसे सम्पन्न सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया और देवताओंका आनन्द बढ़ाया, जिनके महान् यज्ञमें इन्द्र सोमरस पीकर मदोन्मत्त हो उठे थे तथा जिनके यहाँ रहकर लोकपूजित भगवान् देवेन्द्रने अपने बाहुबलसे अनेक सहस्र असुरोंको पराजित किया, उन्हीं राजा भगीरथने यज्ञ करते समय गंगाके दोनों किनारोंपर सोनेकी ईंटोंके घाट बनवाये थे ।।

यः सहस्रं सहस्राणां कन्या हेमविभूषिताः ।
राज्ञश्च राजपुत्रांश्च ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।। २ ।।

इतना ही नहीं, उन्होंने कितने ही राजाओं तथा राजपुत्रोंको जीतकर उनके यहाँसे सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित दस लाख कन्याएँ लाकर उन्हें ब्राह्मणोंको दान किया था ।। २ ।।

सर्वा रथगताः कन्या रथाः सर्वे चतुर्युजः ।
रथे रथे शतं नागाः सर्वे वै हेममालिनः ।। ३ ।।

Shri Ramcharitm...

हे विप्र! हमारे अपराधोंकी क्षमा कीजिये॥ ४॥

दो०—बार बार मुनि बिप्रबर कहा राम सन राम।
बोले भृगुपति सरुष हसि तहूँ बंधु सम बाम॥ २८२॥

श्रीरामचन्द्रजीने परशुरामजीको बार-बार 'मुनि' और 'विप्रवर' कहा। तब भृगुपति (परशुरामजी) कुपित होकर [अथवा क्रोधकी हँसी हँसकर] बोले—तू भी अपने भाईके समान ही टेढ़ा है॥ २८२॥

निपटहिं द्विज करि जानहि मोही। मैं जस बिप्र सुनावउँ तोही॥
चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोपु मोर अति घोर कृसानू॥

तू मुझे निरा ब्राह्मण ही समझता है? मैं जैसा विप्र हूँ, तुझे सुनाता हूँ। धनुषको स्रुवा, बाणको आहुति और मेरे क्रोधको अत्यन्त भयङ्कर अग्नि जान॥ १॥

समिधि सेन चतुरंग सुहाई। महा महीप भए पसु आई॥
मैं एहिं परसु काटि बलि दीन्हे। समर जग्य जप कोटिन्ह कीन्हे॥

चतुरंगिणी सेना सुन्दर समिधाएँ (यज्ञमें जलायी जानेवाली लकड़ियाँ) हैं। बड़े-बड़े राजा उसमें आकर बलिके पशु हुए हैं, जिनको मैंने इसी फरसेसे काटकर बलि दिया है। ऐसे करोड़ों जपयुक्त रणयज्ञ मैंने किये हैं (अर्थात् जैसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक 'स्वाहा' शब्दके साथ आहुति दी जाती है, उसी प्रकार मैंने पुकार-पुकारकर राजाओंकी बलि दी है)॥ २॥

मोर प्रभाउ बिदित नहिं तोरें। बोलसि निदरि बिप्र के भोरें॥
भंजेउ चापु दापु बड़ बाढ़ा। अहमिति मनहुँ जीति जगु ठाढ़ा॥

मेरा प्रभाव तुझे मालूम नहीं है, इसीसे तू ब्राह्मणके धोखे मेरा निरादर करके बोल रहा है। धनुष तोड़ डाला, इससे तेरा घमंड बहुत बढ़ गया है। ऐसा अहंकार है, मानो संसारको जीतकर खड़ा है॥ ३॥

राम कहा मुनि कहहु बिचारी। रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी॥
छुअतहिं टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना॥

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे मुनि! विचारकर बोलिये। आपका क्रोध बहुत बड़ा है। और मेरी भूल बहुत छोटी है। पुराना धनुष था, छूते ही टूट गया। मैं किस कारण अभिमान करूँ?॥ ४॥

दो०—जौं हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभटु जेहि भय बस नावहिं माथ॥ २८३॥

हे भृगुनाथ! यदि हम सचमुच ब्राह्मण कहकर निरादर करते हैं, तो यह सत्य सुनिये, फिर संसारमें ऐसा कौन योद्धा है जिसे हम डरके मारे मस्तक नवायें?॥ २८३॥

देव दनुज भूपति भट नाना। समबल अधिक होउ बलवाना॥
जौं रन हमहि पचारै कोऊ। लरहिं सुखेन कालु किन होऊ॥

लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे। मगहँ गयादिक तीरथ जैसे॥
रामहि मातु बचन सब भाए। जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए॥

कैकेयीके बुरे मुखमें ये शुभ वचन कैसे लगते हैं जैसे मगध देशमें गया आदिक तीर्थ! श्रीरामचन्द्रजीको माता कैकेयीके सब वचन ऐसे अच्छे लगे जैसे गङ्गाजीमें जाकर [अच्छे-बुरे सभी प्रकारके] जल शुभ, सुन्दर हो जाते हैं॥ ४॥

ततः संभुज्यमानासु देवपत्नीषु नारद। नाशक्नुवन्वारयितुं कार्तिकेयं दिवौकसः॥५॥

ततो निवेदयामासुः पार्वत्यै पुत्रकर्म तत्।
असकृद्वार्यमाणोऽपि मात्रा देवैः स शक्तिधृक्॥६॥
नैवासावकरोद्वाक्यं स्त्रीष्वासक्तस्तु षण्मुखः।
अभिशापभयाद्भीता पार्वती पर्यचिन्तयत्॥७॥

माता का यह कथन सुनकर कार्त्तिकेय सुख पूर्वक तथा बलात् देवस्त्रियों के साथ रमण करने लगे तथा देवपत्नियां भी उनके साथ रतिक्रीड़ा में आसक्त हो गयीं। हे नारद! तभी से सभी देवपत्नियां कार्त्तिकेय द्वारा उपभोग की जाने लगीं। देवता लोग किसी भी प्रकार से कार्त्तिकेय को इस कार्य से रोक नहीं सके। इससे त्रस्त होकर सभी देवता भगवती पार्वती के पास जाकर उनके पुत्र का यह अपकृत्य भगवती से कहने लगे। लेकिन वे षडानन स्कन्ददेव अत्यन्त शक्तिशाली थे तथा उन स्त्रियों के प्रति वे इतने आसक्त हो गये थे, जिसके कारण भगवती पार्वती माता और अन्य देवताओं के द्वारा पुनः-पुनः रोके जाने पर भी उन्होंने सबकी बातों को अनसुनी कर दिया। यह देख कर माता पार्वती ने अभिशाप भय से व्याकुल होकर तथा पुत्रस्नेह के कारण चिन्तातुर होकर विचार किया।।४-७।।

आनीयते महाराज तस्याः सर्वं निवेद्य च॥६॥

उर्वशी कहती है—हे महाराज! उनसे सभी बातें निवेदित करके लाती हूं।।६।।

ब्रह्मोवाच

ततस्तां प्राहिणोत्तत्र राजा प्रीत्या तदोर्वशीम्। सा गत्वा राजवचनं न्यवेदयदथोर्वशी॥७॥
सरस्वत्यपि तन्मेने उर्वश्या यन्निवेदितम्। सा तथेति प्रतिज्ञाय प्रायाद्यत्र पुरूरवाः॥८॥
सरस्वत्यास्ततस्तीरे स रेमे बहुलाः समाः। सरस्वानभवत्पुत्रो यस्य पुत्रो बृहद्रथः॥९॥

ब्रह्मा कहते हैं—उर्वशी को तब राजा ने सरस्वती को लाने के लिये भेज दिया। उर्वशी ने सरस्वती से जाकर राजा का संवाद कहा। सरस्वती ने तब उर्वशी के कथन का अनुमोदन किया और 'तथास्तु' कहकर वे पुरूरवा के पास आ गयीं। पुरूरवा ने सरस्वती के साथ अनेक वर्षों तक रमण किया। सरस्वती के गर्भ से सरस्वान राजा जन्मा। उसका पुत्र था बृहद्रथ।।७-९।।

तां गच्छन्तीं नृपगृहं नित्यमेव सरस्वतीम्।

4:43 PM

ब्रह्मा कहते हैं—सावित्री, गायत्री, श्रद्धा, मेधा, सरस्वती—ये पांच तीर्थ मुनिगण के अनुसार अतीव पुण्यमय स्थल हैं। यहां इन सबमें स्नान करने वाला सर्वपाप रहित हो जाता है। सावित्री, गायत्री, श्रद्धा, मेधा, सरस्वती, ये सब मेरी ही कन्यायें हैं। ये सभी धर्म की स्थापना की कारण हैं। इनमें से ज्येष्ठा कन्या सावित्री को मैंने सर्वलोक सुन्दरी और सर्वश्रेष्ठ रूप में सृष्ट किया है। हे मुनिप्रवर! उसे देख कर मेरी भी बुद्धि विकृत हो गयी थी। मैंने उसे ग्रहण कर लिया था। लेकिन वह बाला मुझे देखकर मृगीरूप धारण करके भाग गई। मैं भी मृगरूपी होकर उसका पीछा करने लगा था। तभी धर्मरक्षार्थ भगवान् शंभु मृगव्याध रूप में वहां आ गये।।१-५।।

ता मद्भीताः पञ्च सुता गङ्गामीयुर्महानदीम्। ततो महेश्वरः प्रयाद्धर्मसंरक्षणाय सः।।६।।
धर्नुर्गृहीत्वा सशरमीशोऽपि मृगरूपिणम्। मामुवाच वधिष्ये त्वां मृगव्याधस्तदा हरः।।७।।

उस समय मुझे देख कर पांच कन्यायें भयभीत हो गईं। उन्होंने जाकर महानदी गंगा में शरण लिया था। मृगव्याध रूपी महेश्वर ने धर्मरक्षार्थ हाथ में धनुष-वाण लेकर मुझ मृगरूपी से कहा कि मैं तुम्हारा वध करूंगा।।६-७।।

स्त्रियः पीनपयोभाराः कञ्चुकैः स्वस्तनावृताः॥८७॥
मध्यहीनाश्च सुश्रोण्यः पद्मपत्रायतेक्षणाः। हावभावान्वितग्रीवा बह्व्यो वलयभूषिताः॥८८॥
पादनूपुरसंयुक्ताः पट्टदुकूलवाससः। एकैकशोऽददात्तस्मिन्काम्याश्च कामिनीर्बहूः॥८९॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे ऋषिवृन्द! महाबाहु राजा यह कहकर कोटि-कोटि स्वर्ण दान करने लगे। उन्होंने वेदज्ञ ब्राह्मणों को लाखों करेणु, करोड़ों आभूषण, एक लक्ष हाथी, दस लाख अश्व, एक अरब बैल, स्वर्ण से मढ़ी सींगों वाली सुन्दर दुग्धवती गायें प्रदान करने के साथ उनको कीमती वस्त्र, कालीन, प्रवालादि मणि तथा विविध रत्न प्रदान किया। उन्होंने गौरवर्ण, कमलनयनी, वज्रमणि, वैदूर्य, मुक्ता से अलंकृत ५०० कन्यायें ब्राह्मणों को प्रदान किया। हे द्विजप्रवरगण! राजा ने इस यज्ञ में प्रत्येक ब्राह्मण को जो स्त्रियां प्रदान किया था, वे सभी स्थूल तथा उन्नत स्तनों के भार से झुकी हुई थीं। उनके स्तन कञ्चुक (चोली) से ढंके थे। उनकी कमर पतली तथा सुन्दर थी। उनके नेत्र पद्मपलाश जैसे आयत थे। पैर नूपुरों से सजे थे। समस्त अंग पट्टवस्त्र से लिपटे थे। वे हाव-भाव-विलास से युक्त थीं। वे सभी वलय आदि अलंकारों से अलंकृत थीं।।८१-८९।।

अर्थिभ्यो ब्राह्मणादिभ्यो हयमेधे द्विजोत्तमाः।
भक्ष्यं भोज्यं च सम्पूर्णं नानासंभारसंयुतम्॥९०॥

12:15 PM

लोमहर्षण उवाच

रविचन्द्रमसोर्यावन्मयूखैरवभास्यते। ससमुद्रसरिच्छैला तावती पृथिवी स्मृता॥३॥
यावत्प्रमाणा पृथिवी विस्तारपरिमण्डला। नभस्तावत्प्रमाणं हि विस्तारपरिमण्डलम्॥४॥
भूमेर्योजनलक्षे तु सौरं विप्रास्तु मण्डलम्।
लक्षे दिवाकराच्चापि मण्डलं शशिनः स्थितम्॥५॥
पूर्णे शतसहस्रे तु योजनानां निशाकरात्। नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्टात् प्रकाशते॥६॥

लोमहर्षण कहते हैं—रवि तथा चन्द्र की किरणों से जहां तक यह सरिता, समुद्र, पर्वत समन्विता पृथिवी अवभासित होती हैं, वहीं तक पृथिवी कही गयी है। पृथिवी का विस्तार जितना है, यह आकाश भी उतना विस्तृत है। हे विप्रों! पृथिवी से एक लाख योजन दूर सूर्यमण्डल अवस्थित है। चन्द्रमण्डल दिवाकर से भी एक लाख योजन की दूरी पर अवस्थित है। चन्द्रमा से सैकड़ों, हजार योजन (एक लाख योजन ऊर्ध्व में) ऊर्ध्वस्थ है नक्षत्र मंडल।।३-६।।

यावन्तो जन्तवः स्वर्गे तावन्तो नरकौकसः।
पापकृद्याति नरकं प्रायश्चित्तपराङ्मुखः॥३४॥
पापानामनुरूपाणि प्रायश्चित्तानि यद्यथा। तथा तथैव संस्मृत्य प्रोक्तानि परमर्षिभिः॥३५॥
पापे गुरूणि गुरूणि स्वल्पान्यल्पे च तद्विदः।
प्रायश्चित्तानि विप्रेन्द्रा जगुः स्वायम्भुवादयः॥३६॥
प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्म्मात्मकानि वै।
यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम्॥३७॥
कृते पापेऽनुतापो वै यस्य पुंसः प्रजायते। प्रायश्चित्तन्तु तस्यैकं हरिसंस्मरणं परम्॥३८॥

इस प्रकार के तथा अन्य कई प्रकार के अनेक भयानक नरक हैं। दुष्कृत करने वाले उन नरकों में जाकर विषम यातना पाते हैं। पूर्व में जितने प्रकार के पातक कहे गये हैं, ऐसे हजारों-हजार पातक हैं। नरक में डूबे स्त्री-पुरुष-लोभी इन सब पापों का फल भोग करते हैं। जो वाणी-कर्म-मन द्वारा वर्णाश्रम के विरुद्ध कर्म करते हैं, वे लोग नरक में डूब जाते हैं। नारकी लोग नीचे सिर वाले होते हैं। वे स्वर्गगत देवगण को देखते हैं। देवता अधोमुख होकर नारकीयों को देखते हैं।

मैथुनाय विचेष्टन्तीं परपुंसोऽवशङ्कया। सा तन्निरवमच्छुक्रं नासिकाभ्यां विवस्वतः॥४३॥

देवौ तस्यामजायेतामश्विनौ भिषजां वरौ। नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनाविति॥४४॥

हे ब्राह्मणवृन्द! सूर्यदेव की अनुमति पाकर त्वष्टा ने भ्रामण यन्त्र (खराद) द्वारा सूर्यदेव के तेज को छांट दिया (उसे कम कर दिया)। इससे सूर्य का रूप उत्तम हो गया। उनका अति सुन्दर रूप पूर्वरूप से भी अधिक शोभायमान होने लगा। हे ब्राह्मणगण! तदनन्तर सूर्यदेव ने योगस्थ होकर अपनी अश्वरूपिणी पत्नी को देखा। वह अपनी दीप्ति तथा सत्ता में समस्त प्राणीगण से उत्कृष्ट थी। संज्ञा वहां अश्वरूपा होकर तृण भोजन कर रही थी। तब सूर्य ने भी अश्व का रूप धरकर उससे मैथुन का प्रयत्न किया तथा इस प्रयत्न के कारण वे उस अश्विनी के मुख में ही मैथुन कर सके, तथापि उस घोड़ी ने अन्य पुरुष का संदेह करके सूर्य के वीर्य को अपने नथुनों से बहिर्गत् कर दिया। इसी से दिव्यरूपधारी अश्विनीकुमारद्वय वैद्यों में प्रधान रूप से उत्पन्न हो गये। इनका नाम क्रमशः नासत्य एवं दस्त्र था।।३९-४४।।

मार्त्तण्डस्यात्मजावेतावष्टमस्य प्रजापतेः। तां तु रूपेण कान्तेन दर्शयामास भास्करः॥४५॥

वसुदेव अपने शाखाओं में बंटे विस्तारपूर्ण वृष्णि-अन्धक-भोज नामक त्रिवर्ग में विभक्त महातेजस्वी वंश शाखा को धारण करने पर भी किसी अनर्थ के भागी नहीं थे। उनकी पुरुवंशी रोहिणी, मदिरा, वैशाखी, भद्रा, सुनाम्नी, सहदेवा, शान्तिदेवा, श्री देवी, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी तथा देवकी नामक चतुर्दश भार्या थीं। दो सेविकायें थी सुतनु तथा बड़वा।।३५-३८।।

पौरवी रोहिणी नाम वाह्लिकस्यात्मजाभवत्।
ज्येष्ठा पत्नी मुनिश्रेष्ठा दयितानकदुन्दुभेः॥३९॥

लेभे ज्येष्ठं सुतं रामं शरण्यं शठमेव च। दुर्दमं दमनं शुभ्रं पिण्डारकमुशीनरम्॥४०॥

चित्रा नाम कुमारी च रोहिणीतनया नव। चित्रा सुभद्रेति पुनर्विख्याता मुनिसत्तमाः॥४१॥

वसुदेवाच्च देवक्यां जज्ञे शौरिर्महायशाः।
रामाच्च निशठो जज्ञे रेवत्यां दयितः सुतः॥४२॥

सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत। अक्रूरात्काशिकन्यायां सत्यकेतुरजायत॥४३॥

पुरुवंश में जन्मी रोहिणी वाह्लीक की कन्या थी। हे मुनिवरगण! इन वसुदेव की ज्येष्ठ पत्नी से राम तथा शरण्य, शठ, दुर्दम, दमन, शुभ्र, पिण्डारक एवं उशीनर नामक पुत्र जन्मे। रोहिणी की नौ कन्यायें उत्पन्न हो गयी थीं। वे चित्रा, सुभद्रा आदि नामों वाली थीं। वसुदेव की कनिष्ठा पत्नी देवकी के गर्भ से महायशस्वी कृष्ण (शौरि) का जन्म हुआ था। बलराम की पत्नी रेवती से निशठ नामक पुत्र जन्मा। अर्जुन की पत्नी सुभद्रा

लोमहर्षण कहते हैं—समुद्र से उत्तर की ओर हिमाद्रि पर्वत है। उससे दक्षिण में भी जो देश है, दोनों मिलाकर भारतवर्ष है। यह भारती प्रजा की निवासभूमि ही भारतवर्ष है। हे द्विजगण! भारतवर्ष का विस्तार परिमाण नौ हजार योजन है। जो स्वर्ग तथा अपवर्ग की इच्छा करते हैं, यह भारतवर्ष ही उनकी कर्मभूमि है।।१-२।।

महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्व्वतः। विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्व्वताः॥३॥

अतः सम्प्राप्यते स्वर्गो मुक्तिमस्मात् प्रयाति वै।
तिर्य्यक्त्वं नरकं चापि यान्त्यतः पुरुषा द्विजाः॥४॥
इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यं चान्ते च गच्छति।
न खल्वन्यत्र मर्त्त्यानां कर्म्मभूमौ विधीयते॥५॥

यहां महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य तथा परियात्र नामक सात कुल पर्वत स्थित हैं। यहीं से स्वर्ग तथा मोक्ष, दोनों मिलता है। यहीं से पुरुष कर्मानुसार तिर्यक् योनि अथवा नरकगति भी प्राप्त करते हैं। मर्त्यलोक वासी लोग स्वर्ग, मोक्ष किंवा मध्यम एवं अन्त्यगति भी यहीं से प्राप्त करते हैं। अन्य किसी भी कर्मभूमि में यह होने की सम्भावना ही नहीं है।।३-५।।

पिता ददाति कन्यां तां सुयोग्याय वराय च। कन्या वरं न याचेत धर्म एष सनातनः॥३६॥

यदि नीचकुलोत्पन्न असाधु व्यक्ति परनारी का साथ करता है, वह अपने पूर्व की सात पीढ़ी के पितृगण के साथ घोर नरकगामी होता है। मैं बाण की कन्या हूं। बाणासुर शिव के किंकर हैं। मेरा नाम ऊषा है। शंकर जगत्पति हैं तथा बाणासुर त्रैलोक्य विजयी हैं। कुलीन कामिनी तीनों काल में पराधीना रहती हैं। वह कदापि स्वतन्त्र नहीं होती। असद्वंश में उत्पन्न कुलटा स्वतन्त्र होती है। पिता कन्या को योग्य वर को प्रदान करते हैं। कन्या स्वयं वर से याचना नहीं करे, यही सनातन धर्म कहा गया है।।३३-३६।।

त्वं च योग्योऽसि योग्याऽहं मामिच्छसि यदि प्रभो।
बाणं प्रार्थय शंभुं वाऽप्यथवा पार्वतीं सतीम्॥३७॥
इत्युक्त्वा सुन्दरीं साध्वी सान्तर्धाना बभूव ह।
निद्रांतत्याज सहसाकामी कामात्मजोमुनः॥३८॥

जारं पश्यति कामेन विषदृष्ट्या पतिं सदा। सततं गौरवं तासां स्नेह च जारबान्धवे।
पत्यौ करप्रहारं च नित्यं नित्यं करोति च।
मिष्टान्नं श्रद्धया भक्त्या जाराय प्रददाति च॥२०॥

कलि में सभी स्त्रियां जार सेवा (उपपतिगमन) तत्पर रहा करेंगी। वे उस जार के प्रति सौ पुत्रों के समान प्रेमरत रहेगीं। स्त्रियां पति को क्रोध से नौकर के समान भोजन प्रदान करेंगी। वे सदा पत्नि को विषदृष्टि से, परन्तु उपपति जार को प्रेम पूर्वक देखेंगी। वे स्त्रियां उपपति जार के बन्धुगण से सदा स्नेह रखेंगी तथा उनको ही गौरव प्रदान करेंगी। वे पति की ताड़ना हाथों से नित्य करेंगी, तथापि जार के प्रति स्नेह दिखाती उसे मिठाई खिलाया करेंगी॥१९-२०॥

मनोनिवारणं कर्तुं न शशाक पितामहः।
वीर्यं पपात चच्छाद लज्जया वाससा विभुः॥१५॥
तद्वीर्यं वस्त्रसहितं प्रतप्तं कामतापतः। क्षीरोदे प्रेरयामास सङ्गीते विरते द्विज॥१६॥

उनका कठोर स्तनमण्डल तथा कठोर जंघा एवं मुस्कान युक्त मुखमण्डल देखकर ब्रह्मा पूर्णतः काम के अधीन हो गये। हे द्विज! पितामह उस समय मन का निग्रह नहीं कर सके। उनका वीर्य स्खलित हो गया। उसे लज्जा के कारण वस्त्र से ढांक लिया। तदनन्तर संगीत बन्द होने पर ब्रह्मा ने काम के ताप से प्रतप्त उस वीर्य को उस वस्त्र के सहित क्षीरसागर में बहा दिया॥१३-१६॥

न गङ्गासदृशं तीर्थं न देवो माधवात्परः। सनत्कुमाराद्भक्तो न न हि कल्पतरोस्तरुः॥८०॥
न पुष्पं पारिजाताच्च न व्रतं हरिवासरात्। पूजने न हि पूज्यं न च पत्रं तुलसीपरम्॥८१॥

न देवी प्रकृतेश्चापि नाऽऽधारः पवनात्परः।
न हि स्थूलो महाविष्णोर्न सूक्ष्मं परमाणुतः॥८२॥
न ब्राह्मणात्परः पूतो नाऽश्रमश्च न तीर्थकम्।
न देवो न परः कोऽपि चेत्याह कमलोद्भवः॥८३॥

गंगा के समान अन्य तीर्थ नहीं है। माधव से श्रेष्ठ कोई देवता नहीं है। सनत्कुमार से बढ़कर कोई भक्त नहीं है। कल्पवृक्ष के समान कोई वृक्ष नहीं है। पारिजात के समान कोई पुष्प नहीं होता। एकादशी व्रत से बढ़कर कोई व्रत नहीं है। पूजार्थ तुलसीपत्र से श्रेष्ठ कोई पत्र नहीं है। प्रकृति से श्रेष्ठ कोई देवी नहीं है। पवन से बढ़कर कोई आधार नहीं है। महाविष्णु से बढ़कर कोई स्थूल नहीं है। परमाणु से अधिक सूक्ष्म कुछ भी नहीं है। ब्राह्मण से श्रेष्ठ कोई आश्रम किंवा तीर्थ ही नहीं है। उससे (ब्राह्मण) से बढ़कर कोई देवता भी नहीं है। यह ब्रह्मा का वचन है।।८०-८३।।

अत्यन्त दुष्ट बुद्धि वाला व्याधियुक्त शूद्र योनि में उत्पन्न होगा। तदनन्तर पातक रहित होकर वह ब्राह्मण होगा। तेल पेरने वाला किंवा तेल चोर तीन जन्म तक जूं योनि में रहता है। तदनन्तर एक बार दुष्ट बुद्धि स्वर्णकार होकर जन्म लेगा। यदि समस्त संसार के भाग्य को लिखने वाले ब्रह्मा भी अन्नप्रदाता का धन हरण करें, तब उनको भी अन्धकारपूर्ण कुण्ड में १०० वर्ष रहने के पश्चात् स्वर्ण विक्रेता का जन्म मिलेगा। तदनन्तर एक जन्म पर्यन्त दुराचरण करने वाला होकर अगले जन्म में वह कायस्थ जाति वाला होकर रहेगा। कायस्थ के सम्बन्ध में कहा गया है कि उसने तो माता के गर्भ में माता का मांस इसलिये नहीं खाया कि उसे दांत नहीं थे। यह उसकी कृपा नहीं है। दांत न होने की विवशता है। अन्यथा कायस्थ कुछ भी नहीं छोड़ता। हे व्रजेश्वर! सोनार, स्वर्ण व्यापारी तथा कायस्थ समस्त मनुष्य जाति में सबसे बढ़कर धूर्त्त होते हैं। समग्र भूमण्डल में इनके जैसा धूर्त्त कृपाहीन कोई नहीं है।।१२९-१३८।।

हृदयं क्षुरधाराभं तेषां नास्ति च सादरम्।
शतेषु सज्जनः कोऽपि कायस्थो नेतरौ च तौ।।१३९।।
सुबुद्धिः शिवयुक्तश्च शास्त्रज्ञो धर्ममानसः।
न विश्वसेत्तेषु तात स्वात्मकल्याणहेतवे।।१४०।।

इनका हृदय तो छूरे की धारा के समान होता है। ये मन से किसी का आदर नहीं करते। हो सकता है कि सैकड़ों कायस्थ में से कोई एक साधु हो, परन्तु अन्य दो जाति स्वर्णकार तथा स्वर्णवणिक् में तो कोई सज्जन ही नहीं होता। हे तात! जो सुबुद्धि, शास्त्रवेत्ता, धार्मिक अपना कल्याण चाहें, वे इन पर विश्वास न करें।।१३९-१४०।।

... मच्छर, दुर्गन्धित कीड़ा तथा खटमल होकर अत्यन्त दुष्ट बुद्धि वाला व्याधियुक्त शूद्र योनि में उत्पन्न होगा। तदनन्तर पातक रहित होकर वह ब्राह्मण होगा। तेल पेरने वाला किंवा तेल चोर तीन जन्म तक जूं योनि में रहता है। तदनन्तर एक बार दुष्ट बुद्धि स्वर्णकार होकर जन्म लेगा। यदि समस्त संसार के भाग्य को लिखने वाले ब्रह्मा भी अन्नप्रदाता का धन हरण करें, तब उनको भी अन्धकारपूर्ण कुण्ड में १०० वर्ष रहने के पश्चात् स्वर्ण विक्रेता का जन्म मिलेगा। तदनन्तर एक जन्म पर्यन्त दुराचरण करने वाला होकर अगले जन्म में वह कायस्थ जाति वाला होकर रहेगा। कायस्थ के सम्बन्ध में कहा गया है कि उसने तो माता के गर्भ में माता का मांस इसलिये नहीं खाया कि उसे दांत नहीं थे। यह उसकी कृपा नहीं है। दांत न होने की विवशता है। अन्यथा कायस्थ कुछ भी नहीं छोड़ता। हे व्रजेश्वर! सोनार, स्वर्ण व्यापारी तथा कायस्थ समस्त मनुष्य जाति में सबसे बढ़कर धूर्त्त होते हैं। समग्र भूमण्डल में इनके जैसा धूर्त्त कृपाहीन कोई नहीं है।।१२९-१३८।।

हृदयं क्षुरधाराभं तेषां नास्ति च सादरम्।
शतेषु सज्जनः कोऽपि कायस्थो नेतरौ च तौ॥१३९॥
सुबुद्धिः शिवयुक्तश्च शास्त्रज्ञो धर्ममानसः।
न विश्वसेत्तेषु तात स्वात्मकल्याणहेतवे॥१४०॥

इनका हृदय तो छूरे की धारा के समान होता है। ये मन से किसी का आदर नहीं करते। हो सकता है कि सैकड़ों कायस्थ में से कोई एक साधु हो, परन्तु अन्य दो जाति स्वर्णकार तथा स्वर्णवणिक् में तो कोई सज्जन ही नहीं होता। हे तात! जो सुबुद्धि, शास्त्रवेत्ता, धार्मिक अपना कल्याण चाहें, वे इन

से प्रसिद्ध, सिद्धयोगिनी, नानारूप धारण करने वाली, अतीव अप्रतिम सुन्दरी, ६४ कला ज्ञाता, कामशास्त्र निपुणा, रसिकेश्वरी, शृङ्गारलीला निपुणा, निरन्तर कामभाव से युक्ता, शंकर शिष्या, ज्ञानसम्पन्ना पतिव्रता, राधा की माता कलावती थीं। राधिका भी माता के समान गुणवती तथा उनके ही समान कामिनी थीं। राधा ने अपने स्वामी कृष्ण के प्रति अनेक (काम) भाव प्रकट किया।।२-८।।

चतुःषष्टिकलामानं शृङ्गारं च चकार सः। तया विशिष्टया सार्कं रासे रासरसोत्सुकः।।९।।

तां नखाग्रक्षतश्रोणीं नखक्षतपयोधराम्। लुप्तचन्दनसिंदूरां कबरीशिथिलां सतीम्।।१०।।

सुखसंभोगमग्नां च नग्नां च शोकमूर्च्छिताम्।

पुलकाञ्चितसर्वाङ्गीं निद्रादेवी समाययौ।।११।।

रासरसोत्सुक श्रीकृष्ण ने उन निपुणा राधा के स्तनों तथा उनके नितम्बों को अपने नखों से क्षत-विक्षत करके ६४ कलाओं द्वारा उन प्रियतमा के साथ रति-विहार किया था। इससे राधा के अंगों का चन्दन तथा सिन्दूर तक पुंछ गया। उनका केशपाश (जूड़ा) ढीला हो गया। तत्पश्चात् सुख-संभोग निमग्ना नग्ना रमणसुख से आत्मविभोर पुलकित अंगों वाली राधिका निद्रित हो गयीं।।९-११।।

चुचुम्ब गण्डे क्रोडे तं चकार कमला यथा॥६०॥

यह कहने के पश्चात् भगवान् श्रीनिवास ने कुब्जा को अपने हृदय से लगाकर नग्न किया तथा उसके साथ आलिंगन-चुम्बनादि कामक्रीड़ा करने लगे। उस समय कुब्जा मुस्करा रही थी। वह कृष्ण के साथ इस नवसंगम के कारण लज्जित भी हो रही थी। कुब्जा ने भी कृष्ण का चुम्बन किया तथा भगवान् ने उसे अपने हृदय से लगा लिया। जिस प्रकार वे लक्ष्मी को गोद में बैठाते थे, उसी प्रकार उन्होंने कुब्जा को गोद में बैठाकर उसका चुम्बन किया।।५९-६०।।

सुरतेर्विरतिर्नास्ति दंपती रतिपण्डितौ। नानाप्रकारसुरतं बभूव तत्र नारद॥६१॥
स्तनश्रोणियुगं तस्या विक्षतं च चकार ह। भगवान्नखरैस्तीक्ष्णैर्दशनैरधरं वरम्॥६२॥

ये दम्पति रति-क्रीड़ा के पण्डित थे। इनकी रमण क्रीड़ा में कोई विराम नहीं हो रहा था। हे

नारद! श्रीकृष्ण तथा कुब्जा में अनेक प्रकार की सुरत क्रीड़ा होने लगी। श्रीकृष्ण ने तीक्ष्ण नखाघात एवं दंताघात से कुब्जा के स्तनों तथा नितम्ब को क्षतविक्षत कर दिया। श्रीकृष्ण ने तदनन्तर राधा के श्रेष्ठ अधर का पान भी किया।।६१-६२।।

ततः शुद्धो भवेद्विप्रो भक्षितः कुक्कुरेण[3] च।
गङ्गास्नानेन दानेन स्वर्णस्यापि भवेच्छुचिः॥७६॥

हे द्विज! वह हाथी का दान करने से व्याधि रहित होगा। तदनन्तर वह द्विज होगा। इसी प्रकार वैश्य हत्यारा वैश्य, शूद्र का हत्यारा वैश्य तथा वैश्य का हत्यारा शूद्र भी समान पातक भागी होते हैं। ये १०० वर्ष कृमिकुण्ड नामक नरक में कीड़ों द्वारा काटे जाते रहने के कारण अत्यन्त दुःखग्रस्त रहते हैं। तदनन्तर १०० वर्ष कृमिव्याधियुक्त किरात होते हैं। तदनन्तर वह मदाग्नि रोगी दीन-हीन ब्राह्मण होगा। ५० वर्ष तक कृश देह रहकर तब वह तीर्थ में अश्वदान से पाप रहित होगा। यदि ब्राह्मण स्वेच्छा से शूद्रवध करे तब वह एक लाख गायत्री जप से शुद्ध होगा। हे ब्रजेश्वर! अनिच्छावशात् अज्ञानतः शूद्रवध कर देने पर वह ५०००० गायत्री जप से शुद्ध होगा। जो चारों वर्ण के लोग कुत्ते का वध करते हैं, वे शिव शाप के कारण १०० वर्ष पर्यन्त रौरव नरक यातना भोगते हैं। तदनन्तर वे १६ वर्ष तक श्वान योनि में रहते हैं। तत्पश्चात् वे कुत्ते के द्वारा भक्षित होकर शुद्ध ब्राह्मण जन्म लेते हैं जहां उनकी शुद्धि गंगास्नान तथा स्वर्ण दान से होती है।।६९-७६।।

मार्जारघ्नश्चतुर्वर्णो गङ्गास्नानाद्भवेच्छुचिः।

तयोभरभराक्रान्त धरायाश्च भरेण च। भाराक्रान्ता हि शेषश्च ...

कच्छपस्य भरेणैव सर्वाधाराः समीरणाः। महाविक्लवयुक्ताश्च सर्वप्राणाश्च स्तम्भिताः॥३८॥

वे शिव-शिवा जो रतिशास्त्र के ज्ञाता थे, इस सुख संभोग में नग्न हो गये। परस्परतः नख-दन्त के प्रहार से उनका शरीर क्षत-विक्षत हो गया था। उनके शरीर पर अंकित चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-सिन्दूर की बिन्दियां इस रतिक्रीड़ा में लिप-सी गई। केशपाश जो बंधा था ढीला हो गया। मालायें छिन्न-भिन्न हो गयीं। हे सुन्दरी! उन दोनों के इस रति क्रीड़ाकाल में उनके वस्त्र, नूपुर, कंगन, वलय तथा कुण्डलों का शब्द होने लगा। वे रतिक्रीड़ा में पुष्पशय्या कुचल रहे थे। वे हांफते हुये अत्यन्त तेजयुक्त तथा क्रीड़ा कौतुक निरत थे। वे इस रतिक्रीड़ा में समान थे। इन विश्व का भरण करने वाले शिव-शिवा के भार से समग्र पृथिवी भाराक्रान्त हो गई। पृथिवी विदीर्ण होने लगी। सभी पर्वत, वन, सागर कम्पित हो उठे। इस भाराक्रान्त पृथिवी के शिव-शक्तियुक्त अतिशय भार के कारण पृथिवी को धारण करने वाले शेष भाराक्रान्त हो गये। अन्ततः शेष को धारण करने वाले कच्छप भी इस वर्द्धित भार से पीड़ित हो गये। कच्छप के भारग्रस्त होने के कारण उनके अतिशय इस भार से सर्वाधार वायु की विकलता के कारण सभी प्राणीगण के प्राण स्तम्भित हो उठे।।३२-३८।।

मुनि को देखकर भयभीत हो गया। उसने मुनि को तत्काल प्रणाम किया।।१३२।।

मधुपर्कादिकं दत्त्वा पूजयामास भक्तितः।
कामात्सर्वं गृहीत्वा च ययाचे कन्यकां मुनिः।।१३३।।
मौनी बभूव नृपतिः किञ्चिन्निर्वक्तुमक्षमः।
मुनिः पुनर्ययाचे तं कन्यां देहीति मे नृपः।।१३४।।
अथवा भस्मासात्सर्वं करिष्यामि क्षणेन च।
सर्वे बभूवुराच्छन्ना गणाश्च तेजसा मुनेः।।१३५।।

तत्पश्चात् राजा ने मुनि को मधुपर्कादि प्रदान करके भक्तिभाव से उनकी पूजा भी किया। मुनि ने यह सब पूजा स्वीकार करके राजा से कन्या की याचना किया। यह सुनकर राजा मौन हो गया। वह स्तब्धता के कारण कोई उत्तर ही नहीं दे सका। तब मुनि ने राजा से पुनः कहा–"मुझे कन्या प्रदान करो, अन्यथा क्षणमात्र में सब कुछ भस्मीभूत कर दूंगा।" राजा के सभी गण उस समय मुनि के तेज से आच्छन्न से हो गये थे!।।१३३-१३५।।

रुरोद राजा सगणो दृष्टवा वृद्धं जरातुरम्। महिष्यो रुरुदुः सर्वा इतिकर्तव्यमक्षमाः।।१३६।।

का पीछा किया। इससे मृत्युञ्जय शिव दुःखी हो गये तथा मृत्युभय से त्रस्त होकर पलायनरत हो गये। इस भागदौड़ में शङ्कर का डमरू, मनोहर व्याघ्रचर्म भी गिर गया। वे दिगम्बर स्थिति में दानव के भय से दसों दिशाओं में भागने लगे, तथापि भगवान् शिव जो अत्यन्त भक्तवत्सल हैं, वे उस दैत्य का वध करने के इच्छुक नहीं थे। जो साधु व्यक्ति होते हैं, वे दुष्ट की तरह के व्यवहार को कदापि स्वयं नहीं करते!।।३१-३४।।

साधवो घ्नन्ति घ्नन्तं च भृत्यं पुत्रं प्रियां विना।
प्रबोधितुं न शक्तश्च स्वात्मानं कृपया समम्।।३५।।
शिवः स्वमृत्युं मत्वा च भीतश्च निरहंकृतः।
स्मारं स्मारं च मां भद्रे मामेव शरणं ययौ।।३६।।

जो साधु होते हैं, वे भृत्य, पुत्र, प्रिया को छोड़कर यद्यपि अन्य किसी भी घातक का विनाश तो कर देते हैं, तथापि भक्तवत्सल शूलपाणि भक्त को तो अपना ही स्वरूप मानते थे। तत्पश्चात् शिव ने अपनी मृत्यु को निश्चित जान लिया। अतः वे भयभीत स्थिति में होकर अहंकारशून्य हो गये। हे प्रिये राधिके! वे बारम्बार मेरा ही स्मरण करते मेरे शरणागत हो गये!।।३५-३६।।

12:48 PM

...७८॥

येन त्यक्तोपस्थिता तं यथा पश्यति पुंश्चली।
स्वामिपुत्रस्वबन्धूनां न तथा घातकं रुषा॥७९॥

देवता, मनुष्य, गन्धर्व, राक्षस में से जो कोई भी रम्भा के साथ रतिसंभोग से वंचित हैं, वे तो वास्तविक स्त्री सुख से ही रहित हैं। यह जान लेना चाहिये। जो व्यक्ति जितेन्द्रिय है तथा निर्जन प्रदेश में आई कान्ता के साथ संभोग नहीं करता, वह अपने शरीर में स्थित जितने भी रोये हैं, उतने कालपर्यन्त निश्चितरूप से कुंभीपाक नरक में क्लेशभोग करता है। जो पुरुष संभोग की लालसा से समागता नारी की उपेक्षा करता है, वह उस स्त्री द्वारा वध का भागी होता है और उस नारी के शाप द्वारा उसका नाश निश्चित है। ब्रह्मा तक मोहिनी के शाप से त्रैलोक्य में अपूज्य हो गये! जो व्यक्ति स्वयं आई रमणी का त्याग कर देते हैं, वह पुंश्चली नारी उस व्यक्ति को अपने स्वामी-पुत्र-बन्धुवर्ग के घातक की अपेक्षा भी अधिक क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखती है।।७६-७९।।

परं प्रियं च सर्वेषां जारं जानाति पुंश्चली। यदि तेन परित्यक्ता तं हन्तुं सा तु दक्षिणा॥८०॥

कलौ दशसहस्राणि वर्षाणि प्रतिमा मम।
तिष्ठन्ति च पुराणानि प्रभावस्तत्र कः कलेः॥४०॥
अतलं याति या धारा सा च भोगवती स्मृता। पयःफेननिभा शश्वदतिवेगवती सदा॥४१॥
आकाराऽमूल्यरत्नानां मणीन्द्राणां च संततम्।
नागकन्याश्च यत्तीरे क्रीडन्ति स्थिरयौवनाः॥४२॥

यह गङ्गा कलिकाल के ५००० वर्षों तक ही भारत में स्थित रहेगी। गङ्गा की विद्यमानावस्था में कलि का कोई प्रभाव नहीं रहेगा। कलिकाल के १०००० वर्ष पर्यन्त मेरी प्रतिमा तथा पुराणों की स्थिति रहेगी। मेरी प्रतिमा की विद्यमानावस्था पर्यन्त कलिकाल का कोई प्रभाव ही नहीं रहेगा। गङ्गा की जो धारा पातालगामिनी है, उसका नाम है भोगवती। उसकी जलराशि दुग्धफेन के समान है। वह सदा अत्यन्त वेग से प्रवाहित रहती है। भोगवती नदी तो रत्न तथा मणियों की खान है। उसके तट पर स्थिर यौवना नागकन्यायें सतत् क्रीड़ारत रहती हैं।।३९-४२।।

दृष्ट्वा पश्चाच्च पितरं धावन्तं हतचेतनम्।
जगाम शरणं शीघ्रं भ्रातॄणां च तपस्विनाम्॥४८॥

यह वर तथा बाण उस पुत्र को देकर विधाता ब्रह्मा अत्यन्त हर्षित हो गये। तदनन्तर ब्रह्मा उस पुत्री को देखकर उसे भी वर प्रदानार्थ उद्यत हो गये। तभी कामदेव (पुत्र) ने विचार किया तथा उन बाणास्त्र के परीक्षणार्थ उसे ब्रह्मा पर ही छोड़ा। सिद्ध महायोगी ब्रह्मा कामदेव द्वारा छोड़े मन्त्रपूत तथा दुर्निवार (जिसका निवारण कोई न कर सके), बाण के प्रभाव से चेतना तथा सुध-बुध खो बैठे। क्षणकालोपरान्त ब्रह्मा ने अपने समक्ष उस कन्या (पुत्री) को देखा तथा हतचेतन ब्रह्मा उस कन्या से ही संभोग की कामना करते उसके पीछे दौड़ने लगे। उस सती कन्या ने भय पूर्वक वहां से पलायन कर दिया। इस कन्या ने अपना आपा कामवशात् खो बैठे पिता को जब अपने पीछे दौड़ते देखा, तब वह अपने तपस्वी भाईयों की शरण में चली गई!॥४४-४८॥

तं तां समीपे संस्थाप्य तमूचे पितरं क्रुधा। हितं तथ्यं च वेदोक्तं नीतिसारं परं वचः॥४९॥

12:36 PM

अतीव सुखसंभोगान्मूर्छां सम्प्राप्य राधिका।
कृत्वा वक्षसि गोविन्दं पुलकाञ्चितविग्रहा॥१८॥
दृष्ट्वा तां मूर्छितां कृष्णो घनश्रोणिपयोधराम्।
विलुप्तवेषां कामार्तां नग्नां शिथिलकुन्तलाम्॥१९॥
चेतनां कारयामास कृत्वा वक्षसि तन्द्रिताम्।
वासयामास वसनं राधया मेखलाम्बरम्॥२०॥

इस अत्यन्त सुखमय संभोग से आनन्दित राधा अपनी सुध-बुध खो बैठीं। वे गोविन्द के वक्षस्थल पर लिपट गयीं। तब श्रीकृष्ण देखते हैं कि सघन जांघों वाली तथा स्थूल स्तनों वाली, अस्तव्यस्त वेशभूषा वाली, कामपीड़िता, नग्ना, कामक्रीड़ा के कारण शिथिल हो गयीं। उत्तम केशों की वेणी वाली राधा मूर्च्छिता हैं। तब कृष्ण ने उनको प्रबोधित किया। कृष्ण ने राधा की तन्द्रामयी स्थिति में ही उनको अपने वक्ष से सटाकर वस्त्र तथा मेखला (करधनी) धारण कराया।।१८-२०।।

गोपिकानां भिया गोपा ददुर्वस्त्राणि माधवम्।।८८।।

माधवः स्थापयामास स्कन्धे स्कन्धे तरोस्तथा।

कदम्बवृक्षः शुशुभे वस्त्रेर्नानाविधैरपि।।८९।।

भागते हुये श्रीदामा वहां आ गया जहां अन्य गोप बालक वस्त्रों की गठरी लिये बैठे थे। गोपियां तीव्र वेग से दौड़ती वहां पहुंच गयीं। वे बल पूर्वक उसके पीछे-पीछे वहां आ गईं तथा शीघ्रता से वस्त्रचोर गोप बालकों को घेर लिया। परन्तु गोप बालक भयभीत होकर वहां आये जहां कदम्ब वृक्ष पर कुछ गठरियों के साथ कृष्ण बैठे थे। वहां भी गोपियों ने कृष्ण तथा बालकों को घेर लिया। अब गोप बालकों ने भयभीत होकर वस्त्रों की गठरियां कृष्ण को सौंप दिया। माधव ने भी सभी वस्त्रों को उठाकर वृक्ष की एक-एक शाखाओं पर रख दिया। वह कदम्बतरु भी नाना वर्ण के वस्त्रों से अत्यन्त शोभायमान हो रहा था।।८५-८९।।

वस्त्राणां पुञ्जिकाः सर्वाः स्कन्धेषु विनिधाय च।

वेगेन दुद्रुवुः सर्वाः श्रीदामानं च बालकाः।
वेगेन च प्रधावन्तं बिभ्रतं वस्त्रपुञ्जिकाम्॥८५॥

राधा की यह आज्ञा पाकर वे क्रोध से जल से बाहर निकलीं। उन्होंने हथेली से अपनी-अपनी योनि को ढ़क लिया तथा नग्नावस्था में दौड़ पड़ीं। इन सबकी सहचारिणी हजारों-हजार गोपियां इसी अवस्था में कोप में भरकर आंखें लाल किये प्रधान गोपियों के पीछे दौड़ने लगीं। सभी गोपियां श्रीदामा का पीछा करने लगीं जो वस्त्रों की गठरी उठाये भाग रहा था।।८३-८५।।

जगाम शीघ्रं श्रीदामा यत्र गोपाः सहांशुकाः।
जवेन दुद्रुवुर्गोप्यस्तत्पश्चाद्बलसंयुताः॥८६॥

वस्त्रचोरांश्च गोपांश्च वेष्टयामासुराशु ताः। भिया प्रदुद्रुवुर्बाला यत्र कृष्णः सहांशुकः॥८७॥

श्रीकृष्णसहितान्बालान्वरयामासुराशु च।
गोपिकानां भिया गोपा ददुर्वस्त्राणि माधवम्॥८८॥

माधवः स्थापयामास स्कन्धे स्कन्धे तरोस्तथा।

परस्पृष्टा च वै नारी या स्पृहां कुरुते परम्।
साऽपि दुष्टा परित्याज्या चेत्याह कमलोद्भवः॥११६॥
तस्मान्नारी परैर्यत्नाददृष्टा कृतिभिः कृता।
असूर्यंपश्या या दाराः शुद्धास्ताश्च पतिव्रताः॥११७॥

व्यभिचारिणी स्त्रियां क्षणकालिक सुख की लालसा के वश में होकर, पापिनी होकर परलोक में ऐसी दशा भोगती हैं। अन्य पुरुष द्वारा स्पर्श की गई नारी अथवा परपुरुष की कामना करने वाली नारी, ये दोनों ही दुष्टा एवं त्याज्य हैं। यह ब्रह्मा का कथन है। इसीलिये विद्वानों ने प्रयत्नतः स्त्रियों के लिये यह नियम बनाया है कि अन्य उसे न देख सकें। जो नारी परदे में रहने के कारण सूर्य को भी न देख सके, वही शुद्धा तथा पतिव्रता है॥११५-११७॥

स्वच्छन्दगामिनी या च स्वतन्त्रा सूकरीसमा।

अन्तर्दुष्टा सदा सैव निश्चितं परगामिनी॥११८॥
स्वामिसाध्या च या नारी कुलधर्मभिया स्थिता।
कान्तेन सार्धं सा कान्ता वैकुण्ठं याति निश्चितम्॥११९॥
यात यूयं च पृथिवीं मानुषीं योनिमीप्सिताम्।
कृष्णदर्शनमात्रेण गोलोकं यास्यथ ध्रुवम्॥१२०॥

जो स्वेच्छाचारिणी तथा स्वतन्त्र नारी है, वह तो शूकरी के समान है। परगामिनी नारी अन्दर से (मन से) सदा दुष्टा होती है। जा कुलधर्म से भयभीत होकर पति के वशीभूत रहती है, वह नारी पति सहित वैकुण्ठधाम जाती है। यह निश्चित है। अब तुम सभी धरती पर मनुष्य योनि में जन्म लेकर श्रीकृष्ण के दर्शन मात्र से गोलोक जाओगी।।११७-१२०।।

रूपेण वक्रदृष्ट्या च मूर्च्छां प्रापुश्च मानवाः॥३४॥

हे ब्रह्मन्! उत्सव स्थल पर रम्भा, उर्वशी, मेनका, घृताची, मोहिनी, रति, प्रभावती, विप्रचित्ति, भानुमती, तिलोत्तमा, चन्द्रप्रभा, सुप्रभा, रत्नमाला, मदालसा, रेणुका, प्रभृति स्वर्ग वेश्यायें भी आ गईं। मनुष्य उनके नृत्य-गीत, स्तन-मुख-नितम्बादि को देखकर उनका रूप तथा वक्र (तिरछी) चितवन देखकर मूर्च्छित हो जाते थे॥३२-३४॥

एतस्मिन्नन्तरे शीघ्रमाजगाम हरिः स्वयम्। गोपालबालकैः सार्धं बलेन बलशालिना॥३५॥

दृष्ट्वा तं च जनाः सर्वे संभ्रान्ता हर्षविह्वलाः।
उत्तस्थुराराद्भीताश्च पुलकाङ्कितविग्रहाः॥३६॥

क्रीडास्थानात्समायान्तं शान्तं सुन्दरविग्रहम्। विनोदमुरलीवेणुशृङ्गशब्दसमन्वितम्॥३७॥

तभी वहां गोपबालकों महाबली बलभद्र सहित स्वयं प्रभु श्रीकृष्ण आ गये। उनको दूर से ही आते देखकर सभी उपस्थित लोग हर्ष-विह्वल तथा रोमांचित हो गये। सभी भय पूर्वक हड़बड़ाहट में

...दीक्षितः॥४७॥

अश्वसङ्गोपनं कृत्वा तस्थौ शक्रश्च मन्दिरे। यज्ञाश्वं रुचिरं मत्वा कौतुकेन च सुन्दरी॥४८॥

द्रष्टुं जगाम सा साध्वी चाश्वमेकाकिनी मुदा।
शक्रोऽश्वनिकटे भूत्वा धर्षयामास तां सतीम्॥४९॥

राजा जन्मेजय ने स्थान-स्थान पर तथा निर्जन में अपनी इस रानी के साथ रमण किया। एक बार राजा जन्मेजय अश्वमेध यज्ञ में दीक्षित थे। इन्द्र यज्ञ के अश्व को छिपाकर राजभवन में स्वयं गोपनीय रूप से रुक गये। रानी उस यज्ञीय अश्व को उत्तम जानकर कौतुक के कारण देखने गयी। जैसे ही वह अश्व को देखने लगीं, तभी इन्द्र ने सती रानी से बलात् संभोग किया।।४७-४९।।

तया निवार्यमाणश्च रेमे तत्र तया सह। मूर्च्छामवाप शक्रश्च बुबुधे न दिवानिशम्॥५०॥

सा च संभोगमात्रेण देहं तत्याज योगतः।
नृपस्य लज्जया भीत्या शक्रः स्वर्गे जगाम ह॥५१॥

रानी ने इन्द्र को बहुत रोका, तथापि इन्द्र ने अपनी कामना पूर्ण किया तथा वे काम से मूर्च्छित हो जाने से वे दिन-रात का भेद तक भूल गये। तब रानी ने इस बलात्कार से क्षुब्ध होकर योग द्वारा देह त्याग दिया। इन्द्र भी राजा के भय से लज्जित होकर स्वर्ग भाग गये।।५०-५१।।

ऐसे पाप के लिये १०० गुना प्रायश्चित्त कहा है।।१९-२२।।

वधे विशिष्टजन्तूनां पश्वादीनां च कामतः। ततः शतगुणं पापं निश्चितं मनुरब्रवीत्॥२३॥

नराणां म्लेच्छजातीनां वधे शतगुणं ततः।
म्लेच्छानां च शतानां च यत्पापं लभते वधे॥२४॥
सच्छूद्रैकस्य च वधे तत्पापं लभते पुमान्॥२५॥

सच्छूद्राणां शतानां च यत्पापं लभते वधे। तत्पापं लभते नूनं गोवधैकेन निश्चितम्॥२६॥

मनु कहते हैं कि इच्छानुसार विशेष जन्तु, पशु प्रभृति का वध करने पर तो अहिंसक जन्तु वध की तुलना में उससे भी १०० गुना अधिक पाप लगता है। सामान्य म्लेच्छ प्रभृति का वध करने पर इससे भी १०० गुना पाप लगता है। जब मानव १०० म्लेच्छों का वध करता है, वही पाप सद्वंशोत्पन्न एक शूद्र वध पर भी होता है। जब मनुष्य सद्वंशोत्पन्न १०० शूद्रों का वध करता है, उससे जो पाप होता है, वह एक गोवध जनित पाप के समान कहा गया है। यह ब्रह्मा का वचन है।।२३-२६।।

गवां दशगुणं पापं ब्राह्मणस्य वधे भवेत्। विप्रहत्यासमं पापं स्त्रीवधे लभते नरः॥२७॥

ददर्श कश्यपः पुत्रं मृतमुत्तानलोचनम्। कृत्वा वक्षसि तं शोकाद्विललाप भृशं मुहुः॥८॥
हाहाकारं सुराश्चक्रुर्विलेपुर्भयकातराः। अन्धीभूतं जगत्सर्वं बभूव तमसाऽऽवृतम्॥९॥

श्री नारायण देव कहते हैं–हे ब्रह्मन्! नारद! मैं तुमसे प्राचीन इतिहास इस सम्बन्ध में कहता हूं कि इन विघ्नेश्वर को विघ्न कैसे हो गया? सावधानी से श्रवण करो। जब माली तथा सुमाली नामक दो भक्तों का हनन करने को सूर्यदेव उद्यत थे, तब भक्तवत्सल महेश्वर ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर सूर्य पर शूलाघात किया। सूर्यदेव शिवतुल्य अव्यर्थ जाने वाले शूल से आहत होकर चेतना रहित हो गये। वे अपने रथ से भूतल पर गिर गये! जब सूर्य के पिता कश्यप ने अपने पुत्र को उल्टे नेत्रों वाला तथा मृतवत् देखा, तब वे उनको वक्ष से लगाकर शोकावेग से पुनः-पुनः अतिशय रुदन करने लगे। तब सूर्य के अभाव में समस्त जगत् अन्धकाराच्छन्न होकर अन्धवत् हो गया। सब कुछ तमसाच्छन्न लग रहा था॥५-९॥

राम रामेति रामेति वाक्यमुच्चार्य सा सतीं।
पुरस्ताज्जामदग्न्यस्य भस्मीभूता बभूव सा॥४३॥
भर्तुर्नाम समाकर्ण्य तत्राऽऽजग्मुर्हरीश्वराः।
रथस्थाः श्यामवर्णाश्च सर्वे चारुचतुर्भुजाः॥४४॥
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणो वनमालिनः। किरीटिनः कुण्डलिनः पीतकौशेयवाससः॥४५॥

यह कह कर रेणुका ने परशुराम को वक्ष से अलग किया तथा पति को क्रोड़ में लेकर प्रभुस्मरण करते वे पति को देखते चिता पर लेट गयीं। तदनन्तर परशुराम ने भ्राताओं सहित चिताग्नि प्रदान किया। वे भाईयों तथा जमदग्नि के शिष्यों के साथ विलाप करने लगे। उधर रेणुका भी हे राम! हे राम! कहती परशुराम के समक्ष भस्मीभूत हो गयीं। तदनन्तर प्रभु का नाम सुन कर वहां विष्णुदूत पहुंच गये। वे सभी रथारूढ़, श्यामवर्ण, चतुर्भुज, शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी, वनमाला पहने हुए, किरीट-कुण्डल तथा पीत वस्त्र से शोभित हो रहे थे।।४१-४५।।

रथे कृत्वा रेणकां तां गत्वा ते ब्रह्मणः पदम्।

एवं त्रिःसप्तकृत्वश्च क्रमेण च वसुंधराम्।
रामश्चकार निर्भूपां लीलया च शिवं स्मरन्॥७३॥

यह कह कर कार्त्तवीर्य ने मुस्कराते हुए परशुराम को प्रणाम किया तथा अश्वारूढ़ होकर धनुष-बाण हाथ में उठाया। तत्पश्चात् परशुराम ने ब्रह्मास्त्र से राजा की सेना का वध कर दिया। उन्होंने शिव का स्मरण करके पाशुपतास्त्र छोड़ कर अनायास राजा का वध कर दिया। इस प्रकार परशुराम ने शिव का स्मरण करके वसुन्धरा को क्रमशः २१ बार क्षत्रिय रहित कर दिया।।७१-७३।।

गर्भस्थं मातुरङ्कस्थं शिशुं वृद्धं च मध्यमम्।
जघान क्षत्रियं रामः प्रतिज्ञापालनाय वै॥७४॥
कार्तवीर्यश्च गोलोकं त्वगमत्कृष्णसंनिधिम्।
जगाम परशुरामश्च स्वालयं श्रीहरिं स्मरन्॥७५॥

राम ने गर्भस्थ शिशुओं, माता की क्रोड़ में स्थित शिशुओं, वृद्ध एवं युवा क्षत्रियों का वध किया। यह उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा के रक्षणार्थ किया था। उधर मृत्यु के अनन्तर कार्त्तवीर्य कृष्ण के पास गोलोक में आ गये। परशुराम भी श्रीहरि का स्मरण करते अपने गृह में लौट आये।।७४-७५।।

क्षमस्वाऽऽगच्छ भगवञ्छुद्धं कुरु नृपालयम्॥१५॥

ऋषि क्रतु कहते हैं–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य किंवा शूद्र में से जो भी ब्राह्मण का अपमान करता है, वह दीक्षाहीन हो जाता है। वह धनहीन, पुत्रहीन, भार्याहीन, निश्चित रूप से हो जाता है। हे प्रभो! राजा को क्षमा करके नृप का गृह वहां पधार कर शुद्ध करिये।।१४-१५।।

अङ्गिरा उवाच

ज्ञानवान्ब्राह्मणो भूत्वा ब्राह्मणं योऽवमन्यते। वृषवाहो भवेत्सोऽपि भारते सप्तजन्मसु॥१६॥

ऋषि अंगीरा कहते हैं–यदि ब्राह्मण ज्ञानी होने पर भी किसी ब्राह्मण का अपमान करता है, वह सात जन्मों तक बैल को बैलगाड़ी में जोत कर अथवा उस बैल के माध्यम से आजीविका चलाता है।।१६।।

दुर्वासा मुनि कहते हैं–गुरु, ब्राह्मण किंवा देवमूर्त्ति देख कर जो नतमस्तक नहीं होता, वह अपने महापातक के कारण पृथिवी पर शूकर योनि में जन्म लेता है। उसे झूठी गवाही तथा विश्वासघात वाला घोर पातक लगता है। पृथिवी पर उसे शूकर योनि मिलती है। यह निश्चित है। आप हम सबका दोष क्षमा करके राजगृह में आतिथ्य स्वीकार करें!॥२१-२२॥

राजोवाच

छलेन कथितो धर्मो युष्माभिर्मुनिपुङ्गवैः।
सर्वं कृत्वा च विस्पष्टं मां मूढं बोधयन्त्वहो॥२३॥
स्त्रीघ्नगोघ्नकृतघ्नानां गुरुस्त्रीगामिनां तथा।
ब्रह्मघ्नानां च को दोषो ब्रूत मां योगिनां वराः॥२४॥

राजा कहता है–हे मुनिवरगण! आप सबने छल पूर्वक ही सही धर्ममार्ग दिखलाया है। मैं अति अज्ञानी हूं। अतः स्त्रीहत्या, गोहत्या, कृतघ्नता, गुरुपत्नी गामी तथा ब्रह्महत्यारे को जो पातक लगता है,

सहस्रवर्षं सुप्रीता दुर्गा मायातिदानतः। माहिषाच्छतवर्षं च दशवर्षं च च्छागलात्॥९३॥
वर्षं मेषेण कूष्माण्डैः पक्षिभिर्हरिणैस्तथा। दशवर्षं कृष्णसारैः सहस्राब्दं च गण्डकैः॥९४॥
कृत्रिमैः पिष्टनिर्माणैः षण्मासं पशुभिस्तथा। मासं [1]सुपक्वादिफलैरक्षतैरिति नारद॥९५॥

हे मुनिसत्तम! तदनन्तर मेरे द्वारा कहा बलिविधान श्रवण करो। खरीदा मनुष्य, महिष, बकरा, भेड़ आदि की शुभ बलि देकर (देवी को) उनको अर्पित करे (मनुष्य बलि वर्त्तमान कानून से अपराध तथा वर्जित है, मूल में होने के कारण उसका उल्लेख कर दिया। पाठक इसे त्याज्य समझें)। क्रीत मनुष्य की बलि से १००० वर्ष, महिष बलिदान से १०० वर्ष, बकरे के बलिदान से १० वर्ष, भेड़ के बलिदान से एक वर्ष, कोहड़ा-पक्षी-हिरण के बलिदान से एक वर्ष, कृष्णसार मृग बलिदान से १० वर्ष, गैण्डे के बलिदान से १००० वर्ष, आटे के बने कृत्रिम पशु के बलिदान से ६ मास, उत्तम पक्व फल की बलि से १ मास तक देवी दुर्गा प्रसन्न रहती हैं। (यहां पाठक यह स्मरण रखें कि मनुष्य बलि, मृग बलि, कृष्णसार मृग बलि, हिरण बलि तथा गैण्डा बलि कानूनन पूर्णतः वर्जित है)॥९२-९५॥

युवकं व्याधिहीनं च सशृङ्गं लक्षणान्वितम्। विशुद्धमविकाराङ्गं सुवर्णं पुष्टमेव च॥९६॥
शिशुना बलिना दातुर्हन्ति पुत्रं च चण्डिका।

12:54 AM

पुनः स्रष्टुं द्विजः शक्तो न तेजस्वी द्विजात्परः॥४८॥

[1]ब्रह्मणो वंशसंभूतः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा।

श्रीकृष्णं भावयेन्नित्यं ब्रह्मज्योति सनातनम्॥४९॥

यदि ब्राह्मण क्षणमात्र भी क्रुद्ध हो जाये तब जगत् ही भस्म हो सकता है, तथापि ब्राह्मण पुनः जगत् सृष्टि कर सकते हैं। उनसे बढ़ कर तेजस्वी कोई नहीं है। अतः ब्राह्मण जो ब्रह्मकुल में उत्पन्न तथा ब्रह्मतेज से प्रज्वलन्त है, वह ब्रह्मज्योति सनातन कृष्ण की सदा भावना करते रहते हैं।।४८-४९।।

सूर्यस्य वचनं श्रुत्वा द्विजस्तुष्टो बभूव ह।

सूर्यो जगाम स्वस्थानं गृहीत्वा ब्राह्मणाशिषम्॥५०॥

तत्याज मनसां विप्रः प्रतिज्ञापालनाय च। रुदतीं शोकयुक्तां च हृदयेन विदूयता॥५१॥

सूर्य का वचन सुन कर ब्राह्मण जरत्कारु सन्तुष्ट हो गये। तदनन्तर सूर्यदेव इन ब्राह्मण का

---

१. क. ब्राह्मणो ब्रह्मणो वंशः प्र०।

कामातुरां सस्मितां तां ददर्श रसिकेश्वरः।
दृष्ट्वा कान्तां जगत्कान्तो बभूव रमणोत्सुकः॥३६॥

उनके कण्ठ में ग्रीष्मकालीन सूर्य की कान्ति झलकाती रत्नमाला थी। गंगाजल की धारा जैसी स्वच्छ मुक्ताहार से भगवती शोभायमान थीं। भगवती के स्तनद्वय परस्परतः सटे, गोलाकार, सुमेरु पर्वत जैसे उन्नत, कठोर, सुन्दर प्रतीत होने वाले थे। उस पर कस्तूरी पत्र की चित्रकारी बनी थी। वे मंगलमय, मंगल प्रदान योग्य प्रतीत हो रहे थे। ये देवी अपने नितम्ब एवं श्रोणी की पृथुलता के भार के कारण श्रान्त थीं। ये देवी नवयौवन सम्पन्ना, सुन्दरी, कामातुरा, मन्द मुस्कान वाली थीं। रसिकेश्वर जगत्कान्त श्रीकृष्ण इनको देख कर इनके साथ रमणार्थ उत्सुक हो उठे!॥३३-३६॥

दृष्ट्वा रिरंसुं कान्तं च सा दधार हरेः पुरः। तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्महेश्वरि॥३७॥
राधा भजति तं कृष्णं स च तां च परस्परम्।
उभयोः सर्वसाम्यं च सदा सन्तो वदन्ति च॥३८॥
भवनं [1]धावनं रासे स्मरत्यालिङ्गनं जपन्। तेन जल्पति संकेतं तत्र राधां स ईश्वरः॥३९॥

हे पार्वती! हरिप्रिया उस रमणी ने अपने कान्त कृष्ण को जब कामातुर देखा, तब वे उनकी

पवित्र करें।।१२-१३।।

क्रतुरुवाच

ब्राह्मणः क्षत्रियो वाऽपि वैश्यो वा शूद्र एव च।
दीक्षाहीनो भवेत्सोऽपि ब्राह्मणं योऽवमन्यते॥१४॥
धनहीनः पुत्रहीनो भार्याहीनो भवेद्ध्रुवम्।
क्षमस्वाऽऽगच्छ भगवञ्छुद्धं कुरु नृपालयम्॥१५॥

ऋषि क्रतु कहते हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य किंवा शूद्र में से जो भी ब्राह्मण का अपमान करता है, वह दीक्षाहीन हो जाता है। वह धनहीन, पुत्रहीन, भार्याहीन, निश्चित रूप से हो जाता है। हे प्रभो! राजा को क्षमा करके नृप का गृह वहां पधार कर शुद्ध करिये।।१४-१५।।

अङ्गिरा उवाच

ज्ञानवान्ब्राह्मणो भूत्वा ब्राह्मणं योऽवमन्यते। वृषवाहो भवेत्सोऽपि भारते सप्तजन्मसु॥१६॥

10:48 AM

Manu Smriti - Pan...

दास्यं तु कारयँल्लोभाद्ब्राह्मणः संस्कृतान्द्विजान् ।
अनिच्छतः प्राभवत्याद्राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट् ॥ ४१२ ॥

जो ब्राह्मण अपनी प्रभुतासे वा लोभसे यज्ञोपवीतयुक्त द्विजातियोंसे उनकी इच्छाविना दासका कार्य करावे तो राजा उसपर छः सौ पण दंड करै ॥४१२॥

शूद्रं तु कारयेद्दास्यं क्रीतमक्रीतमेव वा ।
दास्यायैव हि सृष्टोऽसौ ब्राह्मणस्य स्वयंभुवा ॥ ४१३ ॥

परंतु मोल लिये हुए वा न मोल लिये हुए शूद्रसे दासका कार्य करावे क्योंकि ब्रह्माने ब्राह्मणके दासकर्मके लियेही इस शूद्रको उत्पन्न किया है ॥ ४१३ ॥

न स्वामिना निसृष्टोऽपि शूद्रो दास्याद्विमुच्यते ।
निसर्गजं हि तत्तस्य कस्तस्मात्तदपोहति ॥ ४१४ ॥

स्वामीसे त्यागा हुआभी शूद्र दासपनेसे नहीं छुटैगा, क्योंकि दासपना उसका स्वाभाविक कार्य है, वह उससे कैसे छूट सक्ता है ॥ ४१४ ॥

ध्वजाहृतो भक्तदासो गृहजः क्रीतदत्रिमौ ।
पैत्रिको दण्डदासश्च सप्तैते दासयोनयः ॥ ४१५ ॥

युद्ध जीतनेसे मिला, भोजनके लोभसे आया, दासीका पुत्र, मोल खरीदा, दूसरेका दिया हुआ, पिताके आगेसे चला आया, दंड ऋण आदि चुकानेके लिये दास हुआ ये सात प्रकारके दास होते हैं ॥ ४१५ ॥

भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाधनाः स्मृताः ।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् ॥ ४१६ ॥

भार्या, पुत्र और दास ये तीनों शास्त्रमें निर्धन कहे गये हैं; ये जो कुछ पैदा करैं उस धनपर उनके स्वामीकाही अधिकार होता है ॥ ४१६ ॥

विस्रब्धं ब्राह्मणः शूद्राद्द्रव्योपादानमाचरेत् ।
नहि तस्यास्तिकिंचित्स्वं भर्तृहार्यधनो हि सः ॥ ४१७ ॥

ब्राह्मण निस्सन्देह शूद्रका धन ले सक्ता है, क्योंकि उसका निजधन कुछ भी नहीं है, सब धन उसके स्वामीका है ॥ ४१७ ॥

वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत् ।
तौ हि च्युतौ स्वकर्मभ्यः क्षोभयेतामिदं जगत् ॥ ४१८ ॥

राजाको चाहिये कि वैश्योंको और शूद्रोंको यत्नपूर्वक अपने २ का... लगा रक्खै; क्योंकि इनके अपने २ कार्य्योंमें न लगनेसे ये इस जगत... के मदसे) बड़ा द्वंद मचाते हैं ॥ ४१८ ॥

अहन्यहन्यवेक्षेत कर्मान्तान्वाहनानि च ।
आयव्ययौ च नियतावाकरान्कोशमेव च ॥ ४१९ ॥

राजा प्रतिदिन आरंभ किये कार्य्योंकी समाप्ति, वाहन, आय, व्यय, खान और खजानों को देखता रहै ॥ ४१९ ॥

4:33 PM

स वसेत्काककुण्डे च काकैश्च क्षुण्णलोचनः।
ततः स्वलोममानाब्दं ततश्चान्धस्त्रिजन्मनि॥८४॥

जो मनुष्य कामपूर्ण भावना से भारत में नारीगण के (परस्त्री का) वक्ष, कमर, स्तन, मुख आदि अंगों को देखता है, उस व्यक्ति के स्वयं की देह में जितने रोम हैं, वह उतने वर्ष तक काकतुण्ड नरक में रहेगा, जहां कौये उसके नेत्र उखाड़ कर खायेंगे। तत्पश्चात् वह तीन जन्म तक अंधा रहेगा।।८३-८४।।

स्वर्णस्तेयी च यो मूढो भारते सुरविप्रयोः।
स च सञ्चानकुण्डं च स्वलोमाब्दं वसेद्ध्रुवम्॥८५॥
ताडितो यमदूतेन सञ्चानैः क्षुण्णलोचनः।
ततो भोजी च तत्रैव ततश्चान्धस्त्रिजन्मनि॥८६॥
सप्तजन्मदरिद्रश्च महाक्रूरश्च पातकी। भारते स्वर्णकारश्च स च स्वर्णवणिक्तत॥८७॥

अवीरान्नं च या भुङ्क्ते योनिजीवी च वै द्विजः।
यस्त्रिसंध्याविहीनश्च स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम्॥१७८॥

जो ब्राह्मण शूद्रा के पति ब्राह्मण से यज्ञ कराता है, उसका अन्न खाता है, उसे तो सैकड़ों गोहत्या का पाप लगता है। इसमें संशय न करे। अग्नि की ओर पैर करने वाला, गौ पर पैर से प्रहार करने वाला, स्नानोपरान्त बिना पैर धोये गृह में प्रवेश करने वाला भी गोहत्या पाप का भागी होता है। जो तैलाक्त पैर रहते भोजन करता है, सूर्योदय काल में दो बार आहार ग्रहण करता है, उसे निश्चित रूप से गोहत्या पातक लगेगा। जो अवीरा नारी का (पति-पुत्र रहित) अन्न खाता है, जो ब्राह्मण नारीगण से व्यभिचार कराकर जीविका चलाता है, त्रैकालिक सन्ध्योपासना नहीं करता, वह भी गोहत्या पातक का भागी होगा।।१७५-१७८।।

पितॄंश्च पर्वकाले च तिथिकाले च देवताम्।
न सेवतेऽतिथिं यो हि गोहत्यां स लभेद्ध्रुवम्॥१७९॥
स्वभर्तरि च कृष्णे च भेदबुद्धिं करोति या।
कटूक्त्या ताडयेत्कान्तं सा गोहत्यां लभेद्ध्रुवम्॥१८०॥

पूर्वकाल में स्वाहा भी राधिका की सखी थीं। उन्होंने पूर्वकाल में रति हेतु कृष्ण से स्वयं कहा था। तभी उसका नाम स्वाहा हो गया। वे वसन्त ऋतु में मालती मण्डित रासमण्डल में श्रीकृष्ण के साथ रमण काल में रति रस से प्रमत्त हो गई थीं। रासेश्वरी राधा ने स्वाहा को जब कृष्ण के आलिंगन में देखा, तब उन्होंने स्वाहा को शाप दे दिया। उस शाप के कारण स्वाहा को गोलोक से भूमण्डल पर आना पड़ा। वह श्रीकृष्ण का आलिंगन होने के पुण्यफल से अग्निदेव की भार्या हो गयीं।।३८-४०।।

पवित्ररूपा परमा देवाद्यैर्वन्दिता नृभिः। यन्नामोच्चारणेनैव नरो मुच्येत पातकात्॥४१॥

या सुशीलाभिधा गोपी पुराऽऽसीद्राधिकासखी।
उवास दक्षिणे क्रोडे कृष्णास्य च[1] महात्मनः॥४२॥
प्रध्वस्ता सा च तच्छापाद्गोलोकाद्विश्वमागता।
कृष्णालिङ्गनपुण्येन सा बभूव च दक्षिणा॥४३॥

जो पवित्ररूपा परमा तथा देवता एवं मनुष्यगण से वन्दित थीं, जिनके नामोच्चारण से मनुष्य पाप रहित हो जाता है, वे पूर्वकाल में सुशीला नामक गोपी तथा राधा की सखी थीं। वे कृष्ण के दाहिनी गोद में बैठी थीं। यह देख राधा ने उनको शाप दिया तथा उनको गोलोक से धरती पर आना पड़ा।

ब्राह्मणाधम शूद्र के जूठे पात्र में भोजन करता है, वह तो स्वयं नीचभोजी है।।३२-३४।।

शूद्रो वा यदि गृह्णाति ब्राह्मणीं ज्ञानदुर्बलः। स पच्यते कालसूत्रे यावदिन्द्राश्चतुर्दश।।३५।।

अष्टादशेन्द्रावच्छिन्नं कालं च कालसूत्रके।
ब्राह्मणी पच्यते तत्र भक्षिता क्रिमिभिर्ध्रुवम्।।३६।।

यदि शूद्र पुरुष अज्ञान से अंधा होकर ब्राह्मणी को पत्नी बनाता है अथवा उससे समागम करता है, तब वह अधम शूद्र १४ इन्द्रों के स्थितिकाल पर्यन्त कालसूत्र नरक में यन्त्रणा का भोग करेगा। वह ब्राह्मणी भी १८ इन्द्रों के स्थितिकाल तक कालसूत्र नरक में आक्रान्त होकर वहां के क्रिमि-कीटों द्वारा खाई जायेगी। अन्त में उसे चाण्डालिनी होकर जन्म लेना होगा। यह निश्चित है।।३५-३६।।

ततश्चाण्डालयोनौ च लब्ध्वा जन्म च ब्राह्मणी।
शूद्रश्च कुष्ठी भवति ज्ञातिभिः परिवर्जितः।।३७।।

वह ब्राह्मणी चाण्डालिनी होकर जन्म लेगी, तथापि वह शूद्र भी कोढ़ी होगा तथा अपने बन्धु-बान्धवों द्वारा त्याग दिया जायेगा।।३७।।

अयोध्याके परम उत्तम राज्यको पाकर धर्मात्मा श्रीरामने सुहृदों, कुटुम्बीजनों तथा भाइ-बन्धुओंके साथ अनेक प्रकारके यज्ञ किये॥ ९७ ॥

श्रीरामके राज्य-शासनकालमें कभी विधवाओंका विलाप नहीं सुनायी पड़ता था। सर्प आदि दुष्ट जन्तुओंका भय नहीं था और रोगोंकी भी आशङ्का नहीं थी॥ ९८ ॥

सम्पूर्ण जगत्में कहीं चोरों या लुटेरोंका नाम भी नहीं सुना जाता था। कोइ भी मनुष्य अनर्थकारी कार्योंमें हाथ नहीं डालता था और बूढ़ोंको बालकोंके अन्त्येष्टि-संस्कार नहीं करने पड़ते थे॥ ९९ ॥

सब लोग सदा प्रसन्न ही रहते थे। सभी धर्मपरायण थे और श्रीरामपर ही बारंबार दृष्टि रखते हुए वे कभी एक-दूसरेको कष्ट नहीं पहुँचाते थे॥ १०० ॥

श्रीरामके राज्य-शासन करते समय लोग सहस्रों वर्षोंतक जीवित रहते थे, सहस्रों पुत्रोंके जनक होते थे और उन्हें किसी प्रकारका रोग या शोक नहीं होता था॥ १०१ ॥

श्रीरामके राज्य-शासनकालमें प्रजावर्गके भीतर केवल राम, राम, रामकी ही चर्चा होती थी। सारा जगत् श्रीराममय हो रहा था॥ १०२ ॥

श्रीरामके राज्यमें वृक्षोंकी जड़ें सदा मजबूत रहती थीं। वे वृक्ष सदा फूलों और फलोंसे लदे रहते थे। मेघ प्रजाकी इच्छा और आवश्यकताके अनुसार ही वर्षा करते थे। वायु मन्द गतिसे चलती थी, जिससे उसका स्पर्श सुखद जान पड़ता था॥ १०३ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णोंके लोग लोभरहित होते थे। सबको अपने ही वर्णाश्रमोचित कर्मोंसे संतोष था और सभी उन्हींके पालनमें लगे रहते थे॥ १०४ ॥

श्रीरामके शासनकालमें सारी प्रजा धर्ममें तत्पर रहती थी। झूठ नहीं बोलती थी। सब लोग उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न थे और सबने धर्मका आश्रय ले रखा था॥ १०५ ॥

भाइयोंसहित श्रीमान् रामने ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य किया था॥ १०६ ॥

यह ऋषिप्रोक्त आदिकाव्य रामायण है, जिसे पूर्वकालमें महर्षि वाल्मीकिने बनाया था। यह धर्म, यश तथा आयुकी वृद्धि करनेवाला एवं राजाओंको विजय देनेवाला है॥ १०७ ॥

संसारमें जो मानव सदा इसका श्रवण करता है, वह पापसे मुक्त हो जाता है। श्रीरामके राज्याभिषेकके प्रसंगको सुनकर मनुष्य इस जगत्में यदि पुत्रका इच्छुक हो तो पुत्र और धनका

त्रैलोक्य में ऐसा क्या है, जो ब्राह्मण की कृपा से सिद्ध न हो? जो ब्राह्मण के चरणजल का पान करता है, जब तक धरती स्थित है, उसके पितृगण कमलपत्र में (पद्माकृति स्वर्णपात्र में) रखा जल पीते हैं॥२४-२७॥

विप्रपादोदकं पुण्यं भक्तियुक्तश्च यः पिबेत्।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः॥२८॥
महारोगी यदि पिबेद्विप्रपादोदकं द्विज। मुच्यते सर्वरोगाच्च मासमेकं तु भक्तितः॥२९॥
अविद्यो वा सविद्यो वा संध्यापूतो हि यो द्विजः।
स एव विष्णुसदृशो न हरौ विमुखो यदि॥३०॥

जिसने भक्तिभाव के साथ ब्राह्मण का चरणोदक पान किया है, उसने सभी यज्ञ में दीक्षा का तथा सर्वतीर्थ स्नान का फल पा लिया। हे विप्रवर! यदि कोई महारोगी भी एक मास पर्यन्त भक्तिभाव से ब्राह्मण का चरण जल पीता है, तब सभी रोगों से मुक्त होगा, इसमें तनिक संदेह नहीं है। हे महर्षि! ब्राह्मण की महिमा इससे अधिक क्या कही जाये? ब्राह्मण विद्वान् हो अथवा मूर्ख ही क्यों न हो, तथापि

वरुणानीति विख्याता वरुणस्य प्रिया सती॥२०॥
बभूव पवनः श्रीमान्विभोर्निःश्वासवायुना।
स च प्राणश्च सर्वेषां निःश्वासस्तत्कलोद्भवः॥२१॥

जलपति वरुण के वाम पार्श्व से वारुणी नाम से प्रसिद्ध एक कन्या आविर्भूत हो गई, जो वरुणदेव की प्रियतमा पत्नी वरुणा कही गयीं। ये वरुण की प्रिया साध्वी पत्नी हैं। उन परमेश्वर के निःश्वास से पवन देवता उत्पन्न हो गये। वे सभी प्राणीगण के प्राण रूप से अवस्थित हैं। उनके अंश से ही समस्त जीवगण का निःश्वास उत्पन्न होता है। यह श्वास-प्रश्वास उनकी ही अंशकला है।।२०-२१।।

तस्य वायोर्वामपार्श्वात्कन्या चैका बभूव ह।
वायोः पत्नी च सा देवी वायवी परिकीर्तिता॥२२॥
कृष्णस्य कामबाणेन रेतःपातो बभूव ह। जले तद्रेचनं[1] चक्रे लज्जया सुरसंसदि॥२३॥

इन वायुदेव के वाम पार्श्व से एक कन्या उत्पन्न हो गई, जो वायुदेव की पत्नी तथा वायवी नाम से प्रसिद्ध है। हे ब्रह्मन्! यह आश्चर्य की बात है कि कभी भी व्यर्थ न होने वाले कामदेव के बाण के प्रभाव से परमात्मा का वीर्यपात हो गया था। परन्तु परमात्मा कृष्ण ने लज्जावश तथा देवगण के समक्ष यह प्रकट न हो सके इसलिये उन्होंने स्वयं इस वीर्य को जल में छोड़ा। उसका रेचन जल में कृष्ण द्वारा किया गया।।२२-२३।।

जगाम तां गृहीत्वा च मलयं चन्दनालयम्॥८५॥

रम्यायां मलयद्रोण्यां पुष्पतल्पे मनोरमे। पुष्पचन्दनवातेन संततं सुरभीकृते॥८६॥
चकार सुखसंभोगं तया स विजने वने। पूर्णं द्वादशवर्षं च बुबुधे न दिवानिशम्॥८७॥

वायु की आकृतिधारी विश्वकर्मा घृताची का यह वचन सुन कर उनको वहां से चन्दन के वनों से युक्त मलयगिरि ले गये। वहां विश्वकर्मा ने मलय पर्वत के समतल प्रदेश में चन्दन की सुरभित वायु वाले मनोहर स्थल में पुष्प तथा चन्दन पत्तों से निर्मित उत्तम शय्या को बिछाया। वे उस निर्जन स्थल में घृताची के साथ सुखमय संभोग में रत हो गये। यह संभोग कार्य ऐसा चला कि १२ वर्ष पर्यन्त इन लोगों को दिन-रात का भी कोई भेद विदित नहीं हो सका।।८५-८७।।

बभूव गर्भः कामिन्याः परिपूर्णः सुदुर्वहः। सा सुषाव च तत्रैव पुत्रान्नव[२] मनोहरान्॥८८॥

---

१. सुखप्रदे इति पाठान्तरम्।

२. नव स्थाने अष्टौ इति बहुषु पुस्तकेषु पाठः। एवमुक्तरत्र। तत्पाठवत्सु च पुस्तकेषु "मालाकारकर्मकारशंखकार कुविन्दकान्। कुंभकारसूत्रकार वर्णचित्रकरांस्तथा।"

सौति कहते हैं—एक समय शान्त प्रकृति बली अश्विनीकुमार ने एक परम सुन्दरी ब्राह्मणी को तीर्थाटन करते देखा, जिससे वे उसके प्रति अत्यन्त कामासक्त हो गये। बारम्बार उस ब्राह्मणी द्वारा रोके जाने पर भी वे उसे बलात् एक पुष्पोद्यान में ले गये तथा वहां समागम करके ब्राह्मणी को गर्भवती कर दिया। तत्पश्चात् लोकलज्जा के भय से जैसे ही ब्राह्मणी ने उस गर्भ का त्याग किया, वैसे ही उस रम्य

पुष्पोद्यान में तप्त स्वर्ण कान्ति वाला एक पुत्र उत्पन्न हो गया। तदनन्तर वह ब्राह्मणी पुत्रस्नेह के कारण उस कुमार को गोद में लेकर लज्जावनत सी अपने पति के पास गयी तथा मार्ग में घटित उस घटना

12:26 PM

तत्क्षणात्क्षयमाप्नोति भगवद्भक्तदर्शनात् ॥३१॥

वैष्णवाङ्घ्रिजलं यस्तु समस्तपातकापहम्। वहेत्स्वशिरसा भक्तया गङ्गास्नानेन तस्यकिम्॥३२॥

मुहूर्त्तमपि यः कुर्यात्सङ्गं भागवतैः सह। स मुच्यते सर्वपापैर्ब्रह्महत्यामुखैरपि॥३३॥

धर्मकर्माणि विप्रेन्द्र ! क्रियन्ते यानि कानि च ।

भगवद्भक्तपुरतस्तानि स्युरक्षयाणि च ॥३४॥

की अपने पुत्रों दक्ष आदि की तथा मुनियों की सृष्टि की । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र फिर उन्होंने तथा दूसरे अन्यजों की तथा उनके रहने आदि की ब्रह्माजी ने व्यवस्था की ॥२३॥ जो हिमालय से दक्षिण और विन्ध्यादि से उत्तर में वर्ष है उसे भारत वर्ष कहते हैं । भारतवर्ष को ही शुभ तथा अशुभ फल प्रदान करने वाला कहा गया है ॥२४॥ भारत वर्ष में जन्म लेकर जो श्रेष्ठ मनुष्य धार्मिक कर्म करते हैं वे सबके सब भगवान् केशव के समान हैं ॥२५॥ इस कर्म भूमि में किए गये शुभ तथा अशुभ कर्मों का फल वे श्रेष्ठ भोग भूमियों में प्राप्त करते हैं ॥२६॥ कर्म भूमि में आकर जो धार्मिक कार्यों में लगा रहता है; उसके समान त्रैलोक्य में कोई भी नहीं है ॥२७॥ उसका जन्म सफल हो जाता है और जीवन सुवन हो जाता है । भगवान् नारायण की सेवा में जिसकी बुद्धि लगी रहती है ॥२८॥ करोड़ों जन्मों में अर्जित पुण्यों के

मुक्ति और उसके पूर्वजन्म की कथा पूर्वक हरिशर्मा नामक ब्राह्मण के वृत्तान्त का वर्णन

व्यासजी ने कहा— ब्रह्माजी की वाणी सुनकर द्विजश्रेष्ठ हरिशर्मा पुन: उनको प्रणाम करके भक्ति पूर्वक कहे ।।१।। **हरिशर्मा ने कहा—** हे प्रभो ! आपने जिन अनेक प्रदेय दानों का वर्णन किया है उन सबों को किसको देना चाहिए यह मुझे आप बतलायें ।।२।। **ब्रह्माजी ने कहा—** सभी वर्णों के गुरु ब्राह्मण होते हैं । उन सबों को ही भक्ति एवं श्रद्धा के साथ दानों को देना चाहिए ।।३।। ब्राह्मण सभी देवताओं के आश्रय हैं, वे पृथिवी पर प्रत्यक्ष देवता हैं । वे दान करने वाले को इस दुस्तर संसार सागर से पार कर देते हैं ।।४।। **ब्राह्मण ने कहा—** हे सुरोत्तम ! आपने कहा है कि ब्राह्मण सभी वर्णों का गुरु होता है । उन सबों में कौन श्रेष्ठ ब्राह्मण है जिसको दान दिया जाय ।।५।। **ब्रह्माजी ने कहा—** सभी ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं और सदा पूजनीय हैं । चोरी आदि के दोष से रहित जो ब्राह्मण हैं वे उत्तम ब्राह्मण हैं ।।६।। जो हमलोगों से द्वेष करते हैं किन्तु दूसरों से कभी भी द्वेष नहीं करते हैं । आचार हीन भी ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए तथा जितेन्द्रिय भी शूद्र पूजनीय नहीं हैं ।।७।। जो ब्राह्मण अभक्ष्य भक्षण करने वाले हैं वे भी पूजनीय हैं । गौओं को लोकों की माता कहा गया है अन्त में विशेष रूप से ब्राह्मणों का माहात्म्य

वशात् उनसे द्वेष करते हैं तो उनसे श्रीहरि सदा रुष्ट रहते हैं याचना करने वाले ब्राह्मणों को जो क्रोध पूर्वक देखता है ॥१९॥ उसके नेत्रों में यमराज सूई डाल देते हैं। मूर्ख लोग जिस मुख से ब्राह्मणों की निन्दा करते हैं ॥२०॥ उस मुख में यमराज प्रतप्त लोहे के दण्डे को डाल देते हैं। जिस घर में ब्राह्मण भोजन करते हैं, उस घर में स्वयं भगवान् केशव निवास करते हैं ॥२१॥ सभी देवता तथा पितृगण और देवर्षि भी निवास करते हैं। जो ज्ञानी मनुष्य ब्राह्मण के चरणोदक का कणमात्र भी अपने शिर पर धारण करता है ॥२२॥ उसके देह में विद्यमान सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं। करोड़ों ब्रह्मण्डों में जितने भी तीर्थ हैं॥२३॥ वे सभी तीर्थ ब्राह्मण के दाहिने पैर में निवास करते हैं। जो नित्य ही ब्राह्मण के चरणोदक से अपने शिर को सींचता है ॥२४॥ उसको सभी तीर्थों में स्नान करने और सभी यज्ञों में दीक्षित होने का फल प्राप्त होता है। सभी ब्रह्म हत्या इत्यादि भयङ्कर पाप भी ॥२५॥ ब्राह्मण के चरणोदक धारण से शीघ्र ही विनष्ट हो जाते हैं। अत्यधिक क्लेश देने वाली क्षय आदि व्याधियाँ ॥२६॥ ब्राह्मण के चरणोदक धारण करने से विनष्ट हो जाती है। पितरों के लिए जो ब्राह्मण चरणोदक दिए जाते हैं ॥२७॥ उससे तृप्त होकर पितृगण स्वर्ग में रहते हैं जब तक सूर्य और चन्द्रमा रहते हैं ब्राह्मण के दोनों चरणों को धोकर जो ब्राह्मण की पूजा दुर्वा से करता है ॥२८॥ उस व्यक्ति को देवताओं में श्रेष्ठ तथा जगत् के स्वामी भगवान् [illegible]गु की अर्चना करने का फल प्राप्त होता है। विप्रों के चरण का निर्माल्य जो अपने शिर पर चढ़ाता [illegible] ॥२९॥ मैं यह परमसत्य कहता हूँ कि उसको शाश्वत मुक्ति की प्राप्ति होती है। जो मानवश्रेष्ठ ब्राह्मण

को प्राप्त करके संग्राम में मृत्यु को प्राप्त कर लिए ॥१६६॥ यद्यपि काम और क्रोध संसार में मनुष्यों को नरक प्रदान करने का काम करते हैं, किन्तु काम भावना से श्रीहरि को प्राप्त करके गोपियाँ और दैत्य मुक्त हो गये ॥१६७॥ जो लोग काम, भय या द्वेष से श्रीहरि का भजन करते हैं वे भी वैकुण्ठ में चले जाते हैं तो फिर भक्तियो के द्वारा उनका भजन करने वालों के विषय में क्या कहना है ?॥१६८॥ उनकी वंशी की ध्वनि को सुनकर रात्रि में गोपियाँ, अपनी शय्या से उठकर सभी व्यस्त केशों तथा वस्त्रों वाली॥१६९॥ अपने पतियों तथा पुत्रों को त्यागकर काम के बाणों से पीड़ित होकर जगत् के स्वामी श्रीहरि के पास आयीं॥१७०॥ आकर सभी गोपियाँ श्रीभगवान् को अपनी भुजाओं से आलिङ्गन करके उनके ओष्ठों का पान उसी तरह से किया जिस तरह देवगण अमृत का पान किए ॥१७१॥ उन सबों के साथ गोव्रज में भगवान् क्रीडा किए । और वे सभी स्त्रियाँ भी श्रीकृष्ण भगवान् के साथ रमण कीं ॥१७२॥ इस तरह से वे सभी भगवान् श्रीकृष्ण के साथ प्रतिदिन मनोहर वृन्दावन में तथा यमुना के तट में रमण करती थीं ॥१७३॥

पार्वतीजी ने कहा— संसार में धर्म की रक्षा करने के लिए अवतीर्ण होकर श्रीभगवान् पर स्त्रियों के साथ

वैदिक ब्राह्मण श्वेत मृत्तिका से तिरछा पुण्ड्र आपत्ति में भी कभी धारण न करे ॥१४॥ विप्रों का तिलक ऊर्ध्वपुण्ड्र होता है, क्षत्रियों का पट्टाकार होता है, वैश्यों तथा शूद्रों का तिलक त्रिपुण्ड्र होता है ॥१५॥ ऊर्ध्व पुण्ड तिलक मिट्टी तथा कस्तूरी से करना चाहिए । पट्टाकार तिलक चन्दन से तथा त्रिपुण्ड्र भस्म से धारण करना चाहिए ॥१६॥ ऊर्ध्वपुण्ड्र किसी के लिए निषिद्ध नहीं है क्षत्रिय आदि भी यदि भगवान् विष्णु के भक्त है तो वे भी ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करें ॥१७॥ ब्राह्मणों को पट्टाकार अथवा तिरछा तिलक नहीं करना चाहिए । सबों के स्वामी नारायण से भिन्न किसी की पूजा भी ब्राह्मण को नहीं करना चाहिए ॥१८॥ यदि सद्वंश में उत्पन्न ब्राह्मण भस्मधारी होता है तो हे देवि ! उसको उसी तरह से त्याग देना चाहिए जिस तरह मद्य रहित घड़े को त्याग दिया जाता है ॥१९॥ त्रिपुण्ड्र शूद्र के जैसे लोगों के लिए तथा शूद्रों के लिए होता है, त्रिपुण्ड्रधारी ब्राह्मण पतित हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है ॥२०॥ सभी जीवों का कल्याण करने वाले एकान्ती महाभागों को अन्तराल युक्त श्रीहरि के चरणों की आकृति वाला पुण्ड्र धारण करना चाहिए ॥२१॥ विधि पूर्वक अन्तराल युक्त श्रीहरि के चरणों की आकृति वाला ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिए । जो बीच के छिद्र वाला होता है वही ऊर्ध्वपुण्ड्र श्रीहरि का मन्दिर होता है ॥२२॥ ऊर्ध्वपुण्ड्र को ऋजु, सुन्दर, सुन्दर पार्श्वों वाला तथा मनोहर एवं दण्डाकार एवं बीच में छिद्र से युक्त बनाना चाहिए॥२३॥ हे शुभदर्शने ! इसीलिए ब्राह्मणों तथा स्त्रियों को ऊर्ध्वपुण्ड्र छिद्र से युक्त सुन्दर करना चाहिए ॥२४॥

यदा न कथयामास किञ्चनात ? तदब्रवीत् ॥२६॥

पुत्र ने कहा— हे तात ! आप की यह अबद्ध बात कैसे हो सकती है ?॥१३॥ हे तात ! चन्द्रमा अनसूया के गर्भ से उत्पन्न हैं, बृहस्पति का पुत्र उनके वंश को बढ़ाने वाला कैसे हो सकता है ?॥१४॥ हे तात ! मेरे मन में बहुत बड़ा संशय है । मैं आपका पुत्र हूँ आप मेरे इस सन्देह को दूर करें ॥१५॥
पिता ने कहा— प्राचीन काल में चन्द्रमा ने बृहस्पति की यशस्विनी पत्नी तारा का बल पूर्वक अपहरण कर लिया और बृहस्पति की पत्नी चन्द्रमा के साथ दीर्घकाल तक रमण की ॥१६-१७॥ हे तात ! कुछ समय में वह गर्भवती हो गयी । उसके बाद बृहस्पति ने अपनी पत्नी को चन्द्रमा से माँगा ॥१८॥ मदमत्त तथा बलवान् चन्द्रमा ने उसे नहीं दिया । हे तात ! उसके बाद इन्द्र आदि देवताओं के साथ तैयार होकर बलवान् चन्द्रमा से युद्ध करना प्रारम्भ कर दिए । और चन्द्रमा की सहायता करने के लिए शुक्राचार्य दैत्यों के साथ ॥१९-२०॥ उस युद्ध में आ गये । उस समय तारा के लिए भयङ्कर युद्ध हुआ ॥२१॥ हे तात! उसमें सभी लोगों के साथ उस भयङ्कर युद्ध में देवता और दानव मारे गये ॥२२॥ हे तात ! उसमें किसी का भी न तो विजय हुआ और न तो पराजय हुआ । उसके बाद ब्रह्मा जी उस युद्ध को रोक दिए ॥२३॥ उन्होंने चन्द्रमा को समझाकर तारा को बृहस्पति को दे दिया । बृहस्पति तारा को गर्भवती देखकर क्रुद्ध होकर ब्रह्माजी के सामने तथा देवों और दैत्यों के सामने ही कहे । तुम यह किसका गर्भ धारण की हो

काम्पिल्य में कोई मूर्तिमान कामदेव के समान ब्राह्मण थे । वे हास्य आदि के द्वारा सभी स्त्रियों के चित्त को आकृष्ट कर लेते थे ॥५॥ वे सङ्गीत विद्या में निपुण थे तथा कोयल के समान उनकी ध्वनि थी । एक बार वे हाथ में बीणा धारण करके उससे बारम्बार बजाते हुए हे राजन् ! कोकिल कण्ठ के समान आलाप के द्वारा गाते हुए नगर के प्रत्येक गलियों में घूम रहे थे ॥६-७॥ मूछना तथा तान के साथ उनके गीत की ध्वनि को सुनकर अपने घर के कार्य को त्यागकर नगर की नारियाँ आ गयीं ॥८॥ उनके रूप से मोहित होकर वे काम के वेग को नहीं बर्दास्त कर पा रही थीं । अपने सामने ही उनके गीत को सुनकर उन सबों का वीर्य स्खलित हो गया ॥९॥ जिसने ब्रह्माजी के मन को सरस्वती के प्रति मोहित कर दिया। तथा शिवजी के आधे शरीर को पार्वतीजी को प्रदान कर दिया ॥१०॥ उन दोनों से संसार में कोई भी ज्ञानवान् जितेन्द्रिय नहीं है । जो स्मरण करने मात्र से स्वभाव से ही चञ्चल स्त्रियों को जीतने में समर्थ है॥११॥ वे साध्वी स्त्रियाँ काम के वेग को वर्दास्त करने में समर्थ नहीं हुयीं । हे राजन् ! इसमें कहना ही क्या है ? लोक में काम दुर्जय है ॥१२॥ उसके बाद वे सब वहाँ आयी जहाँ वह गाता था । वह कण्ठ तथा वीणा से गाता हुआ तथा स्वर से मोहित था ॥१३॥ उन स्त्रियों के पति, पुत्र तथा पिता वहाँ आकर उन सबों को डाँटकर अपने घर लाये ॥१४॥ किन्तु वे सब उसको खोजकर उसके सन्निकट गयीं।

अन्यानपि महादेव धर्मान्मे वक्तुमर्हसि। यान्कृत्वा सर्वपापानि प्रक्षाल्य त्रिदशोभवत् ॥१६॥

सुवर्ण, रजत, भूमि तथा वस्त्र दान देना चाहिए ॥३॥ भाव पूर्वक गोदान करना चाहिए । हे सुव्रत ! सभी दानों में कन्या दान श्रेष्ठ है ॥४॥ इस मास में जो मनुष्य विधि पूर्वक ब्राह्मण को कन्यादान करते हैं, उन लोगों का वैकुण्ठ में चौदह इन्द्रों के काल (कल्प) तक निवास होता है ॥५॥ कन्या के शरीर में जब रोए आते हैं उस समय सोम उसका भोग करते हैं, ऋतुकाल में गन्धर्व, और जब स्तन दिखायी पड़ने लगे तो उसका अग्नि देवता भोग करते हैं । कन्या का विवाह उसके ऋतुमती होने के पहले ही करना चाहिए। विद्वान आठ वर्ष की कन्या का विवाह श्रेष्ठ बतलाते हैं । कन्या, तपस्वी तथा श्रोत्रिय ब्राह्मण को देना चाहिए जिसने वेदाध्ययन कर लिया । उस ब्रह्मचारी ब्राह्मण को देना चाहिए ॥८॥ कन्यादान की यही विधि कही गयी है । हे पुत्र ! कन्या के शरीर में जितने रोएँ होते हैं ॥९॥ दाता उतने हजार वर्ष तक ब्रह्मलोक में पूजित होता है । हजार गायों के समान सौ सांढों का दान होता है । दश सांढों के दान के समान एक सवारी का दान होता है । दशसवारी के दान के समान एक घोड़े का दान होता है, एक हजार घोड़ों के दान के समान एक हाथी का दान होता है ॥१०-११॥ हजार हाथी के दान के समान एक भार सुवर्ण का दान होता है । हजार भार सुवर्ण के दान के समान एक विद्यादान होता है ॥१२॥ विद्यादान के करोड़ गुना भूमिदान का फल होता है । हजार भूमिदान से गोदान महत्त्वपूर्ण होता है ॥१३॥ हजार गौओं के दान

4:01 PM

जगाने वाले पुरुष को एक वर्ष तक लक्ष्मीजी नहीं त्यागती हैं ॥१९-२१॥ ब्राह्मणों से अभयत्व प्राप्त करे दैत्य विष्णु से भयभीत दैत्य तथा क्षीरोदधि में लक्ष्मजी और विष्णु को सोए हुए जानकर प्रार्थना किए॥२२॥ आप ही ज्योति स्वरूप, लक्ष्मी, सूर्य, चन्द्रमा, विद्युत् तथा स्वर्णिम तारे हैं। सभी ज्योतियों के ज्योति रूप में स्थित है। जो लक्ष्मी पवित्र दिन में तथा दीपावली में, पृथिवी पर, गोशाले में तथा पूर्णिमा में स्थित हैं, वे मुझको वरदान दें ॥२३-२४॥ क्रीड़ा करते हुए शङ्करजी तथा पार्वतीजी द्यूतक्रीड़ा करने लगे। पार्वतीजी के द्वारा पूजित लक्ष्मीजी धेनु स्वरूप हो गयीं ॥२५॥ प्राचीन काल में द्यूतक्रीड़ा में जीतकर पार्वतीजी ने शिवजी को नङ्गा छोड़ दिया इसीलिए शङ्करजी दुःखी और पार्वती सुखी रहती हैं ॥२६॥ जो सर्वप्रथम विजय प्राप्त करता है वह संवत्सर पर्यन्त सुखी रहता है। इस तरह आधी रात बीत जाने पर तथा पुरुषों के सोने लगने पर नारियाँ तूरी डिण्डिम घोष के साथ अपने घर तथा आङ्गन से दरिद्रा का निष्कासन करती हैं ॥२७-२८॥ जो पराजित होता है द्यूत क्रीड़ा में वह वर्ष भर दुःखी रहता है। प्रतिपत् तिथि को प्रातःकाल सूर्योदय होने पर गोवर्धन पूजा करके द्यूतक्रीड़ा करे ॥२९॥ उस दिन गायों को अलंकृत करे और उन्हें न दूहे और न कहीं ले जाय। फिर प्रार्थना करे कि हे पृथिवी को धारण करने वाले गोवर्धन आप गोकुल की रक्षा करने वाले हैं ॥३०॥ भगवान् विष्णु ने आपको उठा लिया था आप हमें करोड़ों गौ

के पहले दिन श्रीहरि के दोनों चरणों की पूजा कमल से करे। दूसरे दिन श्रीभगवान् की पूजा विल्व पत्र से करें ॥५८॥ तीसरे दिन श्रीभगवान् के शिर की पूजा मालती पुष्प से करे। कार्तिक मास के एकादशी के दिन श्रीभगवान् में मन लगाकर श्रीभगवान् की पूजा संक्षेप में करे। एकादशी के दिन गोबर का प्राशन करके अच्छी तरह एकादशी व्रत करे ॥५९-६०॥ द्वादशी के दिन भूमि पर बैठकर मन्त्र पढ़ते हुए गोमूत्र पीकर व्रत करे। त्रयोदशीं के दिन दूध और चतुर्दशी को दधि खाकर व्रत करे ॥६१॥ इन सबों का प्राशन शरीर की शुद्धि के लिए करे उपवास करके चार दिन बिताये। पाँचवे दिन स्नान करके श्रीभगवान् की सविधि पूजा करके ॥६२॥ भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे। व्रती को पाप बुद्धि से रहित होकर ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए ॥६३॥ पापी भी मनुष्य मद्य, मांस तथा मैथुन का त्याग करके शाकाहार तथा मुन्यन्न (तीनी) से भगवान् की अर्चना करे ॥६४॥ उसके पश्चात् वह सायंकाल पञ्चगव्य आदि से प्राशन करे। इस तरह से व्रत करके वह इस व्रत के फल को प्राप्त करता है ॥६५॥ जो मदिरा पायी जन्म से मरण पर्यन्त मदिरा पीता है। वह भी भीष्मव्रत करके परमपद प्राप्त करता है॥६६॥ स्त्रियों को ब्राह्मण के कहने के अनुसार धर्मवृद्धि करना चाहिए। विधवाओं को मोक्ष तथा सुख की वृद्धि के लिए इस व्रत को करना चाहिए ॥६७॥ हे पावके सभी कामनाओं की पूर्ति और पुण्य प्राप्त

पर्यन्त दुःख भोगते हैं ॥५७-५८॥ हे महामते ! कलियुग में अनेक धर्म प्रचलित हो जाते हैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देने वाला धर्म दुर्लभ है ॥५९॥ यदि कोई मनुष्य भूमि पर शयन करता है तो वह दश हजार वर्षों तक रोगों से पीड़ित नहीं होता है ॥६०॥ वह अनेक पुत्रों वाला, धनी, कुष्ठरोग से रहित होता है । जो मनुष्य नक्तकाल में भोजन करता है, वह तीर्थ याग का फल प्राप्त करता है ॥६१॥ अयाचित अन्न खाने वाला मनुष्य बावली और कुआँ बनवाने का पुण्य प्राप्त करता है । प्राणियों की हिंसा से दूर रहने वाले से कोई द्रोह नहीं करता है ॥६२॥ वेदों में अहिंसा को सर्वश्रेष्ठ धर्म कहा गया है । दान, दया और दम (इन्द्रियों को वश में करने) को भी मैंने सर्वत्र परम धर्म सुना है । अतएव सारे प्रयासों से इन सबों का पालन करना चाहिए । जो मनुष्य गुरु को शरीर, पुत्र तथा पौत्र को प्रदान करते हैं वे उस दान के प्रभाव से भगवान् विष्णु के प्रिय हो जाते हैं । जो कोई शूद्र से दीक्षा ग्रहण करता है अथवा कोई शूद्र यदि शूद्र से दीक्षा ग्रहण करता है ॥६३-६५॥ वे दोनों महाप्रलय काल तक पापी रहते हैं, जो महापापी शूद्र हिंसा करने का मन बनाता है ॥६६॥ वह अपने वंश के इक्कीस पीढ़ी के पुरुषों को नरक में डाल देता है । संसार में कलियुग में अनेक शूद्र पाखण्डी हो जाते हैं ॥६७॥ हे ब्राह्मण ! उन सबों से बात करने पर भी नरक होता है । वे जब ब्रह्मज्ञान की बातें करते हैं और गायत्री का जप करने लगते हैं उनके देखने मात्र से भी प्रतिदिन ब्रह्महत्या लगती है । शङ्ख, चक्र धारण करने वाले ब्राह्मण विष्णु धर्म

लेकर ॥१४-१५॥ शिवजी पर दौड़ा तब तक शिवजी ने बाणों से उसकी गदा के दो टुकड़े कर दिया । फिरे भी मुठी उठाकर वह शिवजी को मारने की इच्छा से गया ॥१६॥ तब तक शिवजी ने बाण समूह से उसे एक कोश दूर फेंक दिया । उसके बाद बलवान् जालन्धर रुद्र को अधिक बलवान् जानकर ॥१७॥ उसने रुद्र को मोहित करने वाली अद्भुत गान्धर्वी माया की सृष्टि कर दी । उसी समय गन्धर्व और अप्सराओं के गण नाचने और गीत गाने लगे ॥१८॥ परस्पर में ताल, वेणु और मृदङ्ग को बजाने लगे उसको देखकर रुद्र उस ध्वनि से मोहित हो गये ॥१९॥ उनके हाथ से छूटकर शस्त्र गिर पड़े और शङ्करजी को इसका पता नहीं चला एकाग्र हुए शङ्करजी को देखकर जालन्धर दैत्य कामार्त होकर शीघ्र ही युद्ध में महाबलवान् शुम्भ और निशुम्भ को रखकर पार्वतीजी के पास गया ॥२०-२१॥ दश भुजाएँ, पाँच मुख और तीन नेत्र वाला जटा धारण कर तथा वृषभ पर आरूढ जालन्धर पार्वतीजी के पास गया ॥२२॥ उसके बाद आते हुए शङ्करजी को देखकर वे सखियों के बीच से शङ्करजी के समक्ष गयीं ॥२३॥ पार्वतीजी को देखते ही उस दैत्येश्वर का वीर्यपात हो गया उसके अङ्ग जड़ हो गये ॥२४॥ पार्वतीजी उसको दैत्येन्द्र जानकर भयभीत हो गयी और वे अर्न्तधान होकर मान सरोवर के उत्तर तट पर चली गयी ॥२५॥ पार्वतीजी को न देखकर दैत्य क्षणभर में बिजली के समान युद्ध में शङ्करजी के पास आया ॥२६॥ पार्वतीजी ने भी मन

12:48 PM

जी नहीं सकता है फिर भी तुम पर करुणा करके मैं इसे जीवित कर रहा हूँ ॥२४॥ **नारदजी ने कहा—** यह कहकर मुनि ज्यो ही अन्तर्धान हुए त्यों ही जलन्धर ने वृन्दा का आलिङ्गन किया और उसके मुख को प्रेम से चूम लिया ॥२५॥ वृन्दा ने भी अपने पति को देखकर प्रसन्न होकर उसी वन में कई दिनों तक रहकर उसके साथ रमण करने लगी ॥२६॥ एक बार सुरति क्रिया के अन्त में उसको विष्णु देखकर वृन्दा ने उनको डाँटा और क्रोध पूर्वक कही ॥२७॥ **वृन्दा ने कहा—** हे परस्त्रीगामी ! श्री हरे आपके शील को धिक्कार है । मैंने प्रत्यक्ष जान लिया कि तुम ही तपस्वी बने थे ॥२८॥ तुमने माया से जिन दो द्वारपालों को दिखाया था वे ही दोनों राक्षस होकर तुम्हारी पत्नी का अपहरण करेंगे ॥२९॥ तुम भी वन में पत्नी के दु:ख से दु:खी होकर वानरों की सहायता प्राप्त करोगे । जो तुम्हारा शिष्य बना था उस सर्पेश्वर (शेषनाग) के साथ वन में भ्रमण करोगे ॥३०॥ यह कहकर वृन्दा अग्नि में प्रवेश कर गयी । यद्यपि विष्णु ने उसे रोकना चाहा फिर भी वह रूकी नहीं क्योंकि उसका मन उसी में लगा था ॥३१॥ उसके पश्चात् विष्णु ने वृन्दा का स्मरण करते हुए उसकी चिता के भस्म को अपने शरीर पर लगा लिया मुनियों और सिद्ध समुदाय के द्वारा समझाये जाने पर भी उनको शान्ति नहीं मिली ॥३२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के कार्तिक माहात्म्य के अन्तर्गत श्रीकृष्ण सत्यभामा

प्रकार के दानों तथा तीर्थों के फल के समान होता है । कमल के पत्ते पर भोजन करने वाला कभी नरक में नहीं जाता है । कमल के पत्ते पर भोजन करने वाला वैकुण्ठ जाता है और दूसरे लोग स्वर्ग में जाते हैं ।।४३-४४।। यह ब्रह्म महावृक्ष है, सभी कामनाओं को पूर्ण करता है हे राजन् ! कमल के बीच के पत्ते पर शूद्र को भोजन नहीं करना चाहिए ।।४५।। यदि वह उस पत्ते पर भोजन करता है तो वह चौदह इन्द्रों के काल तक नरक में रहता है । अतएव मध्यम पत्र का त्याग करके शेष पत्तों पर वह भोजन करे ।।४६।। हे नारद ! जो शूद्र मध्यम पत्रों में भोजन करता है, वह ब्राह्मण को कपिला गौ का दान करके ही शुद्ध होता है ।।४७।। जो शूद्र कपिला गौ को दूहकर अपने ही खा लेता है वह दश हजार वर्षों तक विष्ठा का कृमि होता है ।।४८।। फिर कृमि योनि से निकलकर पशु योनि में जन्म लेता है । हे नारदजी ! कपिला सांड को जो जोतता है वह उतने वर्षों तक कुम्भीपाक नरक में पकाया जाता है, जितने उस सांड के शरीर में रोएँ होते हैं ।।४९-५०।। उस शूद्र के घर में विशेष रूप से बकरी होती है । उसका दूध पीने से वह शूद्र रौरव नरक में जाता है ।।५१।। जिस शूद्र का व्यापार ब्राह्मणों के साथ होता है, वह ब्राह्मण वेद बाह्य हो जाता है और वह शूद्र कौलिक (कसाई) हो जाता है ।।५२।। व्यापार में शूद्र की आज्ञा का पालन करने वाला ब्राह्मण जितने युग चलता है उतने नरकों में जाता है ।।५३।। शूद्र के द्वारा पानी के लिए घर भेजा गया ब्राह्मण वह जल मदिरा के समान होता है और उसको पीकर वह नारकी हो जाता है ।।५४।। शूद्र को

नधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मनि

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति

जो अधमसे भी अधम हैं, स्त्रियाँ उनमें भी अत्यन्त अधम हैं; और उ मन्दबुद्धि हूँ। श्रीरघुनाथजीने कहा—हे भामिनि! मेरी बात सुन। मैं तो ' म्बन्ध मानता हूँ॥ २॥

शङ्करजी ने त्रिशूल को त्याग दिया । ब्रह्माजी का जो शिर सट गया था उसकी उनको याद आ गयी।।८१।। यदि प्राणापहार भी कर रहा हो तो भी ब्राह्मण को नहीं मारना चाहिए । अतएव दैत्यों को जीवित करने वाले को मुझे निगृहीत कर देना चाहिए ।।८२।। अतएव दैत्यों को जिलाने वाले इसको मैं स्त्री की योनि में डाल देता हूँ । इस तरह से शङ्करजी के कहते ही उनके तीसरे नेत्र से कृत्या निकली वह नग्न थी अत्यन्त उग्र थी । उसके केश खुले हुए तथा उसका बहुत बड़ा पेट था । उसके स्तन लम्बे और मोटे थे । उसकी योनि में दाँत थे और नेत्र भयङ्कर थे ।।८३-८४।। उसने कहा आप आज्ञा दें तो शिवजी ने कहा कृत्ये ! तुम दुष्ट शुक्राचार्य को अपनी योनि में डाल दो ।।८५।। जब तक मैं जालन्धर को मार न लूँ तब तक इनको तुम अपनी योनि में ही धारण किए रहना । जालन्धर के मारे जाने के बाद इनको निकाल कर छोड़ देना ।।८६।। शङ्करजी के इस तरह से कहने पर कृत्या शुक्राचार्य जी के पास दौड़ी । उसको देखकर शुक्राचार्य गिर पड़े ।।८७।। उनके केश को पकड़कर घुमाती हुयी वह नग्न शुक्राचार्य का आलिङ्गन करके हँसती हुयी उनको अपनी योनि में रख ली ।।८८।। शुक्राचार्य को योनि में डाले हुए देखकर जालन्धर ने जब तक बाणों का संधान किया तब तक वह अन्तर्धान हो गयी ।।८९।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के छठे उत्तर खण्ड के जालन्धरोपाख्यानान्तर्गत शुक्राचार्य के योनि में

ब्रह्मा के समय की गणना:

1. **कृत, त्रेता, द्वापर और कलियुग** मिलाकर **एक महायुग (चतुर्युग)** बनता है, जिसकी अवधि **43.2 लाख (4,320,000) वर्ष** होती है।
2. **1000 महायुग** = **1 ब्रह्मा का दिन (1 कल्प)** → 1000 × 4.32 मिलियन = **4.32 अरब वर्ष**
3. ब्रह्मा की **रात भी इतनी ही लंबी** होती है, यानी **4.32 अरब वर्ष**।
4. इस प्रकार, ब्रह्मा का **एक पूरा दिन (दिन + रात)** = **8.64 अरब वर्ष**।

12:42 PM

सुशोभित थे ॥१५॥ श्वेत यज्ञोपवीत धारण किए हुए वे दूसरे कामदेव के समान सुशोभित होते थे ! मेधावी मुनि महर्षि च्यवन के आश्रम में रहते थे ॥१६॥ वहाँ पर विद्यमान मुनि को देखकर वह मञ्जुघोषा कामार्त हो गयी और मन्द स्वर से गीत गाने लगी ॥१७॥ उसके हाथों के कङ्कन बज रहे थे और उसकी करधनी तथा नूपुर की ध्वनि हो रही थी । उसको उस तरह से गाते हुए देखकर मुनि श्रेष्ठ सेना से युक्त कामदेव के अधीन हो गये । मञ्जुघोषा आकर उस प्रकार के मुनि को देखी ॥१८-१९॥ उसने अपने हाव, भाव तथा कटाक्षों से मुनि को मोहित कर ली । उसने अपनी वीणा नीचे रख दी और मुनि का आलिङ्गन की॥२०॥ वायु के वेग से काँपते हुए वृक्ष के समान मुनि से वह लता के समान लिपट गयी ॥२१॥ मुनिपुङ्गव मेधावी भी उसके साथ रमण करने लगे । उसके उत्तम शरीर को देखकर कामार्त बने हुए मुनि का शिवत्व उसी में लीन हो गया ॥२२॥ कामुक बने मुनि को न तो दिन का पता चलता था । न रात का, वे उसके साथ रमण करते रहते थे । इस तरह से अनेक वर्ष बीत गये । मुनि के आचार का लोप हो गया ॥२३॥ मञ्जुघोषा देवलोक जाना चाहती थी । जाती हुयी उसने मुनि से कहा हे ब्रह्मन् ! मुझे अपने

प्रीत्या जालन्धरेत्याह नाम्ना जालन्धरोऽभवत् ॥५१॥

वह सागर कामना पूर्वक शङ्करजी के समान हो गया। उस समय स्वर्गङ्गा अपनी जवानी की गर्मी से मदमत्त हो गयी। उनको देखकर सागर जल की लहरों से भर गया ॥३८-४०॥ हे राजेन्द्र ! युधिष्ठिर उस समय गङ्गा और सागर का सङ्गम हुआ। उस समय सागर को प्राप्त करके गङ्गानदी ने उसके साथ बल पूर्वक रमण किया ॥४१॥ उसके कारण गङ्गा के गर्भ से सागर का अत्यन्त बलवान् पुत्र उत्पन्न हुआ॥४२॥ उत्पन्न होकर सागर के पुत्र ने रुदन किया उसके कारण पृथिवी काँपने लगी और त्रैलोक्य उसकी ध्वनि से ध्वनित हो गया ॥४३॥ उसके कारण ब्रह्माजी की लगी हुयी समाधि टूट गयी। उस समय त्रैलोक्य को भयभीत देखकर इन्द्र ने ब्रह्माजी को समुद्र के पास भेजा। वे भी इसे आश्चर्य की बात मानकर हंस पर चढ़कर वेग पूर्वक समुद्र के पास गये ॥४४-४५॥ आये हुए ब्रह्माजी को देखकर समुद्र ने उनकी पूजा की। ब्रह्माजी ने कहा— सागर व्यर्थ की गर्जना क्यों करते हो ॥४६॥ **समुद्र ने कहा—** देवेश ! मैं नहीं गर्जता हूँ, यह मेरा बलवान् पुत्र है आप इसकी रक्षा करें आपका दर्शन ही दुर्लभ होता है ॥४७॥ आप मेरे पुत्र और अत्यन्त सुन्दरी पत्नी को दर्शन दें। पति की आज्ञा प्राप्त करके वह अपने पुत्र के साथ ब्रह्माजी के पास गयी ॥४८॥ उन्होंने अपनी गोद में पुत्र को लेकर ब्रह्माजी के चरणों में प्रणाम किया उस

पूछा॥१॥ **जालन्धर ने कहा—** हे महामुने ! शङ्कर के गृह में कौन सा रत्न है ? आप उन सबों को मुझे बतलाएँ व्यर्थ के युद्ध तो होता नहीं है ॥२॥ **नारदजी ने कहा—** उनके शरीर में भस्म है, बूढ़ा बैल है, उनके शरीर में सर्प रहते हैं, गले में विष है, हाथ में भिक्षा का पात्र है और उनके दो पुत्र हैं गजानन और षडानन ॥३॥ यही उनके ऐश्वर्य हैं । जो दूसरा रत्न है, उसे मैं बतलाता हूँ । हिमालय की पुत्री पार्वती के स्तन उठे हुए और विशाल हैं ॥४॥ कामदेव को जला देने पर भी शङ्करजी पार्वती के रूप पर मोहित हो गए । उनको प्रसन्न करने के लिए महेश सदा कौतुक किया करते हैं ॥५॥ शम्भु नृत्य करके तथा गीत गाकर उनको हँसाते रहते हैं । उनका नाम पार्वती है वह सौन्दर्य की अधिष्ठातृ देवी है ॥६॥ राजन् ! वृन्दा सुन्दरी है ये अप्सराएँ भी सुन्दर हैं किन्तु इन सबों में पार्वती के सौन्दर्य का सोलहवाँ अंश भी नहीं है॥७॥ हे राजन् ! इस तरह से क्रोधी जालन्धर से कहकर मैं सभी दैत्यों के सामने ही क्षणभर में अन्तर्धान हो गया ॥८॥ इसके बाद जालन्धर ने राहु को अपना दूत बनाकर भेजा । वह क्षण भर में कैलास पर भगवान् शिव के गृह को देखा ॥९॥ इसी बीच श्रीहरि शङ्करजी से विदा लेकर भेद की शङ्का से सबों से अलक्षित होकर शीघ्र ही क्षीरसागर में चले गये ॥१०॥ राहु ने शङ्करजी के अत्यन्त दीप्ति सम्पन्न गृह को देखा वह

1:08 PM

समय तुम्हारी सिद्धि के योग के कारण उस महारण से उसने मेरे कटे हुए शिर को यहाँ ला दिया । वह तुम्हारे शरीर के संयोग से पुनः जीवित हो गया । हे प्रिये बाले ! मेरे वियोग के कारण तुम दुःखी हो गयी थी ॥३८-३९॥ देवि ! मैं तुमको छोड़कर जो युद्ध मे चला गया उस अपराध को क्षमा कर देना; इन वचनों के द्वारा उसने वृन्दा को याद दिलाया ॥४०॥ उसके बाद ताम्बूलों, मनोविनोदों तथा सुन्दर अलङ्कारों से शुक्ल वृन्दा देवी सभी भोगों से युक्त हो गयी । उसने रति की कामना से अपने पति का गाढ़ा लिङ्गन करके उसको चूम लिया । मोह से उत्पन्न मोक्ष से भी अधिक सौख्य का वृन्दा ने अनुभव किया ॥४१-४२॥ भगवान् नारायण ने भी लक्ष्मीजी के भी प्रेमानन्द से अधिक आनन्द का अनुभव किया । वृन्दा भी वियोग जन्य दुःख का विनोद माधव में ही करती थी ॥४३॥ वृन्दा के ही साथ क्रीड़ा तथा मनोहर विलास रूपी वाणी के राजहंस बने हुए भगवान् विष्णु भी वृन्दा के रूप की भावना करने के कारण लक्ष्मीजी के विषय में निःस्पृह हो गये ॥४४॥ उस वन मे वृन्दा ने तुलसी का रूप धारण कर लिया । वृन्दा के शरीर के स्वेद से पृथिवी पर वह अत्यन्त पवित्र तुलसी के रूप में उत्पन्न हो गयी ॥४५॥ वृन्दा के सङ्ग से उत्पन्न सुख का अनुभव करके श्रीहरि कुछ दिनो मे अनुभव किए कि अब शिवजी का कार्य हो गया ॥४६॥ एक दिन सुरत क्रीड़ा के अन्त में वृन्दा ने देखा कि उसके गले से दो भुजाओं वाले पुरुषोत्तम लिपटे हुए है ॥४७॥ उनको देखकर अपने गले से उनकी भुजाओं के बन्धन को हटा कर वृन्दा ने कहा तुम तपस्वी का रूप बनाकर मझको मोहित करने के लिए क्यों आ गये हो ?॥४८॥ उसकी बातों को सनकर उसको सान्त्वना

कोटिकन्दर्पलावण्यः सर्वाभरणभूषितः । स्वपार्श्वंस्थितनार्यंसे प्रसारितभुजद्वयः ॥१३२॥

गायन्मन्दं तथा साकमुमया पटुता यथा ।
अथ तां पार्वतीं शम्भुः करेणाकृष्य च स्मयन् ॥१३३॥

विन्यस्य हस्तौ वनिताद्वयांसे गायन्समस्ताभरणः प्रसन्न दृक् ।
ननर्त चानन्दसमृद्धगात्रो मुनीन्द्रगीतश्च सकालवेलम् ॥१३४॥

एतादृशं शिवं ध्यात्वा जन्मकोटिशतेष्वपि । न दुःखं जायते तस्य सदा हर्षश्च जायते ॥१३५॥

सा प्रयोजन है ? उस समय ब्राह्मण ने पार्वतीजी से कहा कि शङ्करजी कैसे हैं ? वे तुम्हारे समान हैं या नहीं ? लगता है वे तुम्हारे योग्य नहीं है ॥१२५-१२६॥ स्त्रियों का बल्लभ होना ही शुभांगनाओं का रूप और उसकी दक्षता होती है । अन्यथा इस तरह की पत्नी मेरे अधीन कैसे होती ॥१२७॥ **पार्वतीजी ने कहा—** हे द्विज ! आपकी पत्नी के वचन को सुनकर तथा तुम्हारे वचन को सुनकर लगता है कि इसके सामने विष भी व्यर्थ हैं ॥१२८॥ ब्राह्मण ने कहा तुम मेरी गोद में बैठो मैं तुम्हारी चोटी बना दूँ । यदि तुम्हारा चित्त चञ्चल हो जाय तो फिर तुम्हारा पतिव्रत्य धर्म कैसे रहेगा ?॥१२९॥ पार्वतीजी ने कहा—

पश्चाज्जायेत नृपतिरेवं कृत्वा पुनस्तथा। राज्यं स्वर्गफलं भूक्त्वा शिवभक्तो भविष्यति॥५२॥

राजन्! आपने इससे भी अधिक सुखद जिसके द्वारा जीव क्रीड़ा करेंगे उस पुण्य के विषय में आपने नहीं पूछा है, मैं उसी पुण्य को बतलाता हूँ॥४०॥ शिवजी के मन्दिर को चूने से पोतवाकर अमृत के समान धवल बना दे। रूप तथा विलास से युक्त तथा सभी अलङ्कारों से अलंकृत जो अनेक प्रकार के गीतों को गाने में कुशल हों तथा अनेक प्रकार के नृत्यों को करने में दक्ष हों ऐसी स्त्रियों से तथा मृदङ्ग ध्वनि करने वाली, चार, आठ अथवा छह स्त्रियों से॥४१-४२॥ दो वासिनी होना चाहिए तथा दो स्त्रियों को आजविकी होना चाहिए। दो स्त्रियों को नगाड़ा बजाने वाली होना चाहिए, चार स्त्रियों को नृत्य करने वाली होनी चाहिए। एक को सन्तुष्ट गायिका होनी चाहिए॥४३॥ एक अथवा दो स्त्रियों को गीतों का सुन्दर ज्ञान होना चाहिए तथा उन दोनों को मुखर होना चाहिए। दो स्त्रियों को कोण बजाने वाली होना चाहिए। मौन रहने वाली छह या आठ स्त्रियों को होना चाहिए॥४४। इन सबों को रूप तथा विलास से युक्त होना चाहिए। इन सबों के स्तनों को उठा हुआ होना चाहिए। उन सबों को रतिशास्त्र में कुशल होना चाहिए जिससे कि ये लज्जा न करें॥४५॥ उन सबों के वस्त्र तथा वेश को सूक्ष्म (महीन) होना चाहिए। उनके नेत्रों को बिजली के समान चञ्चल होना चाहिए। राजन् इस प्रकार की स्त्रियों के द्वारा जो व्यक्ति शिवमन्दिर में एक दिन नृत्य करवाता है वह एक वर्ष तक विमान से सञ्चरण करता है। सैकड़ों स्त्रियाँ उसका मुख

यः पुराराधितः शम्भुः प्रसन्नोऽभूत्त्रिलोचनः ।
शुद्धस्फटिकसङ्काशः सर्वाभरणभूषितः ॥१७८॥

कष्ट नहीं होगा ॥१६६॥ इस तरह से कहकर जाम्बवान् ने अपने दोनों हाथों से पकड़कर उठाया । उसके बाद वे द्विज के किनारे के भाग को पकड़कर उनको बैठाये ॥१६७॥ इसके पश्चात् श्रीराचमन्द्रजी ने उन ब्राह्मण श्रेष्ठों की प्रदक्षिणा की । ब्राह्मणों ने उनको आशीर्वाद दिया । उसके बाद श्रीरामचन्द्रजी ने उन लोगों को ताम्बूल प्रदान किया ॥१६८॥ श्रीरामचन्द्रजी ने अपने भाइयो के साथ ब्राह्मणों के पैर को पकड़ा और कहा अरी सीते ! इस अतिथि के शरीर को तुमने धोया नहीं ॥१६९॥ इस ब्राह्मण के दोनों जङ्घाओं पर मैल लगी है और इनका मुख भी मल से युक्त है । इनके मुख को अच्छी तरह से धोओ । ब्राह्मण मल वर्दास्त नहीं कर पाते हैं ॥१७०॥ **सीताजी ने कहा**— मैंने इनके मल को अच्छी तरह से धो दिया था, यह अभी-अभी निकल आया है । श्रीरामचन्द्रजी ने कहा इनके मल को फिर से धोओं नहीं तो मुझको पाप लगेगा ॥१७१॥ उसके बाद सीताजी उनके मुख को धोकर चुपचाप खड़ी रहीं । अत्यन्त क्रोधी ब्राह्मण ने सीताजी और रामचन्द्रजी को कहा ॥१७२॥ हे राम ! मेरे जो दोनों पैर हैं उन दोनों को सीता पकड़े और

हूँ ॥११२॥ भोजन के समय आये हुए ब्राह्मण को अन्न का भोजन कराइये । उस ब्राह्मण की पत्नी ने कहा यहाँ कोई मुनि कहाँ है, यहाँ तो नारी ही है ॥११३॥ अन्धा आदमी सर्वत्र इसी तरह की बातें बोलता रहता है । **पार्वतीजी ने कहा—** इस ब्राह्मण के चरणों को धोकर आसन पर बैठाओ ॥११४॥ सुवर्ण के पात्र में बनाये गये भोजन से इस ब्राह्मण को तृप्त करो । सुन्दर रत्न प्याला से युक्त अमृत के समान बोलने वाली इस ब्राह्मणी को दे ॥११५॥ अरुन्धती को बुलाकर अम्बिका (पार्वतीजी) परोसवाने का कार्य कर रही थी । कला, अरुन्धती और तथा अनसूया ये पतिव्रताएँ परोसने का काम माला, चन्दन और अक्षत धारण करके कर रही थीं । वे लोग पार्वतीजी के कथनानुसार अलग-अलग छह प्रकार के रस वाले पदार्थों को परोसने का काम कर रही थीं ॥११६-११७॥ खाने वाले ब्राह्मणों में जो नग्न वेषधारी ब्राह्मण थे वे सबकुछ खा गये । वे नारियाँ परस नहीं पा रही थीं ॥११८॥ इसके बाद गिरिजादेवी ने स्वयं परसना शुरु किया वे जितना परोसती थी वह सबकुछ क्षणभर में खा जाते थे ॥११९॥ भाण्ड में जो कुछ था वे अपनी पत्नी के साथ खा जाने की इच्छा किए । अम्बिका ने भाण्ड को लेकर कहा यह अक्षय हो जाय ॥१२०॥ उसके बाद अपने वायें हाथ में लेकर उस ब्राह्मण ने खाना चाहा । उस समय भी गिरिजा देवी ने कहा तुम्हारा अन्न अक्षय हो जाय ॥१२१॥ उसके बाद वे उत्तम ब्राह्मण दूसरे हाथों को उत्पन्न करके भोजन करना चाहे । इस तरह से हजारों हाथों को उत्पन्न करके वे द्विजोत्तम भोजन करना चाहे ॥१२२॥ देवी भी बार-बार परोसकर प्रसन्न हो रही थीं वे क्रोध नहीं करती थीं । ब्राह्मण ने सोच लिया इसके चित्त में मैं

में नग्न थे। उनका शरीर बूढापे से जर्जर हो गया था। वे खल्वाट थे। उनको श्वास और कास की बिमारी थी। उनको बार-बार हिचकी आती थी, वे भूखे थे ॥१०२॥ लार से उनकी दाढी भिंगी थी, कफ के कारण झुके हुए उनके पैर लड़खड़ा रहे थे। उनकी सोलह वर्ष की नारी थी और सभी अलङ्कारों से अलंकृत थी ॥१०३॥ वह रूप तथा सौन्दर्य से सम्पन्न थी तथा सर्वोत्कृष्ट प्रकाश स्वरूपिणी थी। वह इधर-उधर रूप सम्पन्न पुरुषों को देख रही थी ॥१०४॥ वह गाती और नृत्य कर रही थी, और उसको (वृद्ध को) पति रूप से देखकर हँसती थी। वह कह रही थी कि हे कृशाधम शीघ्र आओ मुझको वृद्ध पति कष्ट देता है ॥१०५॥ हे वृद्ध ! तुम्हारा हाथ थामकर तो मैं सदैव, दुःखी रहती हूँ। भूषण, वस्त्र, सुगन्धि, माला तथा विलेपन ॥१०६॥ हँसी, गीत तथा पेय पदार्थ, अलङ्कार, सुन्दर गृह, सभी ऋतुयों में समृद्धि ये सबके-सब काम की ही समृद्धि के साधन हैं ॥१०७॥ सभी कामों का एकमात्र प्रयोजन रति है। एक तरफ सभी प्रकार के सुख तथा एक तरफ रति जन्य सुख को यदि तराजू पर रखकर तौला जाय तो रतिजन्य सुख उसके सौ गुना भारी होगा। अतएव मुझ जैसे नारी आपको प्राप्त करके क्या करेगी?॥१०९॥ इसतरह से तथा दूसरे प्रकार के भी वाक्याक वह वृद्ध का हाथ पकड़ कर कह रही थी। उसके उत्तर में वृद्ध ने कहा मैं क्या करूँ ? हमारा भाग्य ही ऐसा है ॥११०॥ मुझको इस प्रकार का जानकर अपनी दुरुक्ति के द्वारा मुझको मारो मत। इस प्रकार का ब्राह्मण पार्वतीजी के मंदिर में गया ॥१११॥ वह पार्वतीजी को जाने बिना ही कहा। **ब्राह्मण ने कहा—** हे मुने ! मैं अतिथि हूँ, भोजन करना चाहता

प्रकार से वह धृष्ट हो जाती है । वह कुछ धन लेकर स्वतन्त्र बन जाती है ।।२१।। वह जिसके साथ व्यवहार करती है वह उसको मारकर उसके द्रव्य को लेकर उसको कहीं फेंक देता है । यदि पहले पति मर जाता है तो अग्नि में प्रवेश नहीं करती है ।।२२।। वह सोचती है कि विधवा हो जाने पर सारा मेरा धन धर्मार्थ हो जायेगा । विधवा हो जाने पर इस तरह से मन में निश्चित करके वह दिन अथवा रात में योनि रूपी कुण्ड को प्राप्त करके वह दिन अथवा रात्रि में एकान्त में जाकर अपने वस्त्र तथा योनि को खोलकर।।२३-२४।। योनि पर हाथ रखकर दुःखी होकर कहती है कि अरे योनि तुमने कैसा कर्म किया है ? तुमने भयङ्कर पाप किया है ।।२५।। क्योंकि तुमने दूसरे शिश्न को अपने भीतर प्रवेश कराया है । इस पाप कार्य को करने वाले ने मेरी सेवा भी नहीं की ।।२६।। इतना होने पर भी यदि उसकी योनि में खुजली पैदा होती है तो वह अपनी अङ्गुलि को अपनी योनि में डाल देती है और वह खुजली की बुद्धि से विचित्र प्रकार के चेष्टायें करती हैं ।।२७।। वह योनि को दोनों हाथों से फैलाकार उसको रगड़ती है । अत्यन्त दुःखी होकर वह अपने मुख को खोलकर बार-बार अपने दोनों पैरों को पटकती है ।।२८।। वह काठ अथवा खाट को पकड़ कर अपनी इच्छा भर स्तनों को दबाती है । उसके पश्चात् चित्त में विकार आ जाने पर वह व्यभिचारिणी हो जाती है ।।२९।। अथवा दिन में किसी पुरुष के साथ बातें करती है, घर में रात्रि में या संध्या के समय, या विशिखाओं (गलियों) में अपना दूसरा वेष बदलकर जिस किसी व्यक्ति के द्वारा उपभोग की जाती

हो सके वैसा ही मुझे करना चाहिए । मैं अब रोने लगूँगी तब यह मुझको सान्त्वना प्रदान करने के लिए मेरे पास आयेगा ॥१३॥ मुझको सान्त्वना प्रदान करने के लिए यह मुझे उठायेगा । उठती हुयी मैं इसके गले में अपने हाथों को डाल दूंगी ॥१४॥ अपने दोनों स्तनों से इसका स्पर्श करती हुयी मूर्छित हो जाऊँगी। मुझको बेहोश देखकर यह स्वयं बैठकर ॥१५॥ मुझको यह ब्राह्मण अपनी गोद में ले लेगा । वेहोश के ही समान मैं रोती हुयी अपने वस्त्र को हटाकर इसको अपनी सुन्दर, कोमल तथा सुगन्धित योनि प्रदर्शित करूँगी ॥१६-१७॥ लोटती हुयी मैं उसके भी शरीर के वस्त्र हटा दूँगी । इस तरह से मैं उसके मन के धैर्य को नष्ट करके उस ब्राह्मण को अपने वश में कर लूँगी ॥१८॥ बिना देखे जैसा चित्त होता है, देख लेने पर वह वैसा नही रह जाता है । देखने के समय जैसा चित्त होता है, वार्तालाप के समय वैसा चित्त नहीं होता है ॥१९॥ बातचित करते समय जैसा चित्त होता है, हँसकर बातें करते समय वैसा ही नहीं होता है । हँसकर बातें करते समय जैसा चित्त होता है, वैसा चित्त स्पर्श करने पर नहीं होता है॥२०॥ स्पर्श करते समय जैसा चित्त होता है योनि को देख लेने पर वह वैसा नहीं होता है । योनि को देखने पर जैसा चित्त होता है योनि का स्पर्श करने पर वह वैसा नहीं होता है ॥२१॥ काँख, दोनों स्तन तथा योनि को देख लेने पर किसका चित्त स्वलित नहीं होता है और उसका वीर्यपात नहीं होता है ॥२२॥

दधीच महर्षि ने कहा— इस तरह से विचार करके वह क्षत्रिया गृह के भीतर चली गयी और अपने घर

विधवाय मया किञ्चिद्भूषणं दीयतां कथम् ।
मया दत्ते हि तस्मिन्वै वैधव्यं नोपपद्यते ॥७८॥

तुम प्रायश्चित कर लो ॥६७॥ अग्नि में प्रवेश करने से तुम्हारे उपपातकों का नाश हो जायेगा स्त्रियों के सभी पापों के नाश का दूसरा कोई उपाय नहीं है । केवल अग्नि प्रवेश को छोड़कर त्रैलोक्य में कोई उपाय नहीं है । **दधीच ने कहा—** इसके बाद नारदजी की वाणी से प्रेरित होकर उसने कहा ॥६८-६९॥ हे महामुने ! अग्नि प्रवेश के समय नारियों को क्या करना चाहिए । **नारदजी ने कहा—** स्नान करके मङ्गल संस्कार करे, फिर वह भूषण तथा अञ्जन को धारण करे ॥७०॥ वह चन्दन, पुष्प, धूप, हल्दी तथा अक्षत धारण करे । वह मङ्गल सूत्र धारण करे पैरों में आलता लगाए ॥७१॥ यह सब अपनी शक्ति के अनुसार करे और प्रियवाणी बोले । उसका मुख प्रसन्न रहना चाहिए । अनेक मङ्गलमयवाद्यों तथा गीतों का श्रवण करना चाहिये ॥७२॥ यह व्यभिचार रूपी पाप को करने पर उस पाप का नाश करने के लिए भूत कालिक पापों के विषय में प्रायश्चित्त बतलाया गया है ॥७३॥ जिन आभूषणों को वह धारण की हो अपने उन आभूषणों को वह ब्राह्मण को दान कर दे । यदि आपना कोई अलङ्कार न हो तो अपने से उसका प्रायश्चित करे । उसके अतिरिक्त उसके पाप का कोई दूसरा प्रायश्चित्त नहीं है । **अव्यया ने कहा—** इन सभी कामों को मैं करूँगी किन्तु मेरे पास हल्दी नहीं है ॥७४-७५॥ हे ब्रह्मन ! आभूषण आदि जितने सामान है, उन

कहा ।।३४।। पुष्प के अभाव में श्रीहरि ने अपने नेत्र को शिवजी को समर्पित कर दिया, सूर्य ने अपनी अङ्गुलि को समर्पित कर दिया लिङ्ग के गिर जाने पर जमदग्नि ऋषि ने लिङ्ग को समर्पित कर दिया और पीठ के टूट जाने पर उन्होंने अपने शरीर को काटकर समर्पित कर दिया । दूसरे भी शिवभक्तों ने दूसरे प्रकार से साहस को प्रदर्शित किया ।।३५-३६।। मुझको भी उसी प्रकार का कार्य करना चाहिए नहीं तो मैं दोष का भागी होऊँगा । उसी समय एक पागल आया ।।३७।। उसने व्याध के द्वारा की गयी पूजा को लेकर खा गया और उस शिवपीठ पर ही उसने वमन कर दिया । यह देखकर उस व्याध ने विचार किया शिव का अपकार करने वाले को मैं मार दूँ कि नहीं । वह अपना ही वध करने के लिए प्रयास करता हुआ कहा ।।३८-३९।। हे शङ्कर ! मेरे द्वारा की गयी शिवजी की पूजा को जैसे इस पागल ने खा लिया है, लिङ्ग को ढँकने के लिए यह मेरी प्रवृत्ति है अतएव मुझसे शीघ्र ही उसके लिए अपनी त्वचा को छिल देना चाहिए । पूजा को ही छोड़ने के लिए फल के अभाव में अपने शिर को त्याग देना चाहिए ।।४०-४१।। इस तरह से सङ्कल्प करके उसने ही तीक्ष्ण चाकू से अपने दाहिने पैर के कमर से नीचे के चमड़े को छील दिया ।।४२।। इसी तरह उसने कमर से नीचे अपने वायें पैर के भी चमड़े को छील दिया उसने बिना काँपे ही प्रसन्नता पूर्वक ऊपर के भी भाग को ऐसे ही छिल दिया ।।४३।। उसने हाथ कन्धा, पेट, हृदय तथा कण्ठ की त्वचा को छिलकर अन्त में प्रसन्नता पूर्वक अपने मस्तक के भी चमड़े को छील दिया ।।४४।।

कर्म विप्रस्य यजनं दानमध्ययनं तपः ॥
प्रतिग्रहोऽध्यापनं च याजनं चेति वृत्तयः ॥ १३ ॥
क्षत्रियस्यापि यजनं दानमध्ययनं तपः ॥
शस्त्रोपजीवनं भूतरक्षणं चेति वृत्तयः ॥ १४ ॥
दानमध्ययनं वार्ता यजनं चेति वै विशः ॥
शूद्रस्य वार्ता शुश्रूषा द्विजानां कारुकर्म च ॥ १५ ॥
तदेतत्कर्माभिहितं संस्थिता यत्र वर्णिनः ॥
बहुमानमिह प्राप्य प्रयांति परमां गतिम् ॥ १६ ॥

ब्राह्मणोंके छः कार्य हैं, उनमें यजन, दान और अध्ययन यह तीन तपस्या हैं और दान लेना, पढाना, यज्ञ कराना यह तीन जीविका हैं ॥ १३ ॥ क्षत्रियोंके पांच कार्य हैं, उनमें यजन, दान, अध्ययन यह तीन तपस्या हैं और शस्त्रका व्यवहार और प्राणियोंकी रक्षा करना यह दो जीविका हैं ॥ १४ ॥ वैश्यको भी यजन, दान, अध्ययन यह तीन तपस्या हैं और वार्ता अर्थात् खेती, वाणिज्य, गौओंकी रक्षा और व्यवहार यह चार आजीविका हैं, शूद्रोंकी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की सेवा करना यही तपस्या है और शिल्पकार्य उनकी जीविका है ॥ १५ ॥ मैंने यह धर्म कहा, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह चारों वर्ण इस धर्म के अनुसार चलनेपर इस कालमें बहुतसा सन्मान प्राप्त कर परलोकमें श्रेष्ठ गतिको पाते हैं ॥ १६ ॥

ये व्यपेताः स्वधर्माच्च परधर्मेष्ववस्थिताः ॥
तेषां शास्तिकरो राजा स्वर्गलोके महीयते ॥ १७ ॥

जो पूर्वोक्त अपने २ धर्मका त्याग कर दूसरे धर्मका आश्रय करते हैं, राजा उनको दण्ड देकर स्वर्गका भागी होता है ॥ १७ ॥

आत्मीये संस्थितो धर्मे शूद्रोऽपि स्वर्गमश्नुते ॥
परधर्मो भवेत्याज्यः सुरूपपरदारवत् ॥ १८ ॥

अपने धर्ममें स्थित होकर शूद्र भी स्वर्ग प्राप्त करते हैं, दूसरोंका धर्म सुन्दरी पराई स्त्री के समान तजनेके योग्य है ॥ १८ ॥

वध्यो राज्ञा स वै शूद्रो जपहोमपरश्च यः ॥
यतो राष्ट्रस्य हंतासौ यथा वह्नेश्च वै जलम् ॥ १९ ॥

जप, होम इत्यादि ब्राह्मणोंके उचित कर्ममें रत होनेसे शूद्रका राजा वध करै, कारण कि जलधारा जिस प्रकारसे अग्निको नष्ट करती है, उसी प्रकारसे यह जप होममें तत्पर हुआ शूद्र सम्पूर्ण राज्यका नाश करता है ॥ १९ ॥

प्रतिग्रहोऽध्यापनं च तथाऽविक्रेयविक्रयः ॥
याज्यं चतुर्भिरप्येतैः क्षत्रविट्पतनं स्मृतम् ॥ २० ॥

---

१ शास्तिः शासनम् ।

दान लेना, पढना, निषिद्ध वस्तुका खरीदना, वेचना और यज्ञ कराना इन चारों कर्मोंके करनेसे क्षत्रिय और वैश्य पतित होते हैं ॥ २० ॥

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ॥

'रजस्वलामृतुस्नातामात्रेयीमाहुरत्र ह्येष्यदपत्यं भवति' इति । गोवध इत्यन्ते । क्षत्रियवधदण्डप्रायश्चित्तयोरुभयोरयमतिदेशः ॥ ७ ॥

हंसभासबर्हिणचक्रवाकप्रचलाककाकोलूककण्टकडिड्डिकमण्डूकडेरिकाश्वबभ्रुनकुलादीनां वधे शूद्रवत् ॥ ८ ॥

अनु०—हंस, भास, मोर, चक्रवाक, प्रचलाक, कौआ, उल्लू, कण्टक, छुछुन्दर, मेढक, डेरिका, कुत्ता, बभ्रु, नेवला आदि का वध करने पर शूद्र की हत्या के लिए विहित प्रायश्चित्त होता है (अर्थात् राजा को दस गायें और एक सांड प्रदान करे)॥८॥

शूद्रं हत्वा यत्प्रायश्चित्तं तत्प्रायश्चित्तमेतेषां वधे भवति। सर्वत्र चातिदेशे मानाधीनता। इह मण्डूकग्रहणं मार्जारादीनामपि प्रदर्शनार्थम्। आह च मनुः—

Ashtadash Smrit...

33

मनुष्यो ! दुगुनी दक्षिणा देकर अग्निष्टोम आदि यज्ञ करनेसे जिस प्रकारका फल प्राप्त होता है, प्रथम कहे हुए कृच्छ्रके करनेसे भी उसी प्रकारका फल प्राप्त होता है ॥ १३० ॥

वेदाभ्यासरतः क्षांतो नित्यं शास्त्राण्यवेक्षयेत् ॥
शौचमृद्वार्यभिरतो गृहस्थोऽपि हि मुच्यते ॥ १३१ ॥

जो मनुष्य वेदके पढनेमें तत्पर, क्षमाशील और धर्मशास्त्रको विचारकर उसके उपदे[श] अनुसार शौच और आचारका पालन करते हैं, वह गृहस्थी होनेपर भी मुक्तिको प्राप्त करते हैं ॥ १३१ ॥

उक्तमेतद्द्विजातीनां महर्षे श्रूयतामिति ॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि स्त्रीशूद्रपतनानि च ॥ १३२ ॥

इस प्रकारसे यह द्विजातियोंका धर्म कहा, इसके आगे स्त्री शूद्र जिन कारणोंसे पतित होते हैं उसका वर्णन करता हूं, हे महर्षिगण ! तुम श्रवण करो ॥ १३२ ॥

जपस्तपस्तीर्थयात्रा प्रव्रज्या मंत्रसाधनम् ॥
देवताराधनं चैव स्त्रीशूद्रपतनानि षट् ॥ १३३ ॥

जप, तपस्या, तीर्थयात्रा, संन्यास, मन्त्रसाधन, देवताओंकी आराधना यह छैः कर्म स्त्री शूद्रोंको पतित करनेवाले हैं ॥ १३३ ॥

जीवद्भर्तरि या नारी उपोष्य व्रतचारिणी ॥
आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥ १३४ ॥

जो स्त्री स्वामीके जीवित रहतेहुए उपवास करके व्रत धारण करती है, वह स्त्री अपने स्वामीकी आयुको हरण करती है; और अन्तमें वह नरकको जाती है ॥ १३४ ॥

तीर्थस्नानार्थिनी नारी पतिपादोदकं पिबेत् ॥
शंकरस्यापि विष्णोर्वा प्रयाति परमं पदम् ॥ १३५ ॥

यदि स्त्रीको तीर्थके स्नान करनेकी इच्छा है तो वह अपने पतिके चरणोदकका पान करै, तब वह स्त्री शिव या विष्णुभगवान्के परम पद (कैलास वा वैकुण्ठ) को प्राप्त कर सकैगी ॥ १३५ ॥

जीवद्भर्तरि वामांगी मृते वापि सुदक्षिणे ॥
श्राद्धे यज्ञे विवाहे च पत्नी दक्षिणतः सदा ॥ १३६ ॥

स्वामीकी जीवित अवस्थामें वा मृत्युकी अवस्थामें स्त्री वामांगी है और पुरुष दाहिनी ओरका भागी है । परन्तु श्राद्ध, यज्ञ और विवाहके समयमें स्त्री दाहिनी ओरको ही बैठती है ॥ १३६ ॥

सोमः शौचं ददौ तासां गंधर्वाश्च तथांगिराः ॥
पावकः सर्वमेध्यत्वं मेध्यत्वं योषितां सदा ॥ १३७ ॥

चन्द्रमा गंधर्व और अङ्गिरा (बृहस्पति) ने इन स्त्रियोंको शुद्धता दान की है और अग्निने भी सम्पूर्ण शुद्धता दी है; इस कारण स्त्री सर्वदा ही पवित्र है ॥ १३७ ॥

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते ॥
विद्यया याति विप्रत्वं श्रोत्रियस्त्रिभिरेव च ॥ १३८ ॥
वेदशास्त्राण्यधीते यः शास्त्रार्थं च निबोधयेत् ॥
तदासौ वेदविप्रोक्तो वचनं तस्य पावनम् ॥ १३९ ॥

त: ।
यम् ॥ ४२
य: ॥ ४३

विधिपूर्वक पूजन करके प्रातः, मध्याह्न तथा सायंवेलामें इस उत्तम स्तोत्रका पाठ करता है, वह शिवके साथ सायुज्य प्राप्त कर लेता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४२-४३॥

रभागे शिवपूजनवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

तरभागमें 'शिवपूजनवर्णन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

ीसवाँ अध्याय

दीक्षाका वर्णन तथा शिवयोगकी महिमा

महः ।
षतः ॥ १
च ।
ाय: ॥ २
वेत् ।
ात: ॥ ३
वम् ।
यम् ॥ ४

सूतजी बोले—[हे ऋषिगण!] सूर्यमण्डलमें स्थित पितामह महादेव रुद्र ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्योंके विशेषरूपसे पूज्य हैं, वे शूद्रोंके पूज्य नहीं हैं, उन्हें तो शिवपूजककी सेवा करनी चाहिये, स्त्रियोंको भी पूजा आदिमें अधिकार नहीं है, इसमें संशय नहीं है। द्विजेन्द्रोंके द्वारा की गयी पूजासे ही स्त्रियों तथा शूद्रोंको मण्डलपूजाका फल प्राप्त हो जाता है। राजाओंके उपकारके लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणके द्वारा विशेषरूपसे पूजा की जानी चाहिये। इस प्रकार ब्राह्मण आदिको विधिवत्

650

्।
: ॥ ५
: ।

सदाशिवकी पूजा करनी चाहिये—ऐसा कहकर भगवान् रुद्र वहींपर अन्तर्धान हो गये॥ १—४॥

हो पाया है, वह ज्ञान भी व्यर्थ है तथा प्र
की सेवा करने वाली नारी विनष्ट प्राय है,
नहीं जलने वाली अग्नि में किया जाने वाला होम व्यर्थ है, तथा छल प्रपञ्च पूर्वक की जाने वाली भक्ति व्यर्थ हो जाती है ॥२९॥ नौकरी करने वाली कन्या विनष्ट हो जाती है, अपने लिए बनाये जाने वाला पाक व्यर्थ है । शूद्र का अन्न खाकर किया जाने वाला योग व्यर्थ होता है, कृपण की सम्पत्ति व्यर्थ होती है ॥३०॥ अभ्यास के बिना विद्या नष्ट हो जाती है, जिससे विरोध होता है, वह ज्ञान व्यर्थ है, जींने के लिए तीर्थ यात्रा करना व्यर्थ है तथा जीवन के लिए व्रत करना व्यर्थ है ॥३१॥ मिथ्या वाणी व्यर्थ है तथा चुगुली करने वाली भी वाणी व्यर्थ है । छह कानों में गया हुआ मन्त्र और व्यग्र चित्त से किया जाने वाला जप व्यर्थ है ॥३२॥ अश्रोत्रिय को दिया गया दान व्यर्थ है, नास्तिकों का लोक व्यर्थ है । श्रद्धा विहीन किया गया पारलौकिक कर्म व्यर्थ होता है ॥३३॥ हे राजन् ! इस लोक में

भगवान् विष्णु की भक्ति की महिमा का वर्णन

सूतजी ने कहा— हे विप्रों ! प्राचीन काल में इस प्रकार से कहकर अमित तेजस्वी सत्यवती नंदन व्यासजी ने ॥१॥ सभी मुनियों को आश्वस्त करके जिस प्रकार से आये थे उसी प्रकार चले गये। मैंने आपलोगों को वर्णों एवं आश्रमों के विधान को सुनाया ॥२॥ इन वर्णाश्रम, धर्म का ही पालन करके मनुष्य भगवान् विष्णु का प्रिय होता है, दूसरे साधन से नहीं । हे द्विजश्रेष्ठों ! इस विषय में मैं आपलोगों को रहस्य की बातें बतलाता हूँ उसे आपलोग सुनें ॥३॥ यहाँ पर मैंने जिन वर्णाश्रम धर्मों का वर्णन

View

मेरी मनोहर वाणी को सुने। इस भूलोक में मेरे समान कोई भी दूसरा भाग्यवान नहीं है ।।६१।। मेरे सामने कोई नहीं हैं, न हुआ और न होगा; क्योंकि श्रीरामभद्र ने मुझे नमस्कार करके मेरा स्वागत किया है ।।६२।। जिनके चरण कमलों की धूलि का अन्वेषण श्रुतियाँ किया करती हैं, वे ही श्रीराम मेरे चरणोदक को पीकर अपने को पवित्र मानते हैं ।।६३।। इस तरह से कहने वाले उस आरण्यक मुनि का ब्रह्मस्फोट हो गया और उससे निकला हुआ तेज श्रीरामजी में प्रवेश कर गया ।।६४।। सरयूतीर के मण्डप में सभी लोगों के सामने ही वे मुनि योगियों के लिए भी दुर्लभ सायुज्य मुक्ति को प्राप्त कर लिए ।।६५।। आकाश में बाजे बजने लगे, बीणा की भी ध्वनि हुयी और सबों के सामने ही पुष्प की वृष्टि हुयी ।।६६।। मुनिजन भी इस आश्चर्य को देखकर उन मुनीश्वर की प्रशंसा करते हुए कहे कि ये मुनि मुक्त हो गये क्योंकि वे श्रीराम के शरीर में ही निवास प्राप्त कर लिये ।।६७।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के शेष वात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में आरण्यक मुनि के विष्णु लोक गमन वर्णन नामक सैंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३७।।

(193 / 825)

प्यास तथा श्रम से पीड़ित ॥८९॥ जो अतिथियों का सत्कार नहीं करते हैं वे नरकगामी होते हैं । अनाथ, विकल, दीन, बल, वृद्ध, अत्यन्त आतुर ॥९०॥ इन सबों पर जो दया नहीं करते हैं वे मूर्ख नरक में जाते हैं । भेड़, बकरी तथा भैंस पालने, शूद्र तथा वेश्या के स्वामी ॥९१॥ इस प्रकार का शूद्र ब्रह्मण तथा क्षत्रिय के आचार का पालन करता है, शिल्पी, बढ़ई, वैद्य, तथा देवान पर जीने वाले मनुष्य ॥९२॥ नौकरी करने वाले, मन्त्री का काम करने वाले, ये सबके सब नरकगामी होते हैं । जो राजा द्वारा कहे गये का उल्लंघन करके मनमाने ढंग से कर वसूलता है ॥९३॥ वह नरक में पकाया जाता है तथा जो व्यर्थ ही दण्ड देता है वह भी अधिकृत व्यक्ति घूस लेने वाले तथा चोरों से पीड़ित होता है ॥९४॥ जिस राजा के राज्य में प्रजाएँ नरकों में पकायी जाती हैं, वह तथा जो ब्राह्मण पापी राजा से दान लेते हैं ॥९५॥ वे भी

हैं तथा सनातन जैन धर्म रूप महापुण्य हैं ॥१९॥ हे विप्रो ! आपलोग अपने कर्मों के द्वारा मेरी ही आराधना करें ॥२०॥ **ऋषियों ने कहा—** ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य ये तीनों वर्ण द्विजाति हैं । सभी वर्णों का प्रतिपादन नित्य श्रुति ही करती है ॥२१॥ वेदोक्त आचार का पालन करने के कारण जीव जीवित हैं । आप तो ब्राह्मण वंश में उत्पन्न ब्राह्मण हैं ॥२२॥ आप बाद में अपने पराक्रम से पृथिवी के राजा हो गये। हे राजेन्द्र ! राजा के पुण्य से सभी द्विज सुख पूर्वक जीवित रहते हैं ॥२३॥ राजा के पाप से द्विजो का नाश हो जाता है । अतएव आप पुण्य कर्म करें । राजन् ! आपने धर्म का समादर भी किया है और स्वयं धर्म किया भी है ॥२४॥ त्रेतायुग के कर्म भी द्वापर युग के नहीं होते हैं । कालिक का प्रवेश होने पर मनुष्य ऐसा व्यवहार करेंगे ॥२५॥ जैन धर्म को अपना कर सभी पाप से मोहित मनुष्य उस समय वेदाचार का त्याग करके पाप करने लगेंगे ॥२६॥ निश्चित रूप से जैन धर्म पाप का मूल है । हे राजेन्द्र ! इससे मोहित तथा महा अज्ञान से पतित ॥२७॥ सभी मनुष्य पाप समूह रूप हो जायेंगे । उन सबों का ही नाश करने के लिए भगवान् गोविन्द सभी पापों का विनाश करने वाले होंगे ॥२८॥ अपनी इच्छा के अनुसार रूप

ने मार दिया और अर्जुन को कोलभिल्लों ने परास्त कर दिया । प्रताप युक्त सूर्य को कभी-कभी मेघ ढँक लेते हैं ।।१६९-१७०।। मेघों को वायु तितर-वितर कर देते हैं और वायु के पराक्रम को पर्वत जीत लेते हैं । अग्नि पर्वतों को जला देता है और अग्नि को जल शान्त कर देता है ।।१७१।। उन जलों को सूर्य सूखा देते हैं और वे द्वादशादित्य भी जल तथा त्रैलोक्य के साथ ब्रह्माजी के दिन में नष्ट हो जाते हैं।।१७२।। देवताओं के साथ ब्रह्माजी भी दो परार्द्ध के अन्तिम समय में परमात्मा शिव के द्वारा उपसंहृत कर लिए जाते हैं ।।१७३।। इस तरह संसार में केवल अव्यय जगत् के स्वामी परमात्मा को छोड़कर किसी का भी सर्वोत्तम बल नहीं है ।।१७४।। इस तरह से सबों को विनाशवान् जानकर अत्यन्त अभिमान को त्याग देना चाहिए। इस संसार में कोई भी देवता अथवा पण्डित सर्वज्ञ नहीं है । अथवा पूर्णरूप से कोई मूर्ख भी नहीं है । जो जितना जानता है, वह उतने में ही पण्डित है ।।१७५-१७६।। समाधान करने पर सर्वत्र एक समान प्रभाव होता है किसी का कहीं पर प्रभाव धन की अधिक। इस तरह रा।।१७७।। कभी दानव देवताओं को परास्त करते हैं तो कभी देवता दानवों को परास्त करह शय्या और से संसार परस्पर में एक-दूसरे पर भाग्य तथा जय परायज के द्वारा आश्रित है ।।१७८।। इस तरह राजागण दो वस्त्र धारण करते हैं और अंजलि भर जल पीते हैं और भोजन करते हैं । उसी तरह शय्या और आसन भी धारण करते हैं शेष सारी वस्तुएँ तो उनको दु:ख ही देती हैं ।।१७९।। सातवें मंजिल पर भी वे केवल एक ही खाट को ग्रहण करते हैं जल के हजारों घड़ों से तो केवल क्लेश का ही विस्तार होता है ।।१८०।। प्रात:काल वाद्यों का निर्घोष

ने उसे ... का रोग सदैव बना रहता है। मार्तण्ड ... २१३॥ पूषा देवता के दाँत को वीरभद्र ने ... दिया। चन्द्रमा महान् क्षयरोग से ग्रस्त हैं ॥२१४॥ दक्ष प्रजापति महान् ज्वर से ग्रस्त हो गये। प्रत्येक कल्प में बड़े-बड़े देवताओं का भी नाश हो जाता है ॥२१५॥ दो परार्द्ध के अन्त में ब्रह्माजी की भी मृत्यु होती है। दक्ष की पुत्री तथा अपनी पौत्री को ब्रह्मा ने अपनी पत्नी बनाना चाहा ॥२१६॥ ब्रह्माजी ने क्रोध करके योगिनी चण्डिका देवी को शाप दे दिया। जहाँ कहीं भी काम अथवा क्रोध हैं, वहाँ काम तथा क्रोध रूप दोष होते ही हैं ॥२१७॥ वहाँ पर निश्चित रूप से सभी प्रकार के दुःख स्थित रहते हैं। अग्नि का जन्म तथा मरण समाप्त हो गया किन्तु

मुझे बतलाइये ॥१७॥ **देवी ने कहा—** निस्सन्देह स्त्रियों का मन सदैव पुरुषों में लगा रहता है, इस मनुष्य योनि में चाहे वह उचित हो या अनुचित ॥१८॥ हे नारद ! सुन्दर वेष वाले पुरुष, भाई तथा पुत्र को भी देखकर स्त्रियों की योनि में क्लेदन होने लगता है ॥१९॥ हे नारद ! व्यभिचारयोग्य स्थान, समय तथा प्रार्थयिता के अभाव में ही स्त्रियों का सतीत्व सुरक्षित रह सकता है ॥२०॥ नारी घी के घड़े के समान है और पुरुष तप्त अंगार के समान होता है, इसीलिए घृत के समान नारी को तथा अग्नि के समान पुरुष को एकत्र न रखे ॥२१॥ जिसतरह मदमत हाथी को अंकुश और मुग्दर के द्वारा वश में रखा जाता है उसीतरह स्त्री को नियामक तथा श्रेष्ठ रक्षक ही अपने वश में रख सकते हैं ॥२२॥ स्त्री की कुमार्यावस्था में पिता, यौवनावस्था में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र रक्षा करता है । अतएव स्त्री को स्वतन्त्रता नहीं देना चाहिए ॥२३॥ इसीलिए स्वतन्त्र होने पर अपनी इच्छानुसार सुन्दर स्त्रियाँ किसी भी पुरुष के द्वारा प्रार्थना करने पर उसकी इच्छा के अनुसार आचरण करने लगती हैं ॥२४॥ जिसतरह रक्षा के अभाव में तैयार भोजन को कुत्ते तथा कौए खा लेते हैं, उसीतरह स्वच्छन्द होने पर नारी दुष्टों की सङ्गति कर लेती है ॥२५॥ उसके संसर्ग के कारण वंश दूषित हो जाता है, दूसरे वीर्य से उत्पन्न होने वाला वर्णसङ्कर कहलाता है ॥२६॥ जारज (पर पुरुष से उत्पन्न) पापी सङ्कर (दोगला) नरकगामी होता है । उसके बाद वह पृथिवी पर सभी कीट योनियों में जन्म लेता है ॥२७॥ हे ब्राह्मण ! उसके बाद दुष्टा नारी के कारण पूरा वंश ही म्लेच्छ जाति का हो जाता है, अतएव दुष्टा नारी को कभी स्वीकार करना चाहिए ॥२८॥ इस तरह स्त्रियों के दोष को जानकर भी जो उसे क्षमा कर देता है वह

वाले, क्रूर उपवास करके मरने वाले, म्लेच्छों के देश में रहकर मरने वाले ॥८७॥ म्लेच्छों की भाषा बोलने वाले,

स्त्रियो यैश्च न रक्ष्यं ते ते प्रेता नात्र संशयः । क्षुधा संतप्तदेहं तु श्रांतं विप्रं गृहागतम् ॥८९॥
गुणपुण्यातिथिं त्यक्त्वा पिशाचत्वं व्रजंति ते । विक्रीणंति च वै गाश्च म्लेच्छेषु च गवाशिषु ॥९०॥
प्रेतलोके सुखं स्थित्वा ते च यांत्यपुनर्भवम् । अशौचाभ्यंतरे ये च जाताश्च पशवो मृताः ॥९१॥
चिरं प्रेताः पिशाचाश्च मृता जाताः पुनः पुनः । जातकर्ममुखैश्चैव संस्कारैर्ये विवर्जिताः ॥९२॥
एकैकस्मिंश्च संस्कारे प्रेतत्वं परिहीयते । स्नानसंध्यासुरार्चाभि र्वेदयज्ञव्रताक्षरैः ॥९३॥
आजन्मवर्जिताः पापास्ते प्रेताश्चापुनर्भवाः । भोजनोच्छिष्टपात्राणि यानि देहमलानि च ॥९४॥
निपातयंति ये तीर्थे ते प्रेता नात्र संशयः । दानमानार्चनैर्नैव यै विप्रा भुवि तर्पिताः ॥९५॥
पितरो गुरवश्चैव प्रेतास्ते कर्मजा भृशम् । पतिं त्यक्त्वा च या नार्यो वसंति चेतरैर्जनैः ॥९६॥
प्रेतलोके चिरं स्थित्वा जायंते चांत्ययोनिषु । पतिं च वंचयित्वा या विषयेंद्रियमोहिताः ॥९७॥
मिष्टं चादंति याः पापास्तास्तु प्रेताश्चिरं भुवि । विण्मूत्रभक्षका ये च ब्रह्मस्वभक्षणे रताः ॥९८॥
अभक्ष्यभक्षकाश्चान्ये ते प्रेताश्चापुनर्भवाः । बलाद्ये परवस्तूनि गृह्णंति न ददत्यपि ॥९९॥
अतिथीनवमन्यंते प्रेता निरयमास्थिताः । तस्मादामलकीं भुक्त्वा स्नात्वा तस्य द्रवेण च॥१००॥
सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सेवयामलकीं शिवाम् ॥१०१॥
य इदं शृणुयान्नित्यं पुण्याख्यानमिदं शुभम् । सर्वपापप्रपूतात्मा विष्णुलोके महीयते ॥१०२॥
श्रावयेत्सततं लोके वैष्णवेषु विशेषतः । स याति विष्णुसायुज्यमिति पौराणिका विदुः॥१०३॥

तथा म्लेच्छो से जीविका प्राप्त करने वाले, म्लेच्छों का अनुगमन करने वाले, स्त्री के धन से ही अपनी जीविका चलाने वाले ॥८८॥ तथा अपनी स्त्री की रक्षा नहीं करने वाले निश्चित रूप से मरकर प्रेत होते हैं । भूख से व्याकुल घर पर आये हुए ब्राह्मण अतिथि को भोजनादि न कराकर लौटा देने वाले मर कर पिशाच होते हैं । जो लोग गौ

संस्थिता सर्वलोकेषु पोषणाय हिताय वा । सुमतिर्नाम या प्रोक्ता सा माता परिकथ्यते॥६२॥

और जङ्गमों में जाकर उन सबों के साथ मोह किये ॥४७-४८॥ आप पापमय तथा मायामोह मय योनि द्वार, दोनो स्तन, दोनों नितम्ब तथा जवानी से मोहित होते हैं उन सबों में हृदय के मांस की अधिक वृद्धि होती है। वह संसारियों के पतन का साधन है, उसे मोह (अज्ञान) स्वरूप बतलाया गया है ॥४९-५०॥ जिसको तुम नारी कहते हो वह नारी नहीं है उसको तो ब्रह्मा अपने मनोविनोद के लिए बनाते हैं ॥५१॥ नारी तथा पुरुष दोनों का जीव एक समान सर्वत्र रहता है । जो मनुष्य स्तन तथा योनि के संबन्ध से रहित है वे जीवन्मुक्त हैं ॥५२॥ पुरुष को नर कहा गया है और प्रकृति को नारी कहा जाता है । मुक्त जीव उसके साथ कभी भी रमण नहीं करते हैं ॥५३॥ पुरुषों में आप प्रकृति से युक्त दिखते हैं । कौन किससे लज्जा करता है ? इस बात को जानकर तुम सुखी हो जाओ ॥५४॥ अब मैं वृद्धा नारी को बतलाता हूँ । जो सदा वृद्ध होती है जो अपने अङ्गो में सुन्दरी होती है केवल उसके चमड़े जर्जर हो जाते हैं ॥५५॥ उस समय उसके केश उजले हो जाते हैं, वह पलित से व्याकुल हो जाती है, वह बलहीन तथा दीनता से युक्त हो जाती है ॥५६॥ वह नारी वृद्धा नहीं होती है वि

मैं युवती का वर्णन करता हूँ ॥५७॥ जीव के

के द्वारा नित्य ही बढ़ती रहती है । वह वृद्धा औ

है, उसी से लज्जा करनी चाहिए, मैं दूसरी भी बातें बतलाता हूँ ॥५९॥ जिसको तुमने माता कहा है वह कौन है उसे मैं बतलाता हूँ । प्राणियों के अङ्गों में जो हमेशा चेतना बनी रहती है जो परमात्मज्ञान को प्रदान

हरिरुवाच

नदीनां जाह्नवी श्रेष्ठा प्रमदानां पतिव्रता । मनुष्याणां प्रजापालो देवानां च जनार्दनः ॥४९॥
पतिव्रता च या नारीपत्युर्नित्यं हिते रता। कुलद्वयस्य पुरुषानुद्धरेत्सा शतंशतम् ॥५०॥
स्वर्गं भुनक्ति तावच्च यावदाभूतसंप्लवम् । स्वर्गाद्भ्रष्टो भवेद्वास्याः सार्वभौमो नृपः पतिः ॥५१॥
अस्यैव महिषी भूत्वा सुखं विंदेदनंतरम् । पुनः पुनः स्वर्गराज्यं तस्य तस्या न संशयः ॥५२॥
एवं जन्मशतं प्राप्य अंते मोक्षो भवेद् ध्रुवम्।

विप्र उवाच

पतिव्रता भवेत्का वा तस्याः किं वा च लक्षणम् ॥५३॥
ब्रूहि मे द्विजशार्दूल यथा जानामि तत्त्वतः।

हरिरुवाच

पुत्राच्छतगुणं स्नेहाद्राजानं च भयादथ ॥५४॥
आराधयेत्पतिं शौरिं या पश्येत् सा पतिव्रता । कार्ये दासी रतौ वेश्या भोजने जननी समा ॥५५॥
विपत्सु मंत्रिणी भर्तुः सा च भार्या पतिव्रता । भर्तुराज्ञां न लंघेद्या मनोवाक्कायकर्मभिः ॥५६॥
भुंक्ते पत्यौ सदा चात्ति सा च भार्या पतिव्रता । यस्यां यस्यां तु शय्यायां पतिः स्वपिति यत्नतः ॥५७॥
तत्र तत्र च सा भर्तुरर्चां करोति नित्यशः। नैव मत्सरमायाति न कार्पण्यं न मानिनी ॥५८॥
मानेऽमाने समानं च या पश्येत्सा पतिव्रता। सुवेषं या नरं दृष्ट्वा भ्रातरं पितरं सुतम् ॥५९॥
मन्यते च परं साध्वी सा च भार्या पतिव्रता। तां गच्छ द्विजशार्दूल वद कामं यथा तव ॥६०॥

है और देवताओं में भगवान् जनार्दन श्रेष्ठ हैं ॥४९॥ जो नारी पतिव्रता होती है, वह सदा पति का कल्याण करती रहती है । वह अपने पिता तथा पति दोनों कुलों के सौ पीढी के पूर्वजों का उद्धार कर देती है ॥५०। वह प्रलयकाल पर्यन्त स्वर्ग का भोग भोगती हैं जब उसका पति स्वर्ग से गिरता है तो वह सार्वभौम राजा होता है ॥५१॥ वह उसी की पटरानी होकर सुख को प्राप्त करती है । उसको तथा उसके पति को बार-बार स्वर्ग का राज्य प्राप्त होता है॥५२॥ इस तरह सौ जन्म प्राप्त करने के बाद उसकी मुक्ति हो जाती है । **विप्र ने कहा**— कौन सी नारी पतिव्रता होती है ? उसका लक्षण क्या होता है ? हे द्विजश्रेष्ठ मुझे आप इन सारी बातों को बतायें जिससे कि मैं उसे तत्त्वतः जान सकूँ । **श्रीहरि ने कहा**— जो पुत्र की अपेक्षा पति से सौ गुना स्नेह करती हो, वह राजा से भी अधिक अपने पति से डरती हो ॥५३-५४॥ तथा पति को भगवान् का रूप समझकर उसकी आराधना करती हो, वही प्रतिव्रता है। वह दासी के समान पति के कर्मों को करती है तथा रतिकाल में वेश्या के समान व्यवहार करती है तथा माता के समान वह पति को भोजन कराती है ॥५५॥ विपत्ति में पति को सलाह देती है, ऐसी ही पत्नी पतिव्रता है । जो मन, वाणी तथा शरीर से कभी भी पति की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते है ॥५६॥ पति के भोजन कर लेने पर ही भोजन करती है, ऐसी पत्नी पतिव्रता होती है । जिस-जिस शय्या पर पति सोते हैं ॥५७॥ वहाँ जाकर पति की पूजा करती है, वह पति से न तो इर्ष्या करती है, न तो कृपणता करती हौ और न तो मान करती है ॥५८॥ पति के द्वारा किए जाने वाले मान तथा अपमान को जो एक समान मानती है, वही पत्नी पतिव्रता होती है । वह सुन्दर वेष धारण किए पुरुष को देखकर उसे भाई, पिता और पुत्र मानती हैं ॥५९॥ वही स्त्री पतिव्रता है । हे द्विजश्रेष्ठ ! उसके पास जाइये और उससे अपने कल्याण की बातें पूछिये ॥६०॥ उसकी कई सौते हैं, उन सबों में वह सुन्दरी रूप

गुरूजनों का उचित समादर और सेवा-शुश्रूषा नहीं की। अतः हे जीव! अब तुम अपने दुष्कर्मों का फल भोगो।।३९।।

न धर्मबुद्ध्या पतिरेव सेवितो, ¹कुटम्ब सेवा न कृता मृते पतौ।
वैधव्यमासाद्य तपो न सेवितं, देहिन्! क्वचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम्॥४०॥

तूने अपना धर्म समझ कर पति की सेवा नहीं की और पति की मृत्यु हो जाने पर अपने कुटुम्ब की सेवा भी नहीं की। विधवा हो जाने पर तपश्चर्यामय जीवन भी नहीं बिताया। अतः हे जीव! अब तुम अपने दुष्कर्मों का फल भोगो।।४०।।

मासोपवासैर्न विशोषितं मया, चान्द्रायणैर्वा नियमैः सविस्तरैः।
नारीशरीरं बहुदुःखभाजनं, लब्धं मया पूर्वकृतैर्विकर्मभिः॥४१॥

मैंने एक मास तक चलने वाले व्रतोपवास से अथवा चान्द्रायण² से अथवा विधवा के लिए विहित अन्य विस्तृत धार्मिक नियमों से शरीर को नहीं सुखाया। मैंने पूर्वजन्म में किये हुए दुष्कर्मों के फलस्वरूप ही बहुत से दुःखों को भोगने के लिए नारी का शरीर प्राप्त किया था।।४१।।

एवं विलप्य बहुशो संस्मरन् पूर्वदेहिकम्। मानुषत्वं मम कुत इति क्रोशन् प्रसर्पति॥४२॥

इस प्रकार बहुत विलाप करके और अपने पहले शरीर का स्मरण करके 'मेरा मानुषपन कहाँ गया?' ऐसा कह कर रोते हुए वह यममार्ग में चलता है।।४२।।

दशसप्तदिनान्येको वायुवेगेन गच्छति। अष्टादशे दिने तार्क्ष्य! प्रेतः सौभ्यपुरं व्रजेत्॥४३॥

---

१. वह्निप्रवेशो न कृतो

२. शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को मात्र एक पिण्ड (एक ग्रास) भोजन करके तदनन्तर प्रतिदिन एक-एक पिण्ड बढ़ाकर भोजन करना और पूर्णिमा के पश्चात् कृष्णपक्ष प्रतिपदा से अमावस्या तक एक एक पिण्ड (ग्रास) कम भोजन करना चान्द्रायण व्रत कहलाता है। प्रतिदिन तीन बार स्नान आदि नियमों का पालन भी इसमें किया जाता है। चान्द्रायण के नाना भेदों में यवमध्य चान्द्रायण, पिपीलिका चान्द्रायण, यतिचान्द्रायण, शिशुचान्द्रायण को गिनाया गया है ; द्र० मनु ११/२१६-२२०; याज्ञवल्क्य २/३२३-३२५; विष्णुस्मृति ४७/१-६ तथा पुराणविषयानुक्रमणी (विधि एवं आचार) पृ० २७४-२७५)

हे गरुड़! ... अट्ठारहवें दिन सौम्यपुर में पहुँचता है।।४...

तस्मिन् पुरवरे ... ः प्रियदर्शनः

उस पुर ... का वृक्ष है, जो देखने में बहुत प्रिय लगता ...

पुरे तत्र स विश्राम प्राप्यते यमकिङ्करैः। दारपुत्रादिकं सौख्यं स्मरते तत्रः दुःखितः॥४५॥

उस पुर में यमदूत उस प्रेत को विश्राम कराते हैं। वहाँ दुःखी होकर वह स्त्री, पुत्र आदि विषयक सुख का स्मरण करता है।।४५।।

धनानि भृत्यपौत्राणि सर्वं शोचति वै यदा।
स्थिताः प्रेतास्तु तत्रत्याः किङ्कराश्चेदमब्रुवन्॥४६॥

क्व धनं? क्व सुता जाया? क्व सुहृद्? क्व च बान्धवाः?
... र्जितं भोक्ता मूढ! याहि चिरं पथि॥४७॥

... पुत्र और अपने धन तथा भृत्यों आदि का स्मरण करता है, तो वहाँ के निवासी प्रेत तथा यमकिङ्कर उससे यह कहते हैं कि कहाँ धन, कहाँ पुत्र, कहाँ मित्र और कहाँ बान्धव? जीव अपने कर्मों का

श्ववराहखरान् हत्वा शौद्रमेव व्रतं चरेत् ।
मार्जारचाषमण्डूकान् काकं व्यालं च मूषिकम् ।। ५८ ।।
उक्तः पशुसमो दोषो राजन् प्राणिनिपातनात् ।

कुत्ते, सूअर और गदहोंकी हत्या करके मनुष्य शूद्रवध-सम्बधी व्रतका ही आचरण करे। राजन्! बिल्ली, नीलकण्ठ, मेढक, कौआ, साँप और चूहा आदि प्राणियोंको मारनेसे भी उक्त पशुवधके ही समान पाप बताया गया है ।। ५८½ ।।

प्रायश्चित्तान्यथान्यानि प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ।। ५९ ।।
अल्पे वाप्यथ शोचेत पृथक् संवत्सरं चरेत् ।
त्रीणि श्रोत्रियभार्यायां परदारे च द्वे स्मृते ।। ६० ।।
काले चतुर्थे भुञ्जानो ब्रह्मचारी व्रती भवेत् ।
स्थानासनाभ्यां विहरेत् त्रिरह्नाभ्युपयन्नपः ।
एवमेव निराकर्ता यश्चाग्नीनपविध्यति ।। ६१ ।।

अब दूसरे प्रायश्चित्तोंका भी क्रमशः वर्णन करता हूँ। अनजानमें कीड़ों-मकोड़ोंका वध आदि छोटा पाप हो जाय तो उसके लिये पश्चात्ताप करे। इतनेहीसे उसकी शुद्धि हो जा... है। गोवधके सिवा अन्य जितने उपपातक हैं उनमेंसे प्रत्येकके लिये एक-एक व... व्रतका आचरण करे। श्रोत्रियकी पत्नीसे व्यभिचार करनेपर तीन वर्षतक और अ... परस्त्रियोंसे समागम करनेपर दो वर्षोंतक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए दिनके चौथे पहरमें एक बार भोजन करे। अपने लिये पृथक् स्थान और आसनकी व्यवस्था रखते हुए घूमता रहे। दिनमें तीन बार जलसे स्नान करे। ऐसा करनेसे ही वह अपने उपर्युक्त पापोंका

समांसैर्भोजनैः स्निग्धैर्मद्यैर्गन्धविलेपनैः।
वस्त्रैर्मनोरमैर्माल्यैः कामः स्त्रीषु विजृम्भते॥३५॥

दुर्जन, शिल्पी, दास, दुष्ट व्यक्ति, ढक्का वाद्य तथा स्त्री, ताड़न से ही ये नम्र होते हैं। ये सत्कार के भागी नहीं होते। किसी काम के लिये लगाये जाने पर भृत्य का स्वभाव पता चलता है। दुःख काल में बन्धुओं की परीक्षा होती है। आपत्ति में मित्र का स्वभाव पता चलता है। सम्पत्ति नाश होने पर पत्नी के भाव का ज्ञान होता है। स्त्री पुरुष से दूना भोजन करती है। उनकी बुद्धि चौगुनी होती है। उनमें काम वासना पुरुष से आठ गुनी अधिक होती है। निद्रा द्वारा निद्रा पर विजय नहीं मिलती। काम क्रीड़ा से स्त्री पर विजय नहीं होती। काठ द्वारा कोई अग्नि को नहीं जीत सकता। मद्य पीने से कोई तृष्णा को नहीं जीत सकेगा। मांसादि स्निग्ध आहार, कई तरह की मदिरा, मनोहर अच्छे वस्त्र तथा उत्तम माला से स्त्री में काम भाव प्रकट होता है॥३१-३५॥

ब्रह्मचर्य्येऽपि वक्तव्यं प्राप्तं मन्मथचेष्टितम्।
हृद्यं हि पुरुषं दृष्ट्वा योनिः प्रक्लिद्यते स्त्रियाः॥३६॥
सुवेशं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं यदि वा सुतम्।
योनिः क्लिद्यति नारीणां सत्यं सत्यं हि शौनक॥३७॥
नद्यश्च नार्य्यश्च समस्वभावाः स्वतन्त्रभावे गमनादिकञ्च।
तोयैश्च दोषैश्च निपातयन्ति नद्यो हि कूलानि कुलानि नार्य्यः॥३८॥
नदी पातयते कूलं नारी पातयते कुलम्।
नारीणाञ्च नदीनाञ्च स्वच्छन्दा ललिता गतिः॥३९॥

ब्रह्मचर्य स्थिति में पुरुष का कामभाव उभरता है। मनोहर व्यक्ति को देख कर स्त्रियों की योनि से स्राव होने लगता है। पिता प्रभृति गुरुजन, किसी भिक्षुक अथवा उत्तम पोशाक वाले धनी को देखकर स्त्रियों की कामभावना दीप्त हो उठती है। हे शौनक! मेरा यह वचन सत्य है। नदी तथा नारी का स्वभाव एक तरह का होता है। नदी (कूल) किनारे को गिरा देती है। नारी कुल को नष्ट कर देती है। दोनों की ही यह स्वच्छन्द तथा ललित गति है॥३६-३९॥

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना॥४०॥

अग्नि में चाहे कितनी ही लकड़ी छोड़ी जाय, अग्नि की तृप्ति नहीं होती, उसे और भी लकड़ी को भस्म करने की कामना बनी रहती है। समुद्र में चाहे जितनी नदियां गिरें, वह तृप्त नहीं होता। यम सभी प्राणियों का संहार करके भी तृप्त नहीं होते। नारियों की आकांक्षा अनेक पुरुषों के संभोग से भी तृप्त नहीं होती!॥४०॥

न तृप्तिरस्ति शिष्टानामिष्टानां प्रियवादिनाम्।
सुखानाञ्च सुतानाञ्च जीवितस्य वरस्य च॥४१॥
राजा न तृप्तो धनसञ्चयेन न सागरस्तृप्तिमगाज्जलेन।
न पण्डितस्तृप्यति भाषितेन तृप्तं न चक्षुर्नृपदर्शनेन॥४२॥
स्वकर्मधर्मार्जितजीवितानां शास्त्रेषु दारेषु सदा रतानाम्।
जितेन्द्रियाणामतिथिप्रियाणां गृहेऽपि मोक्षः पुरुषोत्तमानाम्॥४३॥

शिष्ट पुरुष से बातें करके कोई भी वितृष्ण नहीं होता, साधु व्यक्ति से जितनी भी बात करिये बात करने की इच्छा बलवती होती जाती है। वांछित सुख से किसी की तृप्ति नहीं होती। प्रिय वाणी वाले पुत्र से कोई तृप्त नहीं होता। अपने जीवन से किसी की तृप्ति नहीं होती (वह और भी जीते रहना चाहता है)। राजा धन से, महासमुद्र जल से, पण्डित विद्वान् सत्कथा से, नेत्र नृप दर्शन से कभी तृप्त नहीं होते। अपने धर्म-कर्म के प्रति तत्पर, शास्त्र में तथा केवल अपनी पत्नी में रत, इन्द्रियजित-अतिथिप्रिय लोग ही श्रेष्ठतम मनुष्य होते हैं। वे गृही रहकर भी मोक्ष पाते हैं॥४१-४३॥

मनोऽनुकूलाः प्रमदा रूपवत्यः स्वलङ्कृताः।
वासः प्रासादपृष्ठेषु स्वर्गः स्याच्छुभकर्मणः॥४४॥
न दानेन न मानेन नार्जवेन न सेवया। न शास्त्रेण न शस्त्रेण सर्वथा विषमाः स्त्रियः॥४५॥

सत्कर्म करने वाले व्यक्ति अनुकूला मनोहर अलंकारों से सजी पत्नी को पाकर अट्टालिका में रहकर स्वर्गसुख भोगते हैं। स्त्रियां सर्वदा विषम बुद्धि होती हैं। उनको कोई भी दान-सम्मान से सन्तुष्ट नहीं कर पाता। उनको सरल व्यवहार तथा सेवा से भी वशीभूत नहीं कर सकते। अस्त्र से डराकर तथा शास्त्रोपदेश से भी उन पर नियन्त्रण नहीं हो पाता॥४४-४५॥

शनैर्विद्या शनैरर्थाः शनैः पर्वतमारुहेत्। शनैः कामञ्च धर्मञ्च पञ्चैतानि शनैः शनैः॥४६॥

द्वादशोऽध्यायः ।

अथ विविधपापकरणे दण्डविधानवर्णनम् ।

शूद्रो द्विजातीनभिसन्धायाभिहत्य च वाग्दण्डपारुष्याभ्यामङ्ग-मोच्यो येनोपहन्यादार्यस्त्र्यभिगमने लिङ्गोद्धारः स्वहरणञ्च गोप्ता चेद्वधोऽधिकोऽथ हास्य वेदमुपश्रृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूरणमुदाहरणे जिह्वाच्छेदो धारणे शरीरभेद आसनशयनवाक्पथिषु समप्रेप्सुर्दण्डयः शतम् ॥१॥

शूद्र यदि द्विजो पर वाणी और दण्ड की कठोरता से बलपूर्वक चोट करे तो राजा को चाहिये कि वह उसे उसी अंग से हीन कर दे जिससे उसने चोट की है । आर्य स्त्री से संभोग करने पर उसका लिङ्ग काट डाला जाए और उसका धन छीन लिया जाए । यदि वह उसका रक्षक भी है तो उसके लिये उससे बड़े दण्ड का विधान है । वेद को सुनने वाले (शूद्र) के लिये उसके कानों को रांग और लाख से भरना, उच्चारण करने पर जिह्वा छेदन और धारण करने पर शरीरभेदन दण्ड है । आसन, शयन, वाणी और मार्ग में समानता चाहने वाला शूद्र सौ मुद्राओं के दण्ड का भागी है ।

क्षत्रियो ब्राह्मणाक्रोशे दण्डपारुष्ये द्विगुणमध्यर्धं वैश्योब्राह्मणस्त

संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ॥
याजनाध्यापनाद्यौनादन्नपानासनादपि ॥

इन सब विषयोंमें पंडितोंने कहा है कि, पतितके साथ एक वर्ष तक संग, एक वर्ष तक यज्ञ करना, पढाना, संबन्ध करना, भोजन, जलपान, बैठना इनके करनेसे मनुष्य पतित होता है ।

अथाप्युदाहरंति-

विद्या प्रनष्टा पुनरभ्युपैति जातिप्रणाशे त्विह सर्वनाशः ॥
कुलापदेशेन हयोऽपि पूज्यस्तस्मात्कुलीनां स्त्रियमुद्वहंतीति ॥

और यह भी कहा है कि "विद्या नष्ट होने पर फिर भी मिल सकती है, परन्तु जातिका नाश होने पर सर्व नाश हो जाता है, वंशकी मर्यादाके बलसे घोडा भी सन्मान पाता है इस कारण अच्छे वंशकी स्त्रीके साथ विवाह करे; "

त्रयो वर्णा ब्राह्मणस्य वशे वर्तेरन् तेषां ब्राह्मणो धर्मं यं ब्रूयात्तं राजा चानुतिष्ठेत्। राजा तु धर्मेणानुशासत् षष्ठं षष्ठं धनस्य हरेत् । अन्यत्र ब्राह्मणान् । इष्टापूर्तस्य तु षष्ठमंशं भजति ॥ इति ह ब्राह्मणो वेदमाद्यं करोति । ब्राह्मण आपद उद्धरति । तस्माद्ब्राह्मणोऽनाद्यः सोमोऽस्य राजा भवतीतीह प्रेत्य चाभ्युदयिकमिति ह विज्ञायते ॥

इति श्रीवाशिष्ठे धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्ववराहखरान् हत्वा शौद्रमेव व्रतं चरेत् ।
मार्जारचाषमण्डूकान् काकं व्यालं च मूषिकम् ।। ५८ ।।
उक्तः पशुसमो दोषो राजन् प्राणिनिपातनात् ।

कुत्ते, सूअर और गदहोंकी हत्या करके मनुष्य शूद्रवध-सम्बधी व्रतका ही आचरण करे। राजन्! बिल्ली, नीलकण्ठ, मेढक, कौआ, साँप और चूहा आदि प्राणियोंको मारनेसे भी उक्त पशुवधके ही समान पाप बताया गया है ।। ५८½ ।।

प्रायश्चित्तान्यथान्यानि प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ।। ५९ ।।
अल्पे वाप्यथ शोचेत पृथक् संवत्सरं चरेत् ।
त्रीणि श्रोत्रियभार्यायां परदारे च द्वे स्मृते ।। ६० ।।
काले चतुर्थे भुञ्जानो ब्रह्मचारी व्रती भवेत् ।
स्थानासनाभ्यां विहरेत् त्रिरह्नाभ्युपयन्नपः ।
एवमेव निराकर्ता यश्चाग्नीनपविध्यति ।। ६१ ।।

अब दूसरे प्रायश्चित्तोंका भी क्रमशः वर्णन करता हूँ। अनजानमें कीड़ों-मकोड़ोंका वध आदि छोटा पाप हो जाय तो उसके लिये पश्चात्ताप करे। इतनेहीसे उसकी शुद्धि हो जाती है। गोवधके सिवा अन्य जितने उपपातक हैं उनमेंसे प्रत्येकके लिये एक-एक वर्ष व्रतका आचरण करे। श्रोत्रियकी पत्नीसे व्यभिचार करनेपर तीन वर्षतक और अन्य परस्त्रियोंसे समागम करनेपर दो वर्षोंतक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए दिनके चौथे पहरमें एक बार भोजन करे। अपने लिये पृथक् स्थान और आसनकी व्यवस्था रखते हुए घूमता रहे। दिनमें तीन बार जलसे स्नान करे। ऐसा करनेसे ही वह अपने उपर्युक्त पापोंका

Md Abid @MdAbid942072 · 15m

Replying to @__AeroRavi21 and @ArunKosli

इस को पढ़ के बताना सुअर की तट्टी अधिक नीच है
या तुम्हारी जाति
हिंदू धर्म अनुसार

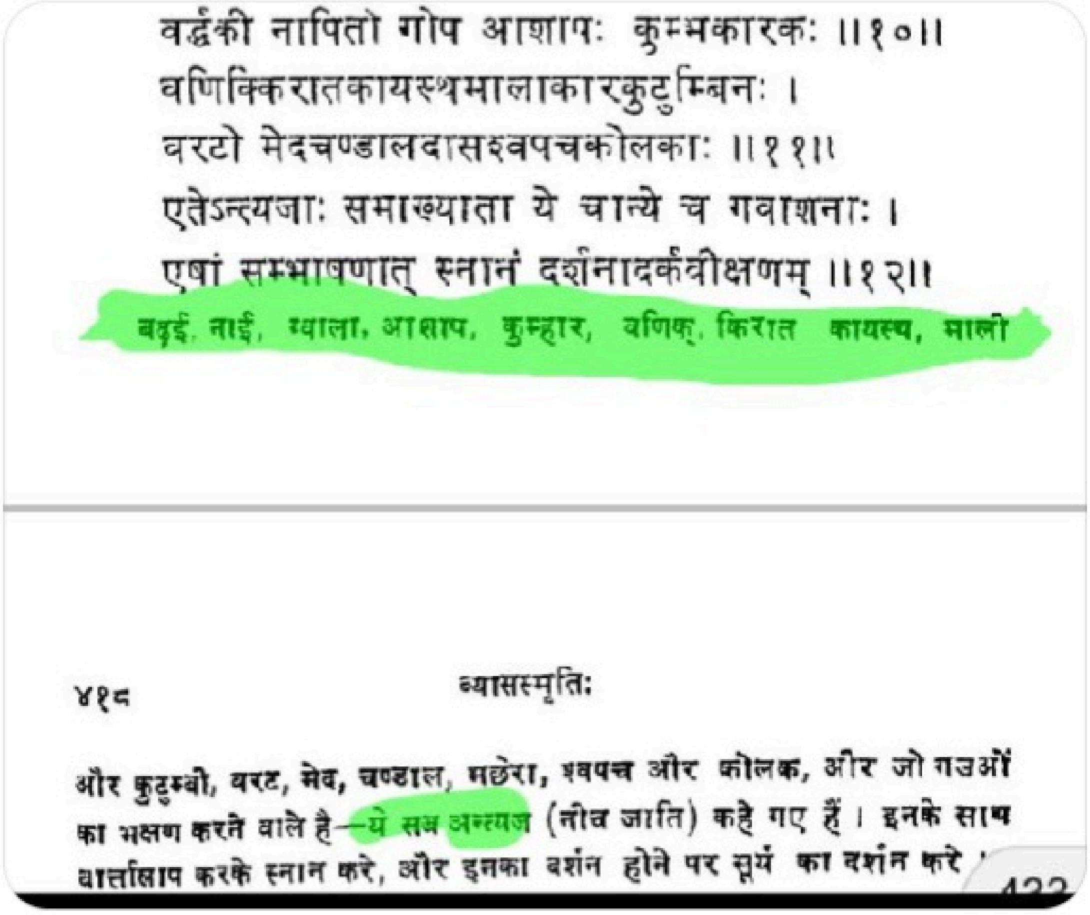

वर्द्धकी नापितो गोप आशापः कुम्भकारकः ॥१०॥
वणिक्किरातकायस्थमालाकारकुटुम्बिनः ।
वरटो मेदचण्डालदासश्वपचकोलकाः ॥११॥
एतेऽन्त्यजाः समाख्याता ये चान्ये च गवाशनाः ।
एषां सम्भाषणात् स्नानं दर्शनादर्कवीक्षणम् ॥१२॥
बढ़ई, नाई, ग्वाला, आशाप, कुम्हार, वणिक्, किरात कायस्थ, माली

४१८ व्यासस्मृतिः

और कुटुम्बी, वरट, मेद, चण्डाल, मछेरा, श्वपच और कोलक, और जो गउओं का भक्षण करने वाले है—ये सब अन्त्यज (नीच जाति) कहे गए हैं। इनके साथ वार्तालाप करके स्नान करे, और इनका दर्शन होने पर सूर्य का दर्शन करे।

1 · 1

Dr. Ravi Yaduwan... @__AeroRavi21

Follow

Replying to @MdAbid942072 and @ArunKosli

is writer ko bhi lattha ki jarurat hai

Md Abid @MdAbid942072 · 15m

Replying to @__AeroRavi21 and @ArunKosli

इस को पढ़ के बताना सुअर की तट्टी अधिक नीच है
या तुम्हारी जाति
हिंदू धर्म अनुसार

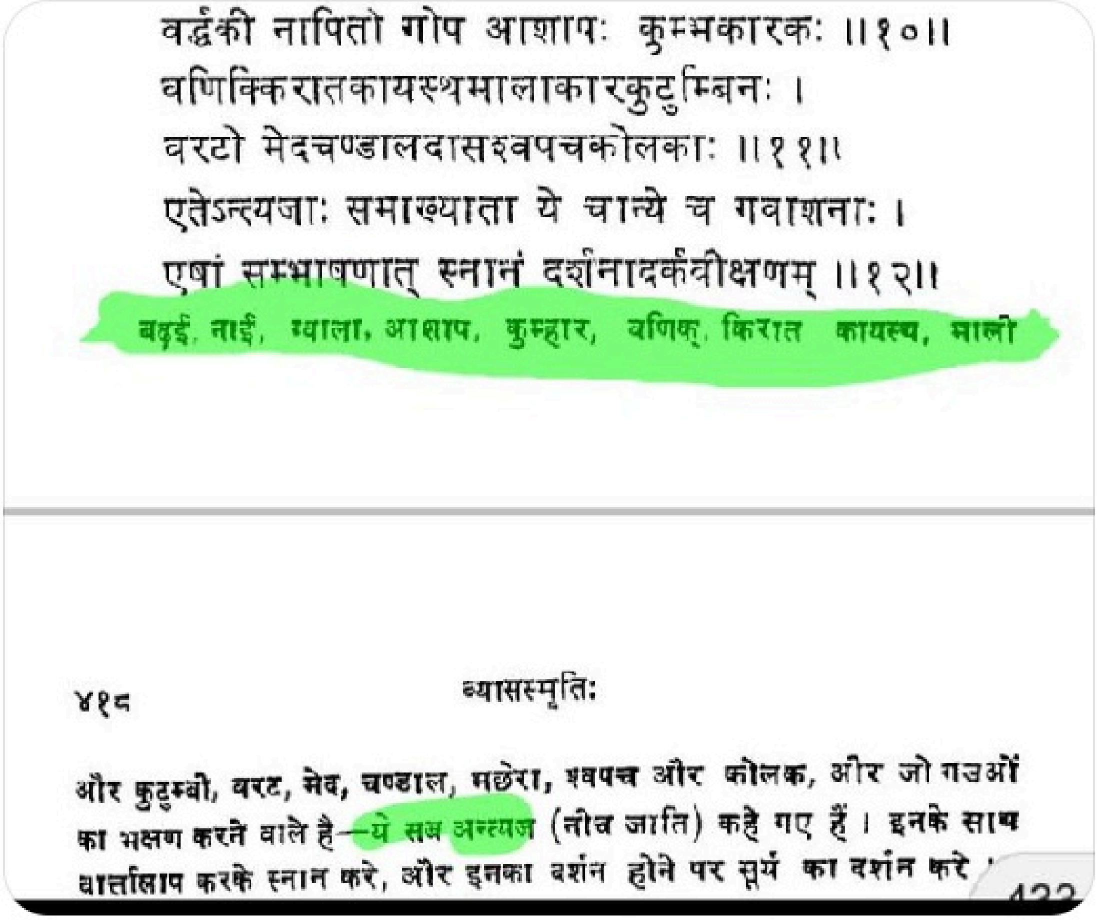

वर्द्धकी नापितो गोप आशाप: कुम्भकारक: ।।१०।।
वणिक्किरातकायस्थमालाकारकुटुम्बिन: ।
वरटो मेदचण्डालदासश्वपचकोलका: ।।११।।
एतेऽन्त्यजा: समाख्याता ये चान्ये च गवाशना: ।
एषां सम्भाषणात् स्नानं दर्शनादर्कवीक्षणम् ।।१२।।
बढ़ई, नाई, ग्वाला, आशाप, कुम्हार, वणिक्, किरात कायस्थ, माली

४१८ व्यासस्मृति:

और कुटुम्बी, वरट, मेद, चण्डाल, मछेरा, श्वपच और कोलक, और जो गउओं का भक्षण करने वाले है—ये सब अन्त्यज (नीच जाति) कहे गए हैं। इनके साथ वार्तालाप करके स्नान करे, और इनका दर्शन होने पर सूर्य का दर्शन करे।

1 · 1

Dr. Ravi Yaduwan... @__AeroRavi21 · Follow

Replying to @MdAbid942072 and @ArunKosli

is writer ko bhi lattha ki jarurat hai

8:24 pm · 08 Dec 24 · 1 View

उत ब्रह्माणो मरुतो मे अस्येन्द्रः सोमस्य सुषुतस्य पेयाः.
तद्धि हव्यं मनुषे गा अविन्ददहन्नहिं पपिवाँ इन्द्रो अस्य.. (३)

हे महान् मरुतो! तुम इंद्र के साथ मिलकर इस भली प्रकार निचोड़े गए सोम को पिओ. इसी हव्य ने यजमान को गाएं दिलाई हैं एवं इसी को पीकर इंद्र ने अहि को मारा था. (३)

आद्रोदसी वितरं वि ष्कभायत्संविव्यानश्चिद्भियसे मृगं कः.
जिगर्तिमिन्द्रो अपजर्गुराणः प्रति श्वसन्तमव दानवं हन्.. (४)

इंद्र ने सोमरस पीने के बाद ही विस्तृत धरती-आकाश को स्तंभित किया था एवं गतिशील बनकर हिरन के समान भागते हुए वृत्र को डराया था. इंद्र ने छिपे हुए एवं सांस लेते हुए वृत्र को आच्छादनरहित करके मारा. (४)

अध क्रत्वा मघवन्तुभ्यं देवा अनु विश्वे अददुः सोमपेयम्.
यत्सूर्यस्य हरितः पतन्तीः पुरः सतीरुपरा एतशे कः.. (५)

हे धनस्वामी इंद्र! तुम्हारे इस कार्य के बदले सभी देवों ने तुम्हें पीने के लिए सोम दिया था. तुमने एतश ऋषि के कल्याण के लिए सामने से आते हुए सूर्य के घोड़ों को रोक दिया था. (५)

नव यदस्य नवतिं च भोगान्त्साकं वज्रेण मघवा विवृश्चत्.
अर्चन्तीन्द्रं मरुतः सधस्थे त्रैष्टुभेन वचसा बाधत द्याम्.. (६)

जब धन के स्वामी इंद्र ने शंबर के निन्यानवे नगरों को वज्र द्वारा एक साथ नष्ट कर दिया था, तब मरुतों ने युद्धभूमि में ही त्रिष्टुप् छंद द्वारा इंद्र की स्तुति की थी. इंद्र ने मरुतों की स्तुति से शक्तिशाली बनकर शंबर को बाधा पहुंचाई. (६)

सखा सख्ये अपचत्तूयमग्निरस्य क्रत्वा महिषा त्री शतानि.
त्री साकमिन्द्रो मनुषः सरांसि सुतं पिबद्वृत्रहत्याय सोमम्.. (७)

अग्नि ने अपने मित्र इंद्र के लिए शीघ्र ही तीन सौ भैंसों को पकाया था. इंद्र ने वृत्र को मारने के लिए मनु के तीन पात्रों में भरे हुए सोम को एक साथ पी लिया था. (७)

त्री यच्छता महिषाणामघो मास्त्री सरांसि मघवा सोम्यापाः.
कारं न विश्वे अह्वन्त देवा भरमिन्द्राय यदहिं जघान.. (८)

******ebook converter DEMO Watermarks*******

हे धनस्वामी इंद्र! जब तुमने तीन सौ भैंसों का मांस खाया, सोमरस से भरे तीन पात्रों को पिया एवं वृत्र को मारा, तब सब देवों ने सोमपान से पूर्ण तृप्त इंद्र को उसी प्रकार बुलाया, जिस प्रकार मालिक अपने दास को बुलाता है. (८)

उशना यत्सहस्यै३रयातं गृहमिन्द्र जूजुवानेभिरश्वैः.
वन्वानो अत्र सरथं ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्ह शुष्णम्.. (९)

हे इंद्र! जब तुम और उशना कवि सबको पराजित करने वाले एवं शीघ्र चलने वाले घोड़ों के द्वारा कुत्स ऋषि के घर गए थे, उस समय तुम शत्रुओं की हिंसा करते हुए समस्त देवों एवं कुत्स के साथ एक रथ पर बैठकर चले थे. तुमने शुष्ण असुर को मारा था. (९)

प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य कुत्सायान्यद्वरिवो यातवेऽकः.
अनासो दस्यूँरमृणो वधेन नि दुर्योण आवृणङ्मृध्रवाचः.. (१०)

हे इंद्र! तुमने सूर्य के रथ के एक पहिए को पहले ही अलग कर दिया था एवं दूसरा पहिय[illegible] कि वह धन पा सके. तुमने शब्द न करने वाले दस्युओं को सं[illegible]रके मारा था. (१०)

[illegible]धयो वैदथिनाय पिप्रुम्.
आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन्पक्तीरपिबः सोममस्य.. (११)

हे इंद्र! गौरिवीति ऋषि के स्तोत्र तुम्हें बढ़ावें. तुमने विदधिन के पुत्र ऋजिश्वा के कल्याण के निमित्त पिप्रु नामक असुर को अपने वश में किया था. ऋजिश्वा ने तुम्हारी मित्रता पाने के लिए पुरोडाश पकाकर तुम्हारे सामने रखा था एवं तुमने उसका सोमरस पिया था. (११)

नवग्वासः सुतसोमास इन्द्रं दशग्वासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः.
गव्यं चिदूर्वमपिधानवन्तं तं चिन्नरः शशमाना अप व्रन्.. (१२)

नौ एवं दस महीनों तक चलने वाले यज्ञों के कर्त्ता अंगिरावंशीय ऋषियों ने सोम निचोड़कर स्तुतियों द्वारा इंद्र की पूजा की थी. स्तुति करते हुए अंगिरावंशीय ऋषियों ने असुरों द्वारा छिपाए हुए गोसमूह को छुटकारा दिलाया था. (१२)

कथो नु ते परि चराणि विद्वान्वीर्या मघवन्या चकर्थ.

अत्रिर्यद्वामवरोहन्नृबीसमजोहवीन्नाधमानेव योषा.
श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेनागच्छतमश्विना शन्तमेन.. (४)

हे अश्विनीकुमारो! हमारे पिता अत्रि ने तुम्हारी स्तुति की. यदि स्त्री की मनुहार की जाए तो वह पति की इच्छा पूर्ण करती है, उसी प्रकार अत्रि ऋषि ने अग्निदाह से छुटकारा पाया. हे अश्विनीकुमारो! तुम अपने सुखदायक रथ द्वारा बाज पक्षी की अद्वितीय चाल द्वारा हमारी रक्षा करने आओ. (४)

वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव.
श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम्.. (५)

हे लकड़ी के बने संदूक! तुम बच्चा जन्मती नारी की योनि के समान खुल जाओ. हे अश्विनीकुमारो! तुम मुझ सप्तवध्रि ऋषि की पुकार सुनकर इस संदूक से मुझे छुड़ाओ. (५)

भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये.
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः.. (६)

******ebook converter DEMO Watermarks*******

हे अश्विनीकुमारो! तुम भयभीत एवं प्रार्थना करते हुए सप्तवध्रि ऋषि के छुटकारे के लिए बंद संदूक को खोलो. (६)

यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः.
एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः.. (७)

सप्तवध्रि ऋषि अपनी पत्नी से कहते हैं—"हवा जिस प्रकार सरोवर के जल को सब ओर से कंपित करती है, उसी प्रकार तुम्हारा दस महीने का गर्भ गतिशील हो." (७)

यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति.
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा.. (८)

"वायु, वन एवं समुद्र जिस प्रकार कांपते हैं, उसी प्रकार तुम्हारा दस मास का गर्भ जरायु के साथ बाहर आवे." (८)

दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि.
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि.. (९)

"माता के गर्भ में दस मास तक सोने वाला कुमार संपूर्ण जीवधारी के रूप में जीवित माता के गर्भ से बाहर आवे." (९)

सूक्त—७९ देवता—उषा

महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती.
यः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते.. (१)

ा, शोभन जन्म वाली, स्तुति सुनकर अश्व प्रदान करने वाली एवं सत्य यश वाली उषादेवी! हमें अधिक धन पाने के लिए, जैसे पहले जगाया था, वैसे ही जागत

अस्माकमद्यान्तम स्ताम धिष्व महामह.
अस्माकं ते सवना सन्तु शन्तमा मदाय द्युक्ष सोमपाः.. (१५)

हे परमपूज्य इंद्र! आज अत्यंत समीपवर्ती हमारे स्तोम नामक यज्ञ को धारण करो. हे दीप्तिशाली एवं सोमरस पीने वाले इंद्र! तुम्हारे मद के लिए होने वाले हमारे यज्ञ कल्याणकारक हों. (१५)

नहि षस्तव नो मम शास्त्रे अन्यस्य रण्यति. यो अस्मान्वीर आनयत्.. (१६)

जो शूर इंद्र हमारा नेतृत्व करते हैं. वे मेरे, तुम्हारे अथवा किसी अन्य के शासन में प्रसन्न नहीं होते. (१६)

इन्द्रश्चिद्घा तदब्रवीत्स्त्रिया अशास्यं मनः. उतो अह क्रतुं रघुम्.. (१७)

इंद्र ने ही कहा था—"स्त्री के मन पर शासन संभव नहीं है स्त्री की बुद्धि छोटी होती है." (१७)

सप्ती चिद्घा मदच्युता मिथुना वहतो रथम्. एवेद्धूर्वृष्ण उत्तरा.. (१८)

सोमरस की ओर जाने वाले इंद्र के दोनों घोड़े रथ को वहन करते हैं. इस प्रकार कामवर्षक इंद्र का रथ सबसे श्रेष्ठ है. (१८)

अधः पश्यस्व मोपरि सन्तरां पादकौ हर.
मा ते कशप्लकौ दृशन्त्स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ.. (१९)

******ebook converter DEMO Watermarks*******

इंद्र ने कहा—"हे प्रायोगि! तुम नीचे देखो, ऊपर मत देखो. तुम पैरों को आपस में मिलाओ. तुम्हारे होंठों एवं कमर को कोई न देखे. तुम स्तोता होते हुए भी स्त्री हो." (१९)

सूक्त—३४ देवता—इंद्र

एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम्.
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो.. (१)

हे इंद्र! तुम अपने हरि [illegible] कण्वगोत्रीय ऋषियों की सुंदर स्तुति के सामने आओ. हे दीप्तहवि व[illegible] शासन करते हो, इसलिए द्युलोक में जाओ. (१)

आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण यच्छतु.
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो.. (२)

हे इंद्र! इस यज्ञ में सोमलता कुचलने के पत्थर तुम्हें सोम वाला कहते हुए तुम्हारे लिए सोम दें. हे दीप्त हवि वाले इंद्र! तुम द्युलोक का शासन करते हो, इसलिए द्युलोक में जाओ. (२)

अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः.
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो.. (३)

इस यज्ञ में सोमलता कुचलने वाले पत्थर सोमलता को इस प्रकार कंपित करते हैं, जिस प्रकार भेड़िया भेड़ को कंपाता है. हे दीप्त हवि वाले इंद्र! तुम द्युलोक का शासन करते हो, इसलिए द्युलोक में जाओ. (३)

आ त्वा कण्वा इहावसे हवन्ते वाजसातये.
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो.. (४)

हे इंद्र! कण्वगोत्रीय ऋषि तुम्हें रक्षा एवं अन्न पाने के लिए इस यज्ञ में बुलाते हैं. हे दीप्त हवि वाले इंद्र! तुम द्युलोक का शासन करते हो, इसलिए द्युलोक में जाओ. (४)

दधामि ते सुतानां वृष्णे न पूर्वपाय्यम्.
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो.. (५)

हे इंद्र! यज्ञ के प्रारंभ में जिस प्रकार अभिलाषापूरक वायु को सोमरस दिया जाता है, उसी प्रकार तुम्हें निचोड़ा हुआ सोमरस मैं दूंगा. हे दीप्त हवि वाले इंद्र! तुम द्युलोक का शासन करते हो, इसलिए द्युलोक में जाओ. (५)

2:44 PM

महाभारत, मनुस्मृति, अंगोंसहित चारों वेद और आयुर्वेद शास्त्र—ये चारों सिद्ध उपदेश देनेवाले हैं, अतः तर्कद्वारा इनका खण्डन नहीं करना चाहिये ।।

न ब्राह्मणान् परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् ।
महान् भवेत् परीवादो ब्राह्मणानां परीक्षणे ।।

धर्मको जाननेवाले पुरुषको देवसम्बन्धी कार्यमें ब्राह्मणोंकी परीक्षा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि ब्राह्मणोंकी परीक्षा करनेसे यजमानकी बड़ी निन्दा होती है ।।

श्वत्वं प्राप्नोति निन्दित्वा परीवादात् खरो भवेत् ।
कृमिर्भवत्यभिभवात् कीटो भवति मत्सरात् ।।

ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाला मनुष्य कुत्तेकी योनिमें जन्म लेता है, उसपर दोषारोपण करनेसे गदहा होता है और उसका तिरस्कार करनेसे कृमि होता है तथा उसके साथ द्वेष करनेसे वह कीड़ेकी योनिमें जन्म पाता है ।।

दुर्वृत्ता वा सुवृत्ता वा प्राकृता वा सुसंस्कृताः ।
ब्राह्मणा नावमन्तव्या भस्मच्छन्ना इवाग्नयः ।।

ब्राह्मण चाहे दुराचारी हों या सदाचारी, संस्कारहीन हों या संस्कारोंसे सम्पन्न, उनका अपमान नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे भस्मसे ढकी हुई आगके तुल्य हैं ।।

क्षत्रियं चैव सर्पं च ब्राह्मणं च बहुश्रुतम् ।
नावमन्येत मेधावी कृशानपि कदाचन ।।

बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि क्षत्रिय, साँप और विद्वान् ब्राह्मण यदि कमजोर हों तो भी कभी उनका अपमान न करे ।।

एतत् त्रयं हि पुरुषं निर्दहेदवमानितम् ।
तस्मादेतत् प्रयत्नेन नावमन्येत बुद्धिमान् ।।

क्योंकि वे तीनों अपमानित होनेपर मनुष्यको भस्म कर डालते हैं। इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको प्रयत्नपूर्वक उनके अपमानसे बचना चाहिये ।।

यथा सर्वास्ववस्थासु पावको दैवतं महत् ।
तथा सर्वास्ववस्थासु ब्राह्मणो दैवतं महत् ।।

जिस प्रकार सभी अवस्थाओंमें अग्नि महान् देवता हैं, उसी प्रकार सभी अवस्थाओंमें ब्राह्मण महान् देवता हैं ।।

व्यङ्गाः काणाश्च कुब्जाश्च वामनाङ्गास्तथैव च ।
सर्वे दैवे नियोक्तव्या व्यामिश्रा वेदपारगैः ।।

अंगहीन, काने, कुबड़े और बौने—इन सब ब्राह्मणोंको देवकार्यमें वेदके पारंगत विद्वान् ब्राह्मणोंके साथ नियुक्त करना चाहिये ।।

मन्युं नोत्पादयेत् तेषां न चारिष्टं समाचरेत् ।
मन्युप्रहरणा विप्रा न विप्राः शस्त्रपाणयः ।।

उनपर क्रोध न करे, न उनका अनिष्ट ही करे; क्योंकि ब्राह्मण क्रोधरूपी शस्त्रसे ही प्रहार करते हैं, वे शस्त्र हाथमें रखनेवाले नहीं हैं ।।

मन्युना घ्नन्ति ते शत्रून् वज्रेणेन्द्र इवासुरान् ।
ब्राह्मणो हि महद् दैवं जातिमात्रेण जायते ।।

जैसे इन्द्र असुरोंका वज्रसे नाश करते हैं, वैसे ही वे ब्राह्मण क्रोधसे शत्रुका नाश करते हैं; क्योंकि ब्राह्मण जातिमात्रसे ही महान् देवभावको प्राप्त हो जाता है ।।

ब्राह्मणाः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये ।
किं पुनर्ये च कौन्तेय संध्यां नित्यमुपासते ।।

कुन्तीनन्दन! सारे प्राणियोंके धर्मरूपी खजानेकी रक्षा करनेके लिये साधारण ब्राह्मण भी समर्थ हैं, फिर जो नित्य संध्योपासन करते हैं, उनके विषयमें तो कहना ही क्या है? ।।

यस्यास्येन समश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः ।
कव्यानि चैव पितरः किं भूतमधिकं ततः ।।

जिसके मुखसे स्वर्गवासी देवगण हविष्यका और पितर कव्यका भक्षण करते हैं, उससे बढ़कर कौन प्राणी हो सकता है? ।।

उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्मस्य शाश्वती ।
स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।

उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्मस्य शाश्वती ।
स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।

ब्राह्मण जन्मसे ही धर्मकी सनातन मूर्ति है। वह धर्मके ही लिये उत्पन्न हुआ है और वह ब्रह्मभावको प्राप्त होनेमें समर्थ है ।।

स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वयं वस्ते ददाति च ।
आनृशंस्याद् ब्राह्मणस्य भुञ्जते हीतरे जनाः ।
तस्मात् ते नावमन्तव्या मद्भक्ता हि द्विजाः सदा ।।

ब्राह्मण अपना ही खाता, अपना ही पहनता और अपना ही देता है। दूसरे मनुष्य ब्राह्मणकी दयासे ही भोजन पाते हैं। अतः ब्राह्मणोंका कभी अपमान नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे सदा ही मुझमें भक्ति रखनेवाले होते हैं ।।

आरण्यकोपनिषदि ये तु पश्यन्ति मां द्विजाः ।
निगूढं निष्कलावस्थं तान् प्रयत्नेन पूजय ।।

जो ब्राह्मण बृहदारण्यक-उपनिषद्में वर्णित मेरे गूढ़ और निष्कल स्वरूपका ज्ञान रखते हैं, उनका यत्नपूर्वक पूजन करना ।।

स्वगृहे वा प्रवासे वा दिवारात्रमथापि वा ।
श्रद्धया ब्राह्मणाः पूज्या मद्भक्ता ये च पाण्डव ।।

पाण्डुनन्दन! घरपर या विदेशमें, दिनमें या रातमें मेरे भक्त ब्राह्मणोंकी निरन्तर श्रद्धाके साथ पूजा करते रहना चाहिये ।।

नास्ति विप्रसमं दैवं नास्ति विप्रसमो गुरुः ।

नास्ति विप्रात् परो बन्धुर्नास्ति विप्रात् परो निधिः ।।

ब्राह्मणके समान कोई देवता नहीं है, ब्राह्मणके समान कोई गुरु नहीं है, ब्राह्मणसे बढ़कर बन्धु नहीं है और ब्राह्मणसे बढ़कर कोई खजाना नहीं है ।।

नास्ति विप्रात् परं तीर्थं न पुण्यं ब्राह्मणात् परम् ।
न पवित्रं परं विप्रान्न द्विजात् पावनं परम् ।
नास्ति विप्रात् परो धर्मो नास्ति विप्रात् परा गतिः ।।

कोई तीर्थ और पुण्य भी ब्राह्मणसे श्रेष्ठ नहीं है। ब्राह्मणसे बढ़कर पवित्र कोई नहीं है और ब्राह्मणसे बढ़कर पवित्र करनेवाला कोई नहीं है। ब्राह्मणसे श्रेष्ठ कोई धर्म नहीं और ब्राह्मणसे उत्तम कोई गति नहीं है ।।

पापकर्मसमाक्षिप्तं पतन्तं नरके नरम् ।
त्रायते पात्रमप्येकं पात्रभूते तु तद् द्विजे ।।
बालाहिताग्नयो ये च शान्ताः शूद्रान्नवर्जिताः ।
मामर्चयन्ति मद्भक्तास्तेभ्यो दत्तमिहाक्षयम् ।।

पापकर्मके कारण नरकमें गिरते हुए मनुष्यका एक सुपात्र ब्राह्मण भी उद्धार कर सकता है। सुपात्र ब्राह्मणोंमें भी जो बाल्यकालसे ही अग्निहोत्र करनेवाले, शूद्रका अन्न त्याग देनेवाले तथा शान्त और मेरे भक्त हैं एवं सदा मेरी पूजा किया करते हैं, उनको दिया हुआ दान अक्षय होता है ।।

प्रदानैः पूजितो विप्रो वन्दितो वापि संस्कृतः ।
सम्भावितो वा दृष्टो वा मद्भक्तो दिवमुन्नयेत् ।।

मेरे भक्त ब्राह्मणको दान देकर उसकी पूजा करने, सिर झुकाने, सत्कार करने, बातचीत करने अथवा दर्शन करनेसे वह मनुष्यको दिव्यलोकमें पहुँचा देता है ।।

ये पठन्ति नमस्यन्ति ध्यायन्ति पुरुषास्तु माम् ।
स तान् दृष्ट्वा च स्पृष्ट्वा च नरः पापैः प्रमुच्यते ।।

जो लोग मेरे गुण और लीलाओंका पाठ करते हैं तथा मुझे नमस्कार करते और मेरा ध्यान करते हैं, उनका दर्शन और स्पर्श करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ।।

मद्भक्ता मद्गतप्राणा मद्गीता मत्परायणाः ।
बीजयोनिविशुद्धा ये श्रोत्रियाः संयतेन्द्रियाः ।
शूद्रान्नविरता नित्यं ते पुनन्तीह दर्शनात् ।।

जो मेरे भक्त हैं, जिनके प्राण मुझमें ही लगे हुए हैं, जो मेरी महिमाका गान करते हैं और मेरी शरणमें पड़े रहते हैं, जिनकी उत्पत्ति शुद्ध रज और वीर्यसे हुई है, जो वेदके विद्वान्, जितेन्द्रिय तथा सदा शूद्रान्नसे बचे रहनेवाले हैं, वे दर्शनमात्रसे पवित्र कर देते हैं ।।

6:53 PM

Draw 7

स्तुवन्ति सततं ये मां ते वै भागवताः स्मृताः ।।

जो होता बनकर ऋग्वेदके द्वारा, अध्वर्यु होकर यजुर्वेदके द्वारा, उद्गाता बनकर परम पवित्र सामवेदके द्वारा मेरा स्तवन करते हैं तथा अथर्ववेदीय द्विजोंके रूपमें जो अथर्ववेदके द्वारा हमेशा मेरी स्तुति किया करते हैं, वे भगवद्भक्त माने गये हैं ।।

वेदाधीनाः सदा यज्ञा यज्ञाधीनास्तु देवताः ।
देवताः ब्राह्मणाधीनास्तस्माद् विप्रास्तु देवताः ।।

यज्ञ सदा वेदोंके अधीन हैं और देवता यज्ञों तथा ब्राह्मणोंके अधीन होते हैं, इसलिये ब्राह्मण देवता हैं ।।

अनाश्रित्योच्छ्रयं नास्ति मुख्यमाश्रयमाश्रयेत् ।
रुद्रं समाश्रिता देवा रुद्रो ब्रह्माणमाश्रितः ।।

किसीका सहारा लिये बिना कोई ऊँचे नहीं चढ़ सकता, अतः सबको किसी प्रधान आश्रयका सहारा लेना चाहिये। देवतालोग भगवान् रुद्रके आश्रयमें रहते हैं, रुद्र ब्रह्माजीके आश्रित हैं ।।

ब्रह्मा मामाश्रितो राजन् नाहं कंचिदुपाश्रितः ।
ममाश्रयो न कश्चित् तु सर्वेषामाश्रयो ह्यहम् ।।

ब्रह्माजी मेरे आश्रयमें रहते हैं, किंतु मैं किसीके आश्रित नहीं हूँ। राजन्! मेरा आश्रय कोई नहीं है। मैं ही सबका आश्रय हूँ ।।

एवमेतन्मया प्रोक्तं रहस्यमिदमुत्तमम् ।
धर्मप्रियस्य ते नित्यं राजन्नेवं समाचर ।।

राजन्! इस प्रकार ये उत्तम रहस्यकी बातें मैंने तुम्हें बतायी हैं, क्योंकि तुम धर्मके प्रेमी हो। अब तुम इस उपदेशके ही अनुसार सदा आचरण करो ।।

इदं पवित्रमाख्यानं पुण्यं वेदेन सम्मितम् ।
यः पठेन्मामकं धर्ममहन्यहनि पाण्डव ।।
धर्मोऽपि वर्धते तस्य बुद्धिश्चापि प्रसीदति ।
पापक्षयमुपेत्यैवं कल्याणं च विवर्धते ।।

यह पवित्र आख्यान पुण्यदायक एवं वेदके समान मान्य है। पाण्डुनन्दन! जो मेरे बताये हुए इस वैष्णव-धर्मका प्रतिदिन पाठ करेगा, उसके धर्मकी वृद्धि होगी और बुद्धि निर्मल। साथ ही उसके समस्त पापोंका नाश होकर परम कल्याणका विस्तार होगा ।।

एतत् पुण्यं पवित्रं च पापनाशनमुत्तमम् ।
श्रोतव्यं श्रद्धया युक्तैः श्रोत्रियैश्च विशेषतः ।।

यह प्रसंग परम पवित्र, पुण्यदायक, पापनाशक और अत्यन्त उत्कृष्ट है। सभी मनुष्योंको, विशेषतः श्रोत्रिय विद्वानोंको श्रद्धाके साथ इसका श्रवण करना चाहिये ।।

श्रावयेद् यस्त्विदं भक्त्या प्रयतोऽथ शृणोति वा ।
स गच्छेन्मम सायुज्यं नात्र कार्या विचारणा ।।

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसे सुनाता और पवित्रचित्त होकर सुनता है, वह मेरे सायुज्य... प्राप्त होता है, इसमें कोइ शंका नहीं है ।।

यश्चेमं श्रावयेच्छ्राद्धे मद्भक्तो मत्परायणः ।
पितरस्तस्य तप्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ।।

...नेवाला जो भक्त पुरुष श्राद्धमें इस धर्मको सुनाता है, उसके पि... होनेतक सदा तृप्त बने रहते हैं ।।

15105 / 15433

वैशम्पायन उवाच

7:11 PM

[अन्धत्व और पंगुत्व आदि नाना प्रकारके दोषों और रोगोंके कारणभूत दुष्कर्मोंका वर्णन]

उमोवाच

भगवन् देवदेवेश मम प्रीतिविवर्धन ।
जात्यन्धाश्चैव दृश्यन्ते जाता वा नष्टचक्षुषः ।।
केन कर्मविपाकेन तन्मे शंसितुमर्हसि ।

उमाने कहा—भगवन्! मेरी प्रीति बढ़ानेवाले देवदेवेश्वर! इस संसारमें कुछ लोग जन्मसे ही अन्धे दिखायी देते हैं और कुछ लोगोंके जन्म लेनेके पश्चात् उनकी आँखें नष्ट हो जाती हैं। किस कर्मविपाकसे ऐसा होता है? यह मुझे बतानेकी कृपा करें ।।

श्रीमहेश्वर उवाच

ये पुरा कामकारेण परवेश्मसु लोलुपाः ।
परस्त्रियोऽभिवीक्षन्ते दुष्टेनैव स्वचक्षुषा ।।
अन्धीकुर्वन्ति ये मर्त्याः क्रोधलोभसमन्विताः ।
लक्षणज्ञाश्च रूपेषु अयथावत्प्रदर्शकाः ।।
एवंयुक्तसमाचाराः कालधर्मवशास्तु ते ।
दण्डिता यमदण्डेन निरयस्थाश्चिरं प्रिये ।।

श्रीमहेश्वरने कहा—प्रिये! जो पूर्वजन्ममें काम या स्वेच्छाचारवश पराये घरोंमें अपनी लोलुपताका परिचय देते हैं और परायी स्त्रियोंपर अपनी दूषित दृष्टि डालते हैं तथा जो मनुष्य क्रोध और लोभके वशीभूत होकर दूसरोंको अन्धा बना देते हैं, अथवा रूपविषयक लक्षणोंको जानकर उसका मिथ्या प्रदर्शन करते हैं। ऐसे आचारवाले मनुष्य मृत्युको प्राप्त होनेपर यमदण्डसे दण्डित हो चिरकालतक नरकोंमें पड़े रहते हैं ।।

यदि चेन्मानुषं जन्म लभेरंस्ते तथापि वा ।
स्वभावतो वा जाता वा अन्धा एव भवन्ति ते ।।
अक्षिरोगयुता वापि नास्ति तत्र विचारणा ।।

उसके बाद यदि वे मनुष्ययोनिमें जन्म लेते हैं, तब स्वभावतः अन्धे होते हैं अथवा जन्म लेनेके बाद अन्धे हो जाते हैं या सदा ही नेत्ररोगसे पीड़ित रहते हैं। इस विषयमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ।।

उमोवाच

मुखरोगयुताः केचिद् दृश्यन्ते सततं नराः ।
दन्तकण्ठकपोलस्थैर्व्याधिभिर्बहुपीडिताः ।।
आदिप्रभृति वै मर्त्या जाता वाप्यथ कारणात् ।

केन कर्मविपाकेन तन्मे शंसितुमर्हसि ।।

उमाने पूछा—प्रभो! कुछ मनुष्य सदा मुखके रोगसे व्यथित रहते हैं, दाँत, कण्ठ और कपोलोंके रोगसे अत्यन्त कष्ट भोगते हैं, कुछ तो जन्मसे ही रोगी होते हैं और कुछ जन्म लेनेके बाद कारणवश उन रोगोंके शिकार हो जाते हैं। किस कर्मविपाकसे ऐसा होता है? यह मुझे बताइये ।।

श्रीमहेश्वर उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि शृणु देवि समाहिता ।।
कुवक्तारस्तु ये देवि जिह्वया कटुकं भृशम् ।
असत्यं परुषं घोरं गुरून् प्रति परान् प्रति ।।
जिह्वाबाधां तदान्येषां कुर्वते कोपकारणात् ।
प्रायशोऽनृतभूयिष्ठा नराः कार्यवशेन वा ।।
तेषां जिह्वाप्रदेशस्था व्याधयः सम्भवन्ति ते ।।

श्रीमहेश्वरने कहा—देवि! एकाग्रचित होकर सुनो, मैं प्रसन्नतापूर्वक तुम्हें सब कुछ बताता हूँ। जो कुवाक्य बोलनेवाले मनुष्य अपनी जिह्वासे गुरुजनों या दूसरोंके प्रति अत्यन्त कड़वे, झूठे, रूखे तथा घोर वचन बोलते हैं, जो क्रोधके कारण दूसरोंकी जीभ काट लेते हैं अथवा जो कार्यवश प्रायः अधिकाधिक झूठ ही बोलते हैं, उनके जिह्वाप्रदेशमें ही रोग होते हैं ।।

तस्य पुत्रस्तवातिथ्यं यथावत् कर्तुमर्हति ।। ७ ।।

समुद्रने कहा—राजन्! यदि तुमने महर्षि जमदग्निका नाम सुना हो तो उन्हींके आश्रमपर चले जाओ। उनके पुत्र परशुरामजी तुम्हारा अच्छी तरह सत्कार कर सकते हैं ।। ७ ।।

ततः स राजा प्रययौ क्रोधेन महता वृतः ।
स तमाश्रममागम्य राममेवान्वपद्यत ।। ८ ।।
स रामप्रतिकूलानि चकार सह बन्धुभिः ।
आयासं जनयामास रामस्य च महात्मनः ।। ९ ।।
ततस्तेजः प्रजज्वाल रामस्यामिततेजसः ।
प्रदहन् रिपुसैन्यानि तदा कमललोचने ।। १० ।।

ततः परशुमादाय स तं बाहुसहस्रिणम् ।
चिच्छेद सहसा रामो बहुशाखमिव द्रुमम् ।। ११ ।।

(ब्राह्मणने कहा—) कमलके समान नेत्रोंवाली देवि! तदनन्तर राजा कार्तवीर्य बड़े क्रोधमें भरकर महर्षि जमदग्निके आश्रमपर परशुरामजीके पास जा पहुँचा और अपने भाई-बन्धुओंके साथ उनके प्रतिकूल बर्ताव करने लगा। उसने अपने अपराधोंसे महात्मा परशुरामजीको उद्विग्न कर दिया। फिर तो शत्रु-सेनाको भस्म करनेवाला अमित तेजस्वी परशुरामजीका तेज प्रज्वलित हो उठा। उन्होंने अपना फरसा उठाया और हजार भुजाओंवाले उस राजाको अनेक शाखाओंसे युक्त वृक्षकी भाँति सहसा काट डाला ।। ८—११ ।।

तं हतं पतितं दृष्ट्वा समेताः सर्वबान्धवाः ।
असीनादाय शक्तीश्च भार्गवं पर्यधावयन् ।। १२ ।।

उसे मरकर जमीनपर पड़ा देख उसके सभी बन्धु-बान्धव एकत्र हो गये तथा हाथोंमें तलवार और शक्तियाँ लेकर परशुरामजीपर चारों ओरसे टूट पड़े ।। १२ ।।

रामोऽपि धनुरादाय रथमारुह्य सत्वरः ।
विसृजन् शरवर्षाणि व्यधमत् पार्थिवं बलम् ।। १३ ।।

इधर परशुरामजी भी धनुष लेकर तुरंत रथपर सवार हो गये और बाणोंकी वर्षा करते हुए राजाकी सेनाका संहार करने लगे ।। १३ ।।

ततस्तु क्षत्रियाः केचिज्जामदग्न्यभयार्दिताः ।
विविशुर्गिरिदुर्गाणि मृगाः सिंहार्दिता इव ।। १४ ।।

उस समय बहुत-से क्षत्रिय परशुरामजीके भयसे पीड़ित हो सिंहके सताये हुए मृगोंकी भाँति पर्वतोंकी गुफाओंमें घुस गये ।। १४ ।।

तेषां स्वविहितं कर्म तद्भयान्नानुतिष्ठताम् ।
प्रजा वृषलतां प्राप्ता ब्राह्मणानामदर्शनात् ।। १५ ।।

उन्होंने उनके डरसे अपने क्षत्रियोचित कर्मोंका भी त्याग कर दिया। बहुत दिनोंतक ब्राह्मणोंका दर्शन न कर सकनेके कारण वे धीरे-धीरे अपने कर्म भूलकर शूद्र हो गये ।। १५ ।।

एवं ते द्रविडाऽऽभीराः पुण्ड्राश्च शबरैः सह ।
वृषलत्वं परिगता व्युत्थानात् क्षत्रधर्मिणः ।। १६ ।।

इस प्रकार द्रविड, आभीर, पुण्ड्र और शबरोंके सहवासमें रहकर वे क्षत्रिय होते हुए भी धर्म-त्यागके कारण शूद्रकी अवस्थामें पहुँच गये ।। १६ ।।

ततश्च हतवीरासु क्षत्रियासु पुनः पुनः ।
द्विजैरुत्पादितं क्षत्रं जामदग्न्यो न्यकृन्तत ।। १७ ।।

तत्पश्चात् क्षत्रियवीरोंके मारे जानेपर ब्राह्मणोंने उनकी स्त्रियोंसे नियोगकी विधिके अनुसार पुत्र उत्पन्न किये, किंतु उन्हें भी बड़े होनेपर परशुरामजीने फरसेसे काट डाला ।। १७ ।।

एकविंशतिमेधान्ते रामं वागशरीरिणी ।
दिव्या प्रोवाच मधुरा सर्वलोकपरिश्रुता ।। १८ ।।

इस प्रकार एक-एक करके जब इक्कीस बार क्षत्रियोंका संहार हो गया, तब परशुरामजीको दिव्य आकाशवाणीने मधुर स्वरमें सब लोगोंके सुनते हुए यह कहा

7:11 PM

[अन्धत्व और पंगुत्व आदि नाना प्रकारके दोषों और रोगोंके कारणभूत दुष्कर्मोंका वर्णन]

उमोवाच

भगवन् देवदेवेश मम प्रीतिविवर्धन ।
जात्यन्धाश्चैव दृश्यन्ते जाता वा नष्टचक्षुषः ।।
केन कर्मविपाकेन तन्मे शंसितुमर्हसि ।

उमाने कहा—भगवन्! मेरी प्रीति बढ़ानेवाले देवदेवेश्वर! इस संसारमें कुछ लोग जन्मसे ही अन्धे दिखायी देते हैं और कुछ लोगोंके जन्म लेनेके पश्चात् उनकी आँखें नष्ट हो जाती हैं। किस कर्मविपाकसे ऐसा होता है? यह मुझे बतानेकी कृपा करें ।।

श्रीमहेश्वर उवाच

ये पुरा कामकारेण परवेश्मसु लोलुपाः ।
परस्त्रियोऽभिवीक्षन्ते दुष्टेनैव स्वचक्षुषा ।।
अन्धीकुर्वन्ति ये मर्त्याः क्रोधलोभसमन्विताः ।
लक्षणज्ञाश्च रूपेषु अयथावत्प्रदर्शकाः ।।
एवंयुक्तसमाचाराः कालधर्मवशास्तु ते ।
दण्डिता यमदण्डेन निरयस्थाश्चिरं प्रिये ।।

श्रीमहेश्वरने कहा—प्रिये! जो पूर्वजन्ममें काम या स्वेच्छाचारवश पराये घरोंमें अपनी लोलुपताका परिचय देते हैं और परायी स्त्रियोंपर अपनी दूषित दृष्टि डालते हैं तथा जो मनुष्य क्रोध और लोभके वशीभूत होकर दूसरोंको अन्धा बना देते हैं, अथवा रूपविषयक लक्षणोंको जानकर उसका मिथ्या प्रदर्शन करते हैं। ऐसे आचारवाले मनुष्य मृत्युको प्राप्त होनेपर यमदण्डसे दण्डित हो चिरकालतक नरकोंमें पड़े रहते हैं ।।

यदि चेन्मानुषं जन्म लभेरंस्ते तथापि वा ।
स्वभावतो वा जाता वा अन्धा एव भवन्ति ते ।।
अक्षिरोगयुता वापि नास्ति तत्र विचारणा ।।

उसके बाद यदि वे मनुष्ययोनिमें जन्म लेते हैं, तब स्वभावतः अन्धे होते हैं अथवा जन्म लेनेके बाद अन्धे हो जाते हैं या सदा ही नेत्ररोगसे पीड़ित रहते हैं। इस विषयमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ।।

उमोवाच

मुखरोगयुताः केचिद् दृश्यन्ते सततं नराः ।
दन्तकण्ठकपोलस्थैर्व्याधिभिर्बहुपीडिताः ।।
आदिप्रभृति वै मर्त्या जाता वाप्यथ कारणात् ।

केन कर्मविपाकेन तन्मे शंसितुमर्हसि ।।

उमाने पूछा—प्रभो! कुछ मनुष्य सदा मुखके रोगसे व्यथित रहते हैं, दाँत, कण्ठ और कपोलोंके रोगसे अत्यन्त कष्ट भोगते हैं, कुछ तो जन्मसे ही रोगी होते हैं और कुछ जन्म लेनेके बाद कारणवश उन रोगोंके शिकार हो जाते हैं। किस कर्मविपाकसे ऐसा होता है? यह मुझे बताइये ।।

श्रीमहेश्वर उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि शृणु देवि समाहिता ।।
कुवक्तारस्तु ये देवि जिह्वया कटुकं भृशम् ।
असत्यं परुषं घोरं गुरून् प्रति परान् प्रति ।।
जिह्वाबाधां तदान्येषां कुर्वते कोपकारणात् ।
प्रायशोऽनृतभूयिष्ठा नराः कार्यवशेन वा ।।
तेषां जिह्वाप्रदेशस्था व्याधयः सम्भवन्ति ते ।।

श्रीमहेश्वरने कहा—देवि! एकाग्रचित होकर सुनो, मैं प्रसन्नतापूर्वक तुम्हें सब कुछ बताता हूँ। जो कुवाक्य बोलनेवाले मनुष्य अपनी जिह्वासे गुरुजनों या दूसरोंके प्रति अत्यन्त कड़वे, झूठे, रूखे तथा घोर वचन बोलते हैं, जो क्रोधके कारण दूसरोंकी जीभ काट लेते हैं अथवा जो कार्यवश प्रायः अधिकाधिक झूठ ही बोलते हैं, उनके जिह्वाप्रदेशमें ही रोग होते हैं ।।

बदलती क्यों रहती हो? बताओ, यदि मुझ-जैसे ब्राह्मणसे सम्मान पानेकी इच्छा हो तो झूठ न बोलना' ।। २ ।।

स्त्र्युवाच

द्यावापृथिव्योर्यत्रैषा काम्या ब्राह्मणसत्तम ।
शृणुष्वावहितः सर्वं यदिदं सत्यविक्रम ।। ३ ।।

स्त्री बोली—ब्राह्मणशिरोमणे! स्वर्गलोक हो या मर्त्यलोक, जिस किसी भी स्थानमें स्त्री और पुरुष निवास करते हैं, वहाँ उनमें परस्पर संयोगकी यह कामना सदा बनी रहती है। सत्यपराक्रमी विप्र! यह सब जो रूपपरिवर्तनकी लीला की गयी है, उसका कारण बताती हूँ, सावधान होकर सुनिये ।। ३ ।।

जिज्ञासेयं प्रयुक्ता मे स्थिरीकर्तुं तवानघ ।
अव्युत्थानेन ते लोका जिताः सत्यपराक्रम ।। ४ ।।

निर्दोष ब्राह्मण! आपको दृढ़ करनेके लिये आपकी परीक्षा लेनेके उद्देश्यसे ही मैंने यह कार्य किया है। सत्यपराक्रमी द्विज! आपने अपने धर्मसे विचलित न होकर समस्त पुण्यलोकोंको जीत लिया है ।। ४ ।।

उत्तरां मां दिशं विद्धि दृष्टं स्त्रीचापलं च ते ।
स्थविराणामपि स्त्रीणां बाधते मैथुनज्वरः ।। ५ ।।

आप मुझे उत्तरदिशा समझें। स्त्रीमें कितनी चपलता होती है—यह आपने प्रत्यक्ष देखा है। बूढ़ी स्त्रियोंको भी मैथुनके लिये होनेवाला कामजनित संताप कष्ट देता रहता है ।। ५ ।।

(अविश्वासान्न व्यसनी नातिसक्तोऽप्रवासकः ।
विद्वान् सुशीलः पुरुषः सदारः सुखमश्नुते ।।)

जो कहीं भी विश्वास न करनेके कारण किसी व्यसनमें नहीं फँसता, कहीं भी अधिक आसक्त नहीं होता, परदेशमें नहीं रहता तथा जो विद्वान् और सुशील है, वही पुरुष स्त्रीके साथ रहकर सुख भोगता है ।।

तुष्टः पितामहस्तेऽद्य तथा देवाः सवासवाः ।
स त्वं येन च कार्येण सम्प्राप्तो भगवानिह ।। ६ ।।
प्रेषितस्तेन विप्रेण कन्यापित्रा द्विजर्षभ ।
तवोपदेशं कर्तुं वै तच्च सर्वं कृतं मया ।। ७ ।।

आज आपके ऊपर ब्रह्माजी तथा इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता संतुष्ट हैं। भगवन् द्विजश्रेष्ठ! आप यहाँ जिस कार्यसे आये हैं, वह सफल हो गया। उस कन्याके पिता वदान्य ऋषिने ... पास आपको उपदेश देनेके लिये भेजा था। वह सब मैंने कर दिया ।। ६-७ ।।

क्षेमैर्गमिष्यसि गृहं श्रमश्च न भविष्यति ।
कन्यां प्राप्स्यसि तां विप्र पुत्रिणी च भविष्यति ।। ८ ।।

विप्रवर! अब आप कुशलपूर्वक अपने घरको जायँगे और मार्गमें आपको कोई श्रम अथवा कष्ट नहीं होगा। उस मनोनीत कन्याको आप प्राप्त कर लेंगे और आपके द्वारा वह पुत्रवती भी होगी ही ।। ८ ।।

काम्यया पृष्टवांस्त्वं मां ततो व्याहृतमुत्तमम् ।
... कृत्स्नैर्लोकैस्त्रिभिः सदा ।। ९ ।।

...से मुझसे यह बात पूछी थी, इसलिये मैंने अच्छे ढंगसे सब कुछ ...

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः ।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचनाः ।। २५ ।।

अग्नि कभी ईंधनसे तृप्त नहीं होती, समुद्र कभी नदियोंसे तृप्त नहीं होता, मृत्यु समस्त प्राणियोंको एक साथ पा जाय तो भी उनसे तृप्त नहीं होती; इसी प्रकार सुन्दर नेत्रोंवाली युवतियाँ पुरुषोंसे कभी तृप्त नहीं होतीं ।। २५ ।।

इदमन्यच्च देवर्षे रहस्यं सर्वयोषिताम् ।
दृष्ट्वैव पुरुषं हृद्यं योनिः प्रक्लिद्यते स्त्रियाः ।। २६ ।।

देवर्षे! सम्पूर्ण रमणियोंके सम्बन्धमें दूसरी भी रहस्यकी बात यह है कि किसी मनोरम पुरुषको देखते ही स्त्रीकी योनि गीली हो जाती है ।। २६ ।।

कामानामपि दातारं कर्तारं मनसां प्रियम् ।
रक्षितारं न मृष्यन्ति स्वभर्तारमलं स्त्रियः ।। २७ ।।

सम्पूर्ण कामनाओंके दाता तथा मनचाही करनेवाला पति भी यदि उनकी रक्षामें तत्पर रहनेवाला हो तो वे अपने पतिके शासनको भी सहन नहीं कर सकतीं ।। २७ ।।

न कामभोगान् विपुलान् नालंकारान् न संश्रयान् ।
तथैव बहु मन्यन्ते यथा रत्यामनुग्रहम् ।। २८ ।।

वे न तो काम-भोगकी प्रचुर सामग्रीको, न अच्छे-अच्छे गहनोंको और न उत्तम घरोंको ही उतना अधिक महत्त्व देती हैं, जैसा कि रतिके लिये किये गये अनुग्रहको ।। २८ ।।

अन्तकः पवनो मृत्युः पातालं वडवामुखम् ।
क्षुरधारा विषं सर्पो वह्निरित्येकतः स्त्रियः ।। २९ ।।

यमराज, वायु, मृत्यु, पाताल, बड़वानल, धुरेकी धार, विष, सर्प और अग्नि—ये सब विनाशके हेतु एक तरफ और स्त्रियाँ अकेली एक तरफ बराबर हैं ।। २९ ।।

यतश्च भूतानि महान्ति पञ्च
यतश्च लोका विहिता विधात्रा ।
यतः पुमांसः प्रमदाश्च निर्मिता-
स्तदैव दोषाः प्रमदासु नारद ।। ३० ।।

नारद! जहाँसे पाँचों महाभूत उत्पन्न हुए हैं, जहाँसे विधाताने सम्पूर्ण लोकोंकी सृष्टि की है तथा जहाँसे पुरुषों और स्त्रियोंका निर्माण हुआ है, वहींसे स्त्रियोंमें ये दोष भी रचे ग (अर्थात् ये स्त्रियोंके स्वाभाविक दोष हैं) ।। ३० ।।

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि पञ्चचूडानारदसंवादे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ।। ३८ ।।

6:14 PM

Draw 7

नाभीतः पुरुषः कश्चित् समयं स्थातुमिच्छति ।। १३ ।।

राजन्! बिना भयके कोई यज्ञ नहीं करता है, बिना भयके कोई दान नहीं करना चाहता है, और दण्डका भय न हो तो कोई पुरुष मर्यादा या प्रतिज्ञाके पालनपर भी स्थिर नहीं रहना चाहता है ।। १३ ।।

नाच्छित्त्वा परमर्माणि नाकृत्वा कर्म दुष्करम् ।
नाहत्वा मत्स्यघातीव प्राप्नोति महतीं श्रियम् ।। १४ ।।

मछली मारनेवाले मल्लाहोंकी तरह दूसरोंके मर्मस्थानोंका उच्छेद और दुष्कर कर्म किये बिना तथा बहुसंख्यक प्राणियोंको मारे बिना कोई बड़ी भारी सम्पत्ति नहीं प्राप्त कर सकता ।। १४ ।।

नाघ्नतः कीर्तिरस्तीह न वित्तं न पुनः प्रजाः ।
इन्द्रो वृत्रवधेनैव महेन्द्रः समपद्यत ।। १५ ।।

जो दूसरोंका वध नहीं करता, उसे इस संसारमें न तो कीर्ति मिलती है, न धन प्राप्त होता है और न प्रजा ही उपलब्ध होती है। इन्द्र वृत्रासुरका वध करनेसे ही महेन्द्र हो गये ।। १५ ।।

य एव देवा हन्तारस्ताँल्लोकोऽर्चयते भृशम् ।
हन्ता रुद्रस्तथा स्कन्दः शक्रोऽग्निर्वरुणो यमः ।। १६ ।।
हन्ता कालस्तथा वायुर्मृत्युर्वैश्रवणो रविः ।
वसवो मरुतः साध्या विश्वेदेवाश्च भारत ।। १७ ।।
एतान् देवान् नमस्यन्ति प्रतापप्रणता जनाः ।

जो देवता दूसरोंका वध करनेवाले हैं, उन्हींकी संसार अधिक पूजा करता है। रुद्र, स्कन्द, इन्द्र, अग्नि, वरुण, यम, काल, वायु, मृत्यु, कुबेर, सूर्य, वसु, मरुद्गण, साध्य तथा विश्वेदेव—से सब देवता दूसरोंका वध करते हैं; इनके प्रतापके सामने नतमस्तक होकर सब लोग इन्हें नमस्कार करते हैं ।। १६-१७½ ।।

न ब्रह्माणं न धातारं न पूषाणं कथंचन ।। १८ ।।
मध्यस्थान् सर्वभूतेषु दान्तान् शमपरायणान् ।
यजन्ते मानवाः केचित् प्रशान्ताः सर्वकर्मसु ।। १९ ।।

परंतु ब्रह्मा, धाता और पूषाकी कोई किसी तरह भी पूजा-अर्चा नहीं करते हैं; क्योंकि वे सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति समभाव रखनेके कारण मध्यस्थ, जितेन्द्रिय एवं शान्तिपरायण हैं। जो शान्त स्वभावके मनुष्य हैं, वे ही समस्त कर्मोंमें इन धाता आदिकी पूजा करते हैं ।।

न हि पश्यामि जीवन्तं लोके कञ्चिदहिंसया ।
सत्त्वैः सत्त्वा हि जीवन्ति दुर्बलैर्बलवत्तराः ।। २० ।।

संसारमें किसी भी ऐसे पुरुषको मैं नहीं देखता जो अहिंसासे जीविका चलाता हो। क्योंकि प्रबल जीव दुर्बल जीवोंद्वारा जीवन-निर्वाह करते हैं ।। २० ।।

नकुलो मूषिकानत्ति बिडालो नकुलं तथा ।
बिडालमत्ति श्वा राजन् श्वानं व्यालमृगस्तथा ।। २१ ।।

10526 / 15433 खा जाता है और नेवलेको बिलाव। बिलावको कुत्ता और कुत्तेको चीता चबा जाता है ।। २१ ।।

त्रिसप्तकृत्व : पृथ्वी कृत्वा निः क्षत्रियां पुरा ।
जामदग्न्यस्तपस्तेपे महेन्द्रे पर्वतोत्तमे ।४।
तदा निःक्षत्रिये लोके भार्गवेण कृते सति ।
ब्राह्मणान् क्षत्रिया राजन्यकृत सुतार्थिन्य८भिचक्रमुः।५।
ताभ्यांः सहसमापेतुर्ब्राह्मणाः संशितव्रताः ।
ऋतो वृतौ नरव्याघ्र न कामात् अन् ऋतौ यथा ।६।
तेभ्यश्च लेभिरे गर्भं क्षत्रियास्ताः सहस्रशःततःसुषुविरे
राजन्यकृत क्षत्रियान् वीर्यवत्तारान्।७।
कुमारांश्च कुमारीश्च पुनः क्षत्राभिवृद्धये ।
एवं तद् ब्राह्मणैः क्षत्रं क्षत्रियासु तपस्विभिः।८।
जातं वृद्धं च धर्मेण सुदीर्घेणायुषान्वितम्।
चत्वारो८पि ततो वर्णा बभूवुर्ब्राह्मणोत्तराः ।९।

(महाभारत आदि पर्व ६४वाँ अध्याय)

अर्थात् पूर्व काल में परशुराम ने (२१)वार पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन कर के महेन्द्र पर्वत पर तप किया ।
तब क्षत्रिय नारीयों ने पुत्र पावन के लिए ब्राह्मणों से मिलने की इच्छा की ।
तब ऋतु काल में ब्राह्मण ने उनके साथ संभोग कर उनको गर्भिणी किया ।
तब उन ब्राह्मणों के वीर्य से हजारों क्षत्रिय राजा हुए ।
और चातुर्य वर्ण-व्यवस्था की वृद्धि हुई। उसमें भी ब्राह्मणों को अधिक श्रेष्ठ माना गया ।

खण्डाभासं दक्षिणतस्तेऽपि संवत्सरायुषः ।

जो कभी पहलेकी देखी हुई अरुन्धती और ध्रुवको न देख पाता हो तथा पूर्णचन्द्रमाका मण्डल और दीपककी शिखा जिसे दाहिने भागसे खण्डित जान पड़े, ऐसे लोग केवल एक वर्षतक जीवित रहनेवाले होते हैं ।। ९½ ।।

परचक्षुषि चात्मानं ये न पश्यन्ति पार्थिव ।। १० ।।
आत्मच्छायाकृतीभूतं तेऽपि संवत्सरायुषः ।

पृथ्वीनाथ! जो लोग दूसरेके नेत्रोंमें अपनी परछाईं न देख सकें, उनकी आयु भी एक ही वर्षतक शेष समझनी चाहिये ।। १०½ ।।

अतिद्युतिरतिप्रज्ञा अप्रज्ञा चाद्युतिस्तथा ।। ११ ।।
प्रकृतेर्विक्रियापत्तिः षण्मासान्मृत्युलक्षणम् ।

यदि मनुष्यकी बहुत बढ़ी-चढ़ी कान्ति भी अत्यन्त फीकी पड़ जाय, अधिक बुद्धिमत्ता भी बुद्धिहीनतामें परिणत हो जाय और स्वभावमें भी भारी उलट-फेर हो जाय तो यह उसके छः महीनेके भीतर ही होनेवाली मृत्युका सूचक है ।। ११½ ।।

दैवतान्यवजानाति ब्राह्मणैश्च विरुद्ध्यते ।। १२ ।।

कृष्णश्यावच्छविच्छायः षण्मासान्मृत्युलक्षणम् ।

जो काले रंगका होकर भी पीला पड़ने लगे, देवताओंका अनादर करे और ब्राह्मणोंके साथ विरोध करे, वह भी छः महीनेसे अधिक नहीं जी सकता, यह उक्त लक्षणोंसे सूचित होता है ।। १२½ ।।

ऊर्णनाभेर्यथा चक्रं छिद्रं सोमं प्रपश्यति ।। १३ ।।
तथैव च सहस्रांशुं सप्तरात्रेण मृत्युभाक् ।

जो मनुष्य सूर्य और चन्द्रमाके मण्डलको मकड़ीके जालेके समान छिद्रयुक्त देखता है, वह सात रातमें ही मृत्युका भागी होता है ।। १३½ ।।

शवगन्धमुपाघ्राति सुरभिं प्राप्य यो नरः ।। १४ ।।
देवतायतनस्थस्तु सप्तरात्रेण मृत्युभाक् ।

जो देवमन्दिरमें बैठकर वह **मृत्युनिदर्शनम् ।** सड़े मुर्देकी-सी दुर्गन्धका अनुभव करता है, वह सात दिन **ममक्षि नराधिप ।** जाता है ।। १४½ ।।

कर्णनासावनमनं दन्तदृ

संज्ञालोपो निरूष्मत्वं सद्योमृत्युनिदर्शनम् ।
अकस्माच्च स्रवेद् यस्य वाममक्षि नराधिप ।। १६ ।।
मूर्धतश्चोत्पतेद् धूमः सद्यो मृत्युनिदर्शनम् ।

नरेश्वर! जिसके नाक और कान टेढ़े हो जायँ, दाँत और नेत्रोंका रंग बिगड़ जाय, जिसे बेहोशी होने लगे, जिसका शरीर ठंडा पड़ जाय तथा जिसकी बायीं आँखसे अकस्मात् आँसू बहने और मस्तकसे धुआँ उठने लगे, उसकी तत्काल मृत्यु हो जाती है। उपर्युक्त लक्षण तत्काल होनेवाली मृत्युके सूचक हैं ।।

एतावन्ति त्वरिष्टानि विदित्वा मानवोऽऽत्मवान् ।। १७ ।।
निशि चाहनि चात्मानं योजयेत् परमात्मनि ।
प्रतीक्षमाणस्तत्कालं यत्कालं प्रेतता भवेत् ।। १८ ।।

इन मृत्युसूचक लक्षणोंको जानकर मनको वशमें रखनेवाला साधक रात-दिन परमात्माका ध्यान करे और जिस समय मृत्यु होनेवाली हो, उस कालकी प्रतीक्षा करता रहे ।। १७-१८ ।।

अथास्य नेष्टं मरणं स्थातुमिच्छेदिमां क्रियाम् ।
सर्वगन्धान् रसांश्चैव धारयीत नराधिप ।। १९ ।।

नरेश्वर! यदि योगीको मृत्यु अभीष्ट न हो, अभी वह इस जगत्‌में रहना चाहे तो यह क्रिया करे। पूर्वोक्त रीतिसे पंचभूतविषयक धारणा करके पृथ्वी आदि तत्त्वोंपर विजय प्राप्त करते हुए सम्पूर्ण गन्धों, रसों तथा रूप आदि विषयोंको अपने वशमें करे* ।। १९ ।।

6:34 PM
Draw 7

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

राजा शशबिन्दुका चरित्र

नारद उवाच

शशबिन्दुं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
ईजे स विविधैर्यज्ञैः श्रीमान् सत्यपराक्रमः ।। १ ।।

नारदजी कहते हैं—सृंजय! मेरे सुननेमें आया है कि राजा शशबिन्दुकी भी मृत्यु हो गयी थी। उन सत्यपराक्रमी श्रीमान् नरेशने नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान किया था ।। १ ।।

तस्य भार्यासहस्राणां शतमासीन्महात्मनः ।
एकैकस्यां च भार्यायां सहस्रं तनयाऽभवन् ।। २ ।।

महामना शशबिन्दुके एक लाख स्त्रियाँ थीं और प्रत्येक स्त्रीके गर्भसे एक-एक हजार पुत्र उत्पन्न हुए थे ।। २ ।।

ते कुमाराः पराक्रान्ताः सर्वे नियुतयाजिनः ।
राजानः क्रतुभिर्मुख्यैरीजाना वेदपारगाः ।। ३ ।।

वे सभी राजकुमार अत्यन्त पराक्रमी और वेदोंके पारंगत विद्वान् थे। वे राजा ह दस लाख यज्ञ करनेका संकल्प ले प्रधान-प्रधान यज्ञोंका अनुष्ठान कर चुके थे ।। ३ ।।

हिरण्यकवचाः सर्वे सर्वे चोत्तमधन्विनः ।
सर्वेऽश्वमेधैरीजानाः कुमाराः शशबिन्दवः ।। ४ ।।

शशबिन्दुके उन सभी पुत्रोंने सोनेके कवच धारण कर रखे थे। वे सब उत्तम धनुर्धर थे और अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान कर चुके थे ।। ४ ।।

तानश्वमेधे राजेन्द्रो ब्राह्मणेभ्योऽददत् पिता ।
शतं शतं रथगजा एकैकं पृष्ठतोऽन्वयुः ।। ५ ।।

पिता महाराज शशबिन्दुने अश्वमेध-यज्ञ करके उसमें अपने वे सभी पुत्र ब्राह्मणोंको दे डाले। एक-एक राजकुमारके पीछे सौ-सौ रथ और हाथी गये थे ।।

राजपुत्रं तदा कन्यास्तपनीयस्वलंकृताः ।
कन्यां कन्यां शतं नागा नागे नागे शतं रथाः ।। ६ ।।

उस समय प्रत्येक राजकुमारके साथ सुवर्ण-भूषित सौ-सौ कन्याएँ थीं। एक-एक कन्याके पीछे सौ-सौ हाथी और प्रत्येक हाथीके पीछे सौ-सौ रथ थे ।। ६ ।।

7618 / 15433

लगा और उस एकान्त स्थानमें विनीतभावसे उनसे कुछ कहनेको उद्यत हुआ॥ १४ ॥

त्रिलोकसुन्दरी सीता अपने शरीरसे कमलसे रहित कमलालया लक्ष्मीकी भाँति शोभा पा रही थीं। रावण उनकी प्रशंसा करता हुआ बोला— ॥ १५ ॥

'उत्तम सुवर्णकी-सी कान्तिवाली तथा रेशमी पीताम्बर धारण करनेवाली सुन्दरी! (तुम कौन हो?) तुम्हारे मुख, नेत्र, हाथ और पैर कमलोंके समान हैं, अत: तुम पद्मिनी (पुष्करिणी) की भाँति कमलोंकी सुन्दर-सी माला धारण करती हो॥ १६ ॥

'शुभानने! तुम श्री, ह्री, कीर्ति, शुभस्वरूपा लक्ष्मी अथवा अप्सरा तो नहीं हो? अथवा वरारोहे! तुम भूति या स्वेच्छापूर्वक विहार करनेवाली कामदेवकी पत्नी रति तो नहीं हो?॥ १७ ॥

तुम्हारे दाँत बराबर हैं। उनके अग्रभाग कुन्दकी कलियोंके समान शोभा पाते हैं। वे सब-के-सब चिकने और सफेद हैं। तुम्हारी दोनों आँखें बड़ी-बड़ी और निर्मल हैं। उनके दोनों कोये लाल हैं और पुतलियाँ काली हैं। कटिका अग्रभाग विशाल एवं मांसल है। दोनों जाँघें हाथीकी सूँड़के समान शोभा पाती हैं॥ १८ $^1/_2$ ॥

'तुम्हारे ये दोनों स्तन पुष्ट, गोलाकार, परस्पर सटे हुए, प्रगल्भ, मोटे, उठे हुए मुखवाले, कमनीय, चिकने ताड़फलके समान आकारवाले, परम सुन्दर और श्रेष्ठ मणिमय आभूषणोंसे विभूषित हैं॥ १९-२० ॥

988

'सुन्दर मुसकान, रुचिर दन्तावली और मनोहर नेत्रवाली विलासिनी रमणी! तुम अपने रूप-सौन्दर्यसे मेरे मनको वैसे ही हरे लेती हो, जैसे नदी जलके द्वारा अपने तटका अपहरण करती है॥ २१ ॥

'तुम्हारी कमर इतनी पतली है कि मुट्ठीमें आ जाय। केश चिकने और मनोहर हैं। दोनों स्तन एक-दूसरेसे सटे हुए हैं। सुन्दरी! देवता, गन्धर्व, यक्ष और किन्नर जातिकी स्त्रियोंमें भी कोे्इ तुम-जैसी नहीं है॥ २२ ॥

'पृथ्वीपर तो ऐसी रूपवती नारी मैंने आजसे पहले कभी देखी ही नहीं थी। कहाँ तो तुम्हारा यह तीनों लोकोंमें सबसे सुन्दर रूप, सुकुमारता और नयी अवस्था और कहाँ इस दुर्गम वनमें निवास! ये सब बातें ध्यानमें आते ही मेरे मनको मथे डालती हैं। तुम्हारा कल्याण हो। यहाँसे चली जाओ। तुम यहाँ रहनेके योग्य नहीं हो॥

'यह तो इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले भयंकर राक्षसोंके रहनेकी जगह है। तुम्हें तो रमणीय राजमहलों, समृद्धिशाली नगरों और सुगन्धयुक्त उपवनोंमें निवास करना और विचरना चाहिये॥ २५ $^1/_2$ ॥

'शोभने! वही पुरुष श्रेष्ठ है, वही गन्ध उत्तम है और वही वस्त्र सुन्दर है, जो तुम्हारे उपयोगमें

[redacted]

श्ववराहखरान् हत्वा शौद्रमेव व्रतं चरेत् ।
मार्जारचाषमण्डूकान् काकं व्यालं च मूषिकम् ।। ५८ ।।
उक्तः पशुसमो दोषो राजन् प्राणिनिपातनात् ।

कुत्ते, सूअर और गदहोंकी हत्या करके मनुष्य शूद्रवध-सम्बधी व्रतका ही आचरण करे। राजन्! बिल्ली, नीलकण्ठ, मेढक, कौआ, साँप और चूहा आदि प्राणियोंको मारनेसे भी उक्त पशुवधके ही समान पाप बताया गया है ।। ५८½ ।।

प्रायश्चित्तान्यथान्यानि प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ।। ५९ ।।
अल्पे वाप्यथ शोचेत पृथक् संवत्सरं चरेत् ।
त्रीणि श्रोत्रियभार्यायां परदारे च द्वे स्मृते ।। ६० ।।
काले चतुर्थे भुञ्जानो ब्रह्मचारी व्रती भवेत् ।
स्थानासनाभ्यां विहरेत् त्रिरह्नाभ्युपयन्नपः ।
एवमेव निराकर्ता यश्चाग्नीनपविध्यति ।। ६१ ।।

अब दूसरे प्रायश्चित्तोंका भी क्रमशः वर्णन करता हूँ। अनजानमें कीड़ों-मकोड़ोंका वध आदि छोटा पाप हो जाय तो उसके लिये पश्चात्ताप करे। इतनेहीसे उसकी शुद्धि हो जाती है। गोवधके सिवा अन्य जितने उपपातक हैं उनमेंसे प्रत्येकके लिये एक-एक वर्ष व्रतका आचरण करे। श्रोत्रियकी पत्नीसे व्यभिचार करनेपर तीन वर्षतक और अन्य परस्त्रियोंसे समागम करनेपर दो वर्षोंतक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए दिनके चौथे पहरमें एक बार भोजन करे। अपने लिये पृथक् स्थान और आसनकी व्यवस्था रखते हुए घूमता रहे। दिनमें तीन बार जलसे स्नान करे। ऐसा करनेसे ही वह अपने उपर्युक्त पापोंका

[redacted]

वर्द्धकी नापितो गोप आशापः कुम्भकारकः ।।१०।।
वणिक्किरातकायस्थमालाकारकुटुम्बिनः ।
वरटो मेदचण्डालदासश्वपचकोलकाः ।।११।।
एतेऽन्त्यजाः समाख्याता ये चान्ये च गवाशनाः ।
एषां सम्भाषणात् स्नानं दर्शनादर्कवीक्षणम् ।।१२।।

बढ़ई, नाई, ग्वाला, आशाप, कुम्हार, वणिक्, किरात कायस्थ, माली

और कुटुम्बी, वरट, मेद, चण्डाल, मछेरा, श्वपच और कोलक, और जो गउओं का भक्षण करने वाले है—ये सब अन्त्यज (नीच जाति) कहे गए हैं। इनके साथ वार्त्तालाप करके स्नान करे, और इनका दर्शन होने पर सूर्य का दर्शन करे।

11:49 AM

Comment

याग, मनोजय, क्षमा, ब्राह्मणोंके प्रति भक्ति, अनुग्रह और जाकी रक्षा करना—ये क्षत्रियके लक्षण हैं॥ २२॥ वता, गुरु और भगवान्‌के प्रति भक्ति, अर्थ, धर्म और काम—इन तीनों पुरुषार्थोंकी रक्षा करना; आस्तिकता, द्योगशीलता और व्यावहारिक निपुणता—ये वैश्यके लक्षण हैं॥ २३॥ उच्च वर्णोंके सामने विनम्र रहना, वित्रता, स्वामीकी निष्कपट सेवा, वैदिक मन्त्रोंसे रहित ज्ञ, चोरी न करना, सत्य तथा गौ ब्राह्मणोंकी रक्षा करना—ये शूद्रके लक्षण हैं॥ २४॥

412

पतिकी सेवा करना, उसके अनुकूल रहना, पतिके म्बन्धियोंको प्रसन्न रखना और सर्वदा पतिके नियमोंकी क्षा करना—ये पतिको ही ईश्वर माननेवाली पतिव्रता त्रयोंके धर्म हैं॥ २५॥ साध्वी स्त्रीको चाहिये कि ाड़ने-बुहारने, लीपने तथा चौक पूरने आदिसे घरको ौर मनोहर वस्त्राभूषणोंसे अपने शरीरको अलङ्कृत खे। सामग्रियोंको साफ-सुथरी रक्खे॥ २६॥ अपने तिदेवकी छोटी-बड़ी इच्छाओंको समयके अनुसार पूर्ण रे। विनय, इन्द्रिय-संयम, सत्य एवं प्रिय वचनोंसे मपूर्वक पतिदेवकी सेवा करे॥ २७॥ जो कुछ मल जाय, उसीमें सन्तुष्ट रहे; किसी भी वस्तुके लिये लचावे नहीं। सभी कार्योंमें चतुर एवं धर्मज्ञ हो। सत्य ौर प्रिय बोले। अपने कर्तव्यमें सावधान रहे। पवित्रता ौर प्रेमसे परिपूर्ण रहकर, यदि पति पतित न हो

भग पति वह है कर वण उन व्य पर वृ वह है प्रव औ उस यह सेव ऐस बुद्ध बुद्ध बत

218/281

श्ववराहखरान् हत्वा शौद्रमेव व्रतं चरेत् ।
मार्जारचाषमण्डूकान् काकं व्यालं च मूषिकम् ।। ५८ ।।
उक्तः पशुसमो दोषो राजन् प्राणिनिपातनात् ।

कुत्ते, सूअर और गदहोंकी हत्या करके मनुष्य शूद्रवध-सम्बधी व्रतका ही आचरण करे। राजन्! बिल्ली, नीलकण्ठ, मेढक, कौआ, साँप और चूहा आदि प्राणियोंको मारनेसे भी उक्त पशुवधके ही समान पाप बताया गया है ।। ५८½ ।।

प्रायश्चित्तान्यथान्यानि प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ।। ५९ ।।
अल्पे वाप्यथ शोचेत पृथक् संवत्सरं चरेत् ।
त्रीणि श्रोत्रियभार्यायां परदारे च द्वे स्मृते ।। ६० ।।
काले चतुर्थे भुञ्जानो ब्रह्मचारी व्रती भवेत् ।
स्थानासनाभ्यां विहरेत् त्रिरह्नाभ्युपयन्नपः ।
एवमेव निराकर्ता यश्चाग्नीनपविध्यति ।। ६१ ।।

अब दूसरे प्रायश्चित्तोंका भी क्रमशः वर्णन करता हूँ। अनजानमें कीड़ों-मकोड़ोंका वध आदि छोटा पाप हो जाय तो उसके लिये पश्चात्ताप करे। इतनेहीसे उसकी शुद्धि हो जा[illegible] है। गोवधके सिवा अन्य जितने उपपातक हैं उनमेंसे प्रत्येकके लिये एक-एक व[illegible] व्रतका आचरण करे। श्रोत्रियकी पत्नीसे व्यभिचार करनेपर तीन वर्षतक और अ[illegible] परस्त्रियोंसे समागम करनेपर दो वर्षोंतक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए दिनके चौथे पहरमें एक बार भोजन करे। अपने लिये पृथक् स्थान और आसनकी व्यवस्था रखते हुए घूमता रहे। दिनमें तीन बार जलसे स्नान करे। ऐसा करनेसे ही वह अपने उपर्युक्त पापोंका

नित्य वेद का अध्ययन करने वाले, तथा जप और होम करने वाले, किन्तु शूद्र के अन्न के रस से पुष्ट होने वाले, (द्विज) को उक्त गति प्राप्त नहीं होती ।

शूद्रान्न शूद्रसम्पर्कः शूद्रेण तु सहासनम् ।
शूद्राज्ज्ञानागमश्चापि ज्वलन्तमपि पातयेत् ॥३२॥

शूद्र का अन्न, शूद्र का सम्पर्क, शूद्र के साथ एक आसन पर बैठना और शूद्र से ज्ञान प्राप्त करना—ये सब बातें प्रतापी को भी पतित कर देती हैं ।

यः शूद्र्या पाचयेन्नित्य शूद्री च गृहमेधिनी ।
वर्जितः पितृदेवेभ्यो रौरवं याति स द्विजः ॥३३॥

जो शूद्री से भोजन पकवाता है और शूद्री को जिसने पत्नी बना रखा है, पितरों और देवों से परित्यक्त वह द्विज रौरव नरक में जाता है ।

मृतसूतकपुष्टाङ्गो द्विजः शूद्रान्नभोजने ।
अहं तां न विजानामि कां कां योनिं गमिष्यति ॥३४॥

मृतक और सूतक में भोजन करने से पुष्ट हुए अंगों वाले और शूद्र के अन्न का भोजन करने वाले उस द्विज को मैं नहीं जानता, कि वह किस-किस योनि में जाएगा ।

गृध्रो द्वादश जन्मानि दश जन्मानि शूकरः ।
श्वयोनौ सप्त जन्मानि इत्येवं मनुरब्रवीत् ॥३५॥

बारह जन्मों तक गीध, दस जन्मों तक सूअर बनेगा, और सात जन्मों तक कुत्ते की योनि में जाएगा-- ऐसा मनु का कथन है ।

दक्षिणार्थं तु यो विप्रः शूद्रस्य जुहुयाद्धविः ।
ब्राह्मणस्तु भवेच्छूद्रः शूद्रस्तु ब्राह्मणो भवेत् ॥३६॥

दक्षिणा के लिये जो ब्राह्मण शूद्र का होम कराएगा, तो वह ब्राह्मण शूद्र हो जाएगा और शूद्र ब्राह्मण हो जाएगा ।

मौनव्रतं समाश्रित्य आसीनो न वदेद् द्विजः ।
भुञ्जानो हि वदेद्यस्तु तदन्नं परिवर्जयेत् ॥३७॥

मौन व्रत धारण करके बैठा हुआ द्विज न बोले, और जो भोजन करता हुआ बोलता है, वह उस अन्न को (जिसे वह खा रहा है) त्याग दे ।

वेदवाणीको समझनेमें असमर्थ होते जा रहे हैं, तब प्रत्येक कल्पमें सत्यवतीके गर्भसे व्यासके रूपमें प्रकट होकर वे वेदरूपी वृक्षका विभिन्न शाखाओंके रूपमें विभाजन कर देते हैं ॥ ३६ ॥

देवताओंके शत्रु दैत्यलोग भी वेदमार्गका सहारा लेकर मयदानवके बनाये हुए अदृश्य वेगवाले नगरोंमें रहकर लोगोंका सत्यानाश करने लगेंगे, तब भगवान् लोगोंकी बुद्धिमें मोह और अत्यन्त लोभ उत्पन्न करनेवाला वेष धारण करके बुद्धके रूपमें बहुत-से उपधर्मोंका उपदेश करेंगे ॥ ३७ ॥ कलियुगके अन्तमें जब सत्पुरुषोंके घर भी भगवान्की कथा होनेमें बाधा पड़ने लगेगी; ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य पाखण्डी और शूद्र राजा हो जायँगे, यहाँतक कि कहीं भी 'स्वाहा', 'स्वधा' और 'वषट्कार'की ध्वनि—देवता-पितरोंके यज्ञ-श्राद्धकी बाततक नहीं सुनायी पड़ेगी , तब कलियुगका शासन करनेके लिये भगवान् कल्कि अवतार ग्रहण करेंगे ॥ ३८ ॥

जब संसारकी रचनाका समय होता है, तब तपस्या, नौ प्रजापति, मरीचि आदि ऋषि और मेरे रूपमें; जब सृष्टिकी रक्षाका समय होता है, तब धर्म, विष्णु, मनु, देवता और राजाओंके रूपमें, तथा जब सृष्टिके प्रलयका समय होता है, तब अधर्म, रुद्र तथा क्रोधवश नामके सर्प एवं दैत्य आदिके रूपमें सर्वशक्तिमान् भगवान्की माया-विभूतियाँ ही प्रकट होती हैं ॥ ३९ ॥ अपनी प्रतिभाके बलसे पृथ्वीके एक-एक धूलि-कणको गिन चुकनेपर भी जगत्में ऐसा कौन पुरुष है, जो भगवान्की शक्तियोंकी गणना कर सके। जब वे त्रिविक्रम-अवतार लेकर त्रिलोकीको नाप रहे थे, उस समय उनके चरणोंके

बलिविधानम्

।। श्रीभगवानुवाच ।।

क्रमस्तु बलिदानस्य स्वरूपं रुधिरादितः ।
यथा स्यात् प्रीतये सम्यक् तद् वां वक्ष्यामि पुत्रकौ ।।१।।

श्रीभगवान् बोले–हे दोनो पुत्रों ! भगवती की प्रसन्नता के लिए बलिदान के क्रम और रक्त आदि का स्वरूप, जैसा होना चाहिए। उसे मैं तुम दोनों से भली-भाँति कहूँगा ।।१।।

वैष्णवीतन्त्रकल्पोक्तः क्रमः सर्वत्र सर्वदा ।
साधकैर्बलिदानस्य ग्राह्यः सर्वसुरस्य च ।।२।।

वैष्णवीतन्त्रकल्प में बताई सभी देवताओं के साधकों द्वारा बलिदान की पद्धति ही सभी जगह और सदा अपनाई जानी चाहिये ।।२।।

पक्षिणः कच्छपाः ग्राहाः मत्स्याः नवविधाः मृगाः ।
महिषो गोधिका गावश्छागो रुरुश्च शूकरः ।।३।।
खड्गश्च कृष्णसारश्च गोधिका शरभो हरिः ।
शार्दूलश्च नरश्चैव स्वगात्ररुधिरं तथा ।
चण्डिकाभैरवादीनां बलयः परिकीर्तिताः ।।४।।

पक्षीगण, कछुये, मगर, मत्स्य एवं नौ प्रकार के पशु, महिष, वृषभ, छाग, गोह, रुरु, सूअर, गैंडा, कृष्णसारमृग, शरभ, सिंह, शार्दूल, मनुष्य तथा साधक द्वारा अपने शरीर से निकाला रक्त, ये सब, देवी और भैरव को प्रदान करने हेतु बलियाँ बताई गई हैं।।३-४।।

बलिभिः साध्यते मुक्तिर्बलिभिः साध्यते दिवम् ।
बलिदानेन सततं जयेच्छत्रून्नृपान् नृपः ।।५।।

बलि से मुक्ति प्राप्त होती है। बलि से ही स्वर्ग भी प्राप्त होता हैं। राजा बलिदान द्वारा ही अपने शत्रुराजाओं को भी जीत ले।।५।।

मत्स्यानां कच्छपानां तु रुधिरैः सततं शिवा ।
मासैकं तृप्तिमाप्नोति ग्राहैर्मासांस्तु त्रीनथ ।।६।।

मृगाणां शोणितैर्देवी नराणामपि शोणितैः ।
अष्टौ मासानवाप्नोति तृप्तिं कल्याणदा च सा ।।७।।
गोधिकानां गोरुधिरैर्वार्षिकीं तृप्तिमाप्नुयात् ।।८।।

शिवा (काली) निरंतर मत्स्यों और कछुओं के रक्त से एक मांस तक तृप्ति ाप्त करती हैं तो मगर के मांस से तीन माह, मनुष्यों एवं पशुओं के मांस से वे ल्याणदायिनी देवी, आठ माह तक तृप्तिअनुभव करती हैं। गोह तथा बैलों के रक्त वे एक वर्षपर्यन्त तृप्ति का अनुभव करती हैं।।६-८।।

कृष्णसारस्य रुधिरैः शूकरस्य च शोणितैः ।
प्राप्नोति सततं देवी तृप्तिं द्वादशवार्षिकीम् ।।९।।

कृष्णसारमृग और सूअर के रक्त से देवी, बारह वर्षों तक निरन्तर तृप्ति, ाप्त करती हैं ।।९।।

अजाविकानां रुधिरैः पञ्चविंशतिवार्षिकीम् ।
महिषाणां च खड्गानां रुधिरैः शतवार्षिकीम् ।।१०।।

बकरी और भेड़ों के रक्त से पच्चीस वर्षों तक और भैंसे तथा गैण्डों के रक्त सौ वर्षों तक तृप्ति, प्राप्त करती हैं ।।१०।।

तृप्तिमाप्नोति परमां शार्दूलरुधिरैस्तथा ।

रहते हुए उनकी कामनाओंको पूर्ण करते रहते हैं ॥ ३४ ॥

सूतजी कहते हैं—परीक्षित्‌की यह आज्ञा सुनकर कलियुग सिहर उठा। यमराजके समान मारनेके लिये उद्यत, हाथमें तलवार लिये हुए परीक्षित्‌से वह बोला ॥ ३५ ॥

कलिने कहा—सार्वभौम ! आपकी आज्ञासे जहाँ कहीं भी मैं रहनेका विचार करता हूँ, वहीं देखता हूँ कि आप धनुषपर बाण चढ़ाये खड़े हैं ॥ ३६ ॥ धार्मिक-शिरोमणे ! आप मुझे वह स्थान बतलाइये, जहाँ मैं आपकी आज्ञाका पालन करता हुआ स्थिर होकर रह सकूँ ॥ ३७ ॥

सूतजी कहते हैं—कलियुगकी प्रार्थना स्वीकार करके राजा परीक्षित्‌ने उसे चार स्थान दिये—द्यूत, मद्यपान, स्त्री-सङ्ग और हिंसा। इन स्थानोंमें क्रमशः असत्य, मद, आसक्ति और निर्दयता—ये चार प्रकारके अधर्म निवास करते हैं ॥ ३८ ॥ उसने और भी स्थान माँगे। तब समर्थ परीक्षित्‌ने उसे रहनेके लिये एक और

लिये तूने उनको इतना बड़ा दण्ड दिया ॥ ४१ ॥ तेरी बुद्धि अभी कच्ची है। तुझे भगवत्स्वरूप राजाको साधारण मनुष्योंकि समान नहीं समझना चाहिये; क्योंकि राजाके दुस्सह तेजसे सुरक्षित और निर्भय रहकर ही प्रजा अपना कल्याण सम्पादन करती है ॥ ४२ ॥ जिस समय राजाका रूप धारण करके भगवान् पृथ्वीपर नहीं दिखायी देंगे, उस समय चोर बढ़ जायँगे और अरक्षित भेड़ोंकि समान एक क्षणमें ही लोगोंका नाश हो जायगा ॥ ४३ ॥ राजाके नष्ट हो जानेपर धन आदि चुरानेवाले चोर जो पाप करेंगे, उसके साथ हमारा कोई सम्बन्ध न होनेपर भी वह हमपर भी लागू होगा। क्योंकि राजाके न रहनेपर लुटेरे बढ़ जाते हैं और वे आपसमें मार-पीट, गाली-गलौज करते हैं, साथ ही पशु, स्त्री और धन-सम्पत्ति भी लूट लेते हैं ॥ ४४ ॥ उस समय मनुष्योंका वर्णाश्रमाचारयुक्त वैदिक आर्यधर्म लुप्त हो जाता है, अर्थ-लोभ और काम-वासनाके विवश होकर लोग कुत्तों और बंदरोंकि समान वर्णसङ्कर हो जाते है ॥ ४५ ॥ सम्राट् परीक्षित् तो बड़े ही यशस्वी और धर्मधुरन्धर हैं। उन्होंने बहुत-से अश्वमेध यज्ञ किये हैं और वे भगवान्‌के परम प्यारे

12:26 PM
Draw
15

देवतागण बोले– ये अग्निदेव, श्रीमान्, अत्यधिक तेजवान् एवं बलवान् हैं। ये ही आपके महामैथुन के कारण उत्पन्न वीर्य का संग्रह करेंगे॥५९॥

॥ और्व उवाच ॥

इत्युक्त्वा त्रिदशाः सर्वे वीतिहोत्रं पुरःस्थितम् ।
तस्मै निदेशयामासुः शम्भवे सर्वहेतवे ॥६०॥

और्व बोले– ऐसा कहकर सभी देवता वीतिहोत्र (अग्नि) को आगे कर उन्हें सब के कारणभूत् शिव की सेवा में प्रस्तुत किये ॥६०॥

ततः षडङ्गं स्वं रेतो व्यादिते दहनानने ।
उत्ससर्ज महाबाहुर्महामैथुनकारणम् ॥६१॥

तब महाबाहु शिव ने महामैथुन के कारण अपने षडङ्गों से उत्पन्न वीर्य को अग्नि के खुले हुये मुख में छोड़ दिया ॥६१॥

अग्नावुत्सृज्यमानस्य तेजसः शशभृद्भृतः ।
अणुद्वयमतिस्वल्पं गिरिप्रस्थे पपात ह ॥६२॥

उस समय चन्द्रमा से सुशोभित शिव के तेज को अग्नि में छोड़े जाते समय दो अत्यन्त छोटे अणु गिरिशिखर पर गिर गये ॥६२॥

तयोस्तु कणयोः सद्यः सम्भूतौ शङ्करात्मजौ ।
एको भृङ्गसमः कृष्णो भिन्नाञ्जननिभोऽपरः ॥६३॥

उन दोनों कणों (अणुओं) से शिव के दो पुत्र तत्काल उत्पन्न हो गये। उनमें से एक भृङ्गी के समान काला था तो दूसरा अञ्जन के समान आभावाला था॥६३॥

भृङ्गाभस्य तदा ब्रह्मा नाम भृङ्गीति चाकरोत् ।
महाकृष्णैकरूपस्य महाकालेति लोकभृत् ॥६४॥

तब लोक के भरण-पोषण करने वाले ब्रह्मा ने भृङ्गी के समान आभावाले पुत्र का नाम भृङ्गी तथा अत्यधिक काले रङ्ग वाले पुत्र का नाम महाकाल रखा ॥६४॥

ततस्तौ पालयामास शङ्करः प्रमथोत्करैः ।
अपर्णया चापि तथा क्रमात् तावति वर्द्धितौ ॥६५॥

तब भगवान् शङ्कर ने अपने गणों द्वारा उन दोनों का पालन किया और अपर्णा (पार्वती) द्वारा भी वे क्रमशः अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हुए ॥६५॥

प्रवृद्धौ तौ महात्मानौ हरोमाप्रतिपालितौ ।
क्रमाद् गणेशौ कृत्वा तौ हरो द्वारि न्ययोजयत् ॥६६॥

...गैर उमा द्वारा विशेष रूप से पाले गये वे दोनों महान् आत्मा वाले

21 / 646

क्रूरदृष्ट्या क्रूरयुद्धैः क्रूरकृत्यैरिमान् गणान् ।
वराहस्य घ्नतेत्येवं यतः प्रोक्तं कपर्दिना ।
अतस्ते क्रूरकर्माणः प्रजाताश्च भयङ्कराः ।।१७६।।

क्रूरदृष्टि, क्रूरकर्म तथा क्रूरयुद्ध से इन वाराहगणों को मार डालो। ऐसा शिव के कहने के कारण ही ये क्रूरकर्म वाले तथा भयंकर रूप में उत्पन्न हुये ॥ १७६ ॥

न सदा क्रूरकर्माणि ते कुर्वन्ति महौजसः ।
दृष्टिमात्रस्य ते क्रूराः क्रूरास्ते न तु कार्यतः ।।१७७।।

ये महान् ओजस्वी रुद्रगण सदैव क्रूर कर्म नहीं करते। वे देखने में ही क्रूर होते हैं कार्य से नहीं ॥ १७७ ॥

फलं जलं तथा पुष्पं पत्रं मूलं तथैव च ।।१७८।।
निवेदितानि भुञ्जन्ति वनपर्वतसानुषु ।
आहृत्यापि च भुञ्जन्ति पत्रं पुष्पादिकं च यत् ।।१७९।।

इन्हें जो कुछ फल, जल, पुष्प, पत्र, जड़ (मूल) निवेदन किया जाता है उसका तथा वनों और पर्वतों के शिखरों आदि से ये जो कुछ पत्र-पुष्पादि ले आते हैं, ये उसी का भोग करते हैं ॥ १७८-१७९ ॥

भवेद्भर्गस्य यद्भोग्यं तद्भोगास्ते महौजसः ।
आमिषाणि च नाश्नन्ति हित्वा चैत्रचतुर्दशीम् ।।१८०।।

शिव का जो भोग पदार्थ होता है वही इन महाबलियों का भी होता है। चैत्र की चतुर्दशी को छोड़कर कभी भी ये मांस नहीं खाते ॥ १८० ॥

तत्रामिषं हरो भुंक्ते चतुर्दश्या मधौ सदा ।
ततः सर्वे गणास्तत्र भुंजते पललान्यपि ।।१८१।।

वे शिव सदैव मधु (चैत्र) मास की चतुर्दशी को मांसभक्षण करते हैं। इसीलिए सभी गण भी उस दिन मांसभक्षण करते हैं ॥ १८१ ॥

हते वराहस्य गणे भर्गमासाद्य ते गणाः ।
चतुर्भागाः स्वयं भूत्वा भूतकर्मेति वै जगुः ।
भूतत्वमभवत्तेषां चतुर्भागवतां तदा ।
वचनात् पद्मयोनेस्तु भूतग्रामस्ततो मतः ।।१८२।।

4:40 AM
View 11

اورجوبرہمن کو عمدہ سنچیا دان دیتا وہ جب تک سورج اور چندرمان رہین گے تب تک چندر لوک مین رہیگا جو دیو...
کو دیپک دیتا وہ منونتر تک اگن لوک مین رہتا اور جو کوئی برہمن کو ہاتھی دان کرتا وہ جب تک اندر رہتے تب تک برابر اندر کے
آدھے آسن پر بیٹھا رہتا ہی اور جو گھوڑا دیتا ہی وہ جب تک چودہ اندر بھوگتے ہین تب تک برن لوک مین رہتا اور جو بڑی پالکی
برہمن کو دیتا وہ بھی برن لوک مین چودہ اندر کے رہنے کے برابر وقت تک رہتا اور بڑی پھلواری برہمن کو دیتا وہ بایو لوک مین
منونتر تک رہتا جو برہمن کو پنکھا اور سنور چھل دے تو دس ہزار برس بایو لوک مین رہے دہانیہ اور رتن جو کوئی دیتا وہ چرنجیو ہوتا اور
دینے والا اور لینے والا دونون بیکنٹھ باسی ہوتے ہین اور جو بھرت کھنڈ مین برابر سری کشن جی کا نام لیتا وہ چرنجیو ہوتا اور اسکو دیکھکر موت
بھاگتی ہی جو آدمی بھارت درش مین پورنماسی کے پچھلے پہر دیوتون کی دولن کرتے وہ جیون مکت ہوتے اور اس لوک مین سکھی ہوکر اخیر مین کشن جی
کے مندر کو جاتے ہین اور سو منونتر تک ضرور وہان رہتے ہین اور اُترا پھالگنی کو اس سے دگنا پھل ہوتا ہی اور کل پرلے کے آخر تک زندہ
رہتا جو بھارت کھنڈ مین برہمن کو تل دان دیتا وہ تلون کے برابر برس تک شیو مندر مین رہتا اور پھر اچھی جون مین پیدا
ہوکر عمر دراز ہوتا ہی اور جو تانبے کے ظروف مین تل بھر کے دان دیتا ہی وہ اس سے دگنا پھل پاتا ہی جو سب سنگار دن
سمیت بھوگنے کے لائق اپنی خوبصورت عورت برہمن کو دیتا وہ چندر لوک مین جب تک چودہ اندر بھوگین گے تب تک
رہیگا اور وہان سُرگ کی اپسراون کے ساتھ بہار کریگا پھر گندہربون کے لوک مین دس ہزار برس تک رہکر رات دن خوشی سے اُنہی
کے ساتھ بہار کریگا پھر بھرت کھنڈ مین ہزار جنم تک سُندری بہت خوش کلام سوبھاگ والی عورت پاویگا مگر یہ استری دان یون ہوتا

...وہ پہناکر عورت برہمن کو دیجاتی اور پھر طاقت کے موافق زر دکشنا دیجاتی ہی اور طرح لینے اور دینے والون کو نرک ہوگا اور جو
...ن کو پھل دان کرتا وہ پھلون کے برابر برس تک اندر لوک مین رہتا ہی اور اچھی جون مین پیدا ہوکر اچھی اولاد پاتا ہی جس بیٹے کے ہونے
...میت ہزار درختون کے برابر پھل ہوتا ہی جو کوئی صرف پھل برہمن کو دیتا وہ بہت دنون تک سرگ مین رہکر بھرت کھنڈ مین
...مان بہت سا روپیہ اور اسباب سمیت ہوتا اور جو برہمن کو اچھا گھر بنواکر دیتا وہ منونتر تک دیو لوک مین رہتا پھر اچھی جون مین
...یا دولت مند ہوتا جو غلہ لگی ہوئی زمین برہمن کو بہت دنون کے لیے دیتا وہ سو منونتر تک بیکنٹھ مین رہتا ہی اور پھر اچھے جون
...جہ ہوتا اور اسکو سو جنم تک زمین نہین چھوڑتی اور جب جب وہ پیدا ہوتا اسی سے دولت مند اور دلاور
...ہی اور جو گوؤن کے گھرون سمیت بڑا بھاری گانون برہمن کو دیتا وہ لاکھ منونتر تک بیکنٹھ مین رہتا پھر اچھی جون مین
...گانون سمیت ہوتا اور زمین لاکھ برس تک اُسے نہین چھوڑتی اور سُندر پرجا سمیت جسمین غلہ اور تالاب اور چھوٹے تالابون
...بیل سمیت گانون برہمن کو دیتا وہ دس لاکھ اندر دن کے بھوگ کرنے تک کیلاس مین رہتا پھر بھرت کھنڈ مین اچھی جون
...راجہ بلند ہوتا اور یہی یہان مین ہزار شہرون کا راجہ ہوتا اور اُسے ہزار برس تک زمین نہین چھوڑتی جو بڑی الشرح سمیت زمین بر بستا
...ب طرح سے آراستہ کرکے گانون سمیت دیس برہمن کو دیتا ہی جسمین کہ رعایا بسی ہو اور باولی۔ کنوان۔ تالاب۔ سمیت جسمین
...درخت لگے ہون وہ بیکنٹھ مین کروڑ منونتر تک بسنا پھر اچھی جون مین پیدا ہو جمبودویپ کا مالک ہوتا جیسے کہ اندر بڑے
...یت مین وہ زمین پر ویسے ہی ہوتا اور کروڑ جنم تک زمین اُسکو نہین چھوڑتی اور وہ کلپ کے اخیر تک زندہ رہکر بڑا راجہ شیر ہوتا
...ب اختیار برہمن کو دیدیتا وہ اُس سے چوگنا زیادہ پھل پاتا اور جو برہمن کو جمبودویپ ہی دیتا وہ اخیر مین اس سے سو حصے
...ار کو پاتا ہی پھر جمبودویپ دینے والا سب تیرتھون کی سیوا کرنے والا سب تپ کرنے والا سب تیرتھون مین بسنے والا سب
...والا یہ سب یہان ہی پُن کے بھوگنے پر چلے آتے ہین مگر اُسپر برہم کے بھگت نہین آتے اور وہ وہان
...دیکھتے ہین اور پھر دیبی کے من دویپ کو جاتے ہین اور جو دیبی کے منتر کے پوجنے والے ہین وہ آدمی کی...

449 / 599

پوجا کرتا اور نہ پاربتی اور شیولنگ کبھی پوجتا اُسے بھی برہم ہتیا لگتی ہے یہ شاستر کی ہوئی برہم ہتیا ہے اب شاستر کی کہی ہوئی گو ؤ ہتیا سُناتے
ہین جو کوئی گاے کو مارتا ہوا اُسے دیکھکر روکتا نہین اور جو برہمن گؤنکے سے کے بیچمین ہوکر مارگ چلتا اسکو گو ؤ ہتیا ہوتی اور جو برہمن گاے کو
ڈنڈے سے مارتا یا بیل اور گاے پر سواری کرتا اُسکو ہر روز گاے کے مارنے کا پاپ ہوتا اور جو گاے کو جھوٹا کھانا دیتا اور بیل کے اوپر سواری
کرنے والے کو کھانا کھلاتا یا اُسکا کھانا آپ کھاتا وہ گو ؤ ہتیا کا پاپ پاتا اور جو اگن مین پانون ڈالتا اور گاے بیل کو پانون سے مارتا اور نہاکر بغیر پانون
دھوئے دیوتا کے گھر یا شِو جی کے مندر شوالہ وغیرہ مین چلا جاتا اُسے بھی گاے کے مارنے کی ہتیا ہوتی اور جو گیلے پانون بغیر بھوجن کرتا اور گیلے پانون سے
سو رہتا اور جو سورج کے طلوع ہوتے ہی کھانا کھاتا وہ بھی گو ؤ ہتیا کرتا اور جو بیٹی سمیت بیوہ عورت کا کھانا کھاتا یا کٹنے سنکھو نکالا اور جو تینون وقت
سندھیا وغیرہ نہین کرتے وہ بھی گو ؤ ہتیا کا پاپ پاتا اور جو عورت اپنے خاوند اور دیوتا مین کچھ فرق سمجھتی اور تلخ کلام بول کر خاوند کو مارتی وہ بھی
گو ؤ ہتیا کا پاپ پاتی اور جو شخص جیسے کہ اُسکے بیٹے نے گاے مار ڈالی اُسکی محبت یا نہ جاننے سے پوتر ہونے کی تدبیر نہین کرتا اُسکو بھی گو ؤ
ہتیا ہوتی اور جو گانون کے پاس کی زمین جہان جانور بیٹھتے یا چرتے اُسے جُتا لیتے اور اُسکا اناج آپ کھاتے یا کسیکو دیتے یا تالاب کی زمین
یا پہاڑ کی کندرا یا پرانے قلع پر کچھ بوتے اُنکو بھی گو ؤ ہتیا ہوتی جنگل یا کسی ور فساد مین گاے کا مالک گاے کی حفاظت نہین کرتا اور دکھ دیتا
ہے وہ گو ؤ ہتیا پاتا ہے اور پرانی یا دیو مورت سا اگن جل کو نیبید پھول آن نہین دیتا اُسکو بھی برہم ہتیا ہوتی اور جو شخص مہمان کو دیکھکر
بار بار کہا کرتے کہ نہین ہے نہین ہے یا جھوٹھ کہکر ٹالتے ہین یا دیوتا اور گرو سے بگاڑ رکھتے اُنکو بھی گو ؤ ہتیا ہوتی اور جو دیوتا کی پرتما گرو یا اناج اور پاتھے
برہمن کو دیکھکر پرنام نہین کرتے وہ گو ؤ ہتیا پاتے پرنام کرنے پر غصہ سے جو برہمن آشیرباد نہین دیتا اور طالب علم کو علم نہین پڑھاتا وہ
گو ؤ ہتیا پاتا شاستر کی کہی ہوئی گو ؤ ہتیا اور برہم ہتیا تو بیان کی اب جو عورتین بھوگ کرنے کے لائق نہین اُنکی علامتین بیان کرتے ہین
سُنو۔ اپنی استری ہر ایک کے بھوگ کرنے کے لائق ہے یہ بید کا حکم ہے۔ اور اپنی عورت چھوڑ اور کی عورتین بھوگ کے لائق نہین ہین یہ
بید بادی لوگ کہتے ہین یہ عموماً بات کہی اب خاص کہتے ہین اب وہ عورتین جو بھوگ کرنیکے لائق نہین ہین اُنکو کہتے ہین شودرونکو برہمن
کی عورت اور برہمنون کو شودرون کی عورت سے بھوگ کرنا بہت ناجائز ہے کیونکہ سودر برہمنی کے ساتھ بھوگ کرنے سے سو جنم برہم ہتیا
کا پاپ پاتا اور برہمنی بھی شودر سے بھوگ کرانے سے سو برہم ہتیا پاتی اور کمبھی پاک نرک مین جاتی ہے اور شودرون کے اگر برہمن کی
عورت ہوتی اور برہمنون کو شودر کی عورت یہ سب کمبھی پاک مین رہتے اگر شودر کی عورت سے برہمن بھوگ کرے اُسکو برکھلی
پت کہتے ہین اور وہ برہمن کی ذات سے گر کر چنڈال سے بھی نیچ کہا جاتا ہے اور اُسکا دیا ہوا پنڈ اشٹھا کے برابر اور ترپن موت کے برابر
ہوتا وہ پتر اور دیوتا کسیکے کام کا نہین رہتا اور نہ اُسکا دیا ہوا دیوتا اور پتر کچھ قبول کرتے اور کرور جنم مین جو عبادت اور پوجا کرکے تپ اُسنے
اکٹھا کیا سب ناس ہو جاتی اور جو برہمن ہو شراب پیتا اور جو غلیظ کھانا کھاتا اور جو شودری کا پت ہوتا اور جو تپت مدرا سے انکت ہوتا اور جو بت
ول وغیرہ شیو ہوتا اور جو ایکادشی کے دن بھوجن کرتا یہ سب کمبھی پاک نرک کو جاتے اور گرو کی عورت ۔ راجہ کی عورت ۔ سوتیلی ما
کنواری لڑکی ۔ بہو ساس ۔ حمل والی عورت بہن ۔ پت برتا ۔ سگے بھائی کی چاہے چھوٹے بھائی ہو چاہے بڑے بھائی
کی عورت ہو ۔ اور مامی ۔ دادی ۔ نانی ۔ نانی کی بہن موسی ۔ بھائی کی کنیا ۔ چیلی ۔ چیلے کی عورت ۔ بھانجی ۔ بھتیجی ۔ انکو برہما
جی نے ات اگمیا کہا ہے یعنے یہ بھوگ کے لائق ہرگز نہین ہین اسلیے جو نیچ آدمی ان عورتون کے ساتھ بھوگ کرتا ہے بید مین اُسکا
ماترگامی یعنے ماتا کے ساتھ بھوگ کرنے والا نام ہے اور اُسکو نلو برہم ہتیا ہوتی ہین تو وہ کسی کرم کرنے کے لائق ہے اور جو نیکے

7:28 PM

गई और क्षणभर में ही पूर्ववृत्तान्त का स्मरण करने लगी।। ६६-६७ ॥

इदं विममृशे सन्ध्या तस्मिन् काले यथोचितम् ।
उत्पन्नमात्रां मां दृष्ट्वा युवतीं मदनेरितः ।
अकार्षीत् सानुरागोऽयमभिलाषं पितामहः ।।६८।।
सर्वेषां मानसानाञ्च मुनीनां भावितात्मनाम् ।
दृष्टैव मामममर्यादं सकाममभवन् मनः ।।६९।।

तब सन्ध्या ने उस समय के अनुरूप यह विचार किया—उत्पन्न होते ही मु युवती को देखकर काम से प्रेरित हो पितामह ब्रह्मा अनुरागवश मेरी अभिलाषा कर लगे। आत्मभाव में लीन रहने वाले सभी मुनियों का मन मुझे देखते ही मर्यादाही हो कामग्रस्त हो गया ॥ ६८-६९ ॥

ममापि मथितं चित्तं मदनेन दुरात्मना ।
येन दृष्ट्वा मुनीन् सर्वान् चलितं मे मनोभृशम् ।।७०।।

दुरात्मा मदन ने मेरे भी चित्त को मथ दिया था, जिससे सभी मुनियों को देखकर मेरा भी मन बहुत अधिक चञ्चल हो उठा था ॥ ७० ॥

फलमेतस्य पापस्य मदनः स्वयमाप्तवान् ।
स्वयं शशाप कुपितः शम्भोरग्रे पितामहः ।।७१।।

इस पाप का फल स्वयं कामदेव ने तभी प्राप्त कर लिया जब शिव के सामने ही पितामह ब्रह्मा ने कुपित हो उसे शाप दिया ॥ ७१ ॥

ममोचितं फलं सर्वं प्राप्तुमिच्छामि साम्प्रतम् ।।७२।।
यन्मां पिता भ्रातरश्च सकामामपरोक्षतः ।
दृष्ट्वा चक्रुः स्पृहां तस्मान्न मत्तः काऽपि पापकृत् ।।७३।।

अब मैं भी अपने अनुरूप फल पाने की इच्छा करूँ; क्योंकि जिस मुझे देखकर अपरोक्ष रूप में मेरे पिता एवं भाई ही काम मोहित हो गये, उसे देखकर कोई भी मत्त पापी मेरी स्पृहा न कर सके ॥ ७२-७३ ॥

ममापि कामभावोऽभूदमर्यादं समीक्ष्य तान् ।
पत्याविव स्वके ताते सर्वेषु सहजेष्वपि ।।७४।।

मेरे मन में भी उन्हें देखकर अपने ही पिता और भाइयों के प्रति पति की भाँति ही मर्यादाहीन कामभाव उत्पन्न हुआ ॥ ७४ ॥

करिष्याम्यस्य पापस्य प्रायश्चित्तमहं स्वयम् ।
आत्मानमग्नौ होष्यामि वेदमार्गानुसारतः ।।७५।।
किन्त्वेकां स्थापयिष्यामि मर्यादामिह भूतले ।
उत्पन्नमात्रा न यथा सकामाः स्युः शरीरिणः ।।७६।।

मैं स्वयं वेदमार्ग के अनुसार इस पाप का प्रायश्चित करूँगी, अपने आपको अग्नि में होम कर दूँगी। किन्तु इस पृथ्वी पर एक मर्यादा भी स्थापित करूँगी जिससे शरीरधारी उत्पन्न होते ही मात्र कामासक्त न होवें ॥ ७५-७६ ॥

एतदर्थमहं कृत्वा तपः परमदारुणम् ।
मर्यादां स्थापयित्वैव पश्चात्त्यक्ष्यामि जीवितम् ।।७७।।

इसलिए मैं परमदारुण तपस्या कर उपर्युक्त मर्यादा की स्थापना करूँगी। तत्पश्चात् अपने जीवन का परित्याग कर दूँगी ॥ ७७ ॥

महादेवजीने कहा—[illegible]! [स्वर्गकी प्राप्ति तो उन्हें भी होती है; किन्तु] तुरंत ऐसा न होनेमें एक कारण है—उनका ज्ञान लुप्त रहता है, वे अपने हित और अहितकी बात नहीं जानते। [इसलिये आँवलेके महत्त्वमें उनकी श्रद्धा नहीं होती।]

जिस घरकी मालकिन सहज ही काबूमें न आनेवाली, पवित्रता और संयमसे रहित, गुरुजनोंद्वारा निकाली हुई तथा दुराचारिणी होती है, वहाँ प्रेत रहा करते हैं। जो कुल और जातिसे नीच, बल और उत्साहसे रहित, बहरे, दुर्बल और दीन हैं, वे कर्मजनित पिशाच हैं। जो माता, पिता, गुरु और देवताओंकी निन्दा करते हैं, पाखण्डी और वाममार्गी हैं, जो गलेमें फाँसी लगाकर, पानीमें डूबकर, तलवार या छुरा भोंककर अथवा जहर खाकर आत्मघात कर लेते हैं, वे प्रेत होनेके पश्चात् इस लोकमें चाण्डाल आदि योनियोंके भीतर जन्म ग्रहण करते हैं। जो माता-पिता आदिसे द्रोह करते, ध्यान और अध्ययनसे दूर रहते हैं, व्रत और देवपूजा नहीं करते, मन्त्र और स्नानसे हीन रहकर गुरुपत्नी-गमनमें प्रवृत्त होते हैं तथा जो दुर्गतिमें पड़ी हुई चाण्डाल आदिकी स्त्रियोंसे समागम करते हैं, वे भी प्रेत होते हैं। म्लेच्छोंके देशमें जिनकी मृत्यु होती है, जो म्लेच्छोंके समान आचरण करते और स्त्रीके धनसे जीविका चलाते हैं, जिनके द्वारा स्त्रियोंकी रक्षा नहीं होती, वे निःसन्देह प्रेत होते हैं। जो क्षुधासे पीड़ित, थके-माँदे, गुणवान् और पुण्यात्मा अतिथिके रूपमें घरपर आये हुए ब्राह्मणको लौटा देते हैं—उसका यथावत् सत्कार नहीं करते, जो गो-भक्षी म्लेच्छोंके

प्रानूनानिति च गत्वा पुनस्तोमेन यजेत सर्वपृष्ठया वा ॥ १५ ॥

अनु—आरट्ट, कारस्कर, पुण्ड्र, सौवीर, वंग, कलिंग, प्रानून—इनमें से किसी प्रदेश की यात्रा करने पर (प्रायश्चित्तस्वरूप) पुनस्तोम या सर्वपृष्ठा इष्टि करनी चाहिए ॥ १५ ॥

टि०—इस सूत्र के अनुसार उपर्युक्त प्रदेशों में प्रवेश करना पापजनक या दोष का कारण होता है और उसके लिए प्रायश्चित्त करना होता है। अवन्ती प्रयाग से पश्चिमोत्तर प्रदेश, अंग पूर्वी बंगाल, मगध बिहार, सौराष्ट्र दक्षिणी काठियावाड़ का प्रदेश है। सौवीर सम्भवतः पश्चिमी-दक्षिणी पंजाब के निवासी थे।

आरट्टों का निवासस्थान पंजाब था, कारस्कर सम्भवतः दक्षिण भारतीय थे। कलिंग कृष्णा नदी के मुहाने और उड़ीसा के बीच का प्रदेश है। उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण ७।१८ में तथा महाभारत में भी है। इस विषय में ब्यूह्लेर के अंग्रेजी अनुवाद की टिप्पणी द्रष्टव्य है।

[2]पुनस्तोमो नाम एकाहः। इष्टप्रथमसोमस्यैव प्रायश्चित्तमेकाहकाण्डोक्तं द्रष्टव्यम्। 'यदि पद्भ्यामेव विशेषं कुर्वीतैष ह वै पद्भ्यां पापं करोत्यारट्टान् कारस्करान् पुण्ड्रान् सौवीरान् वा गच्छति' इति। [3]सर्वपृष्ठेष्टिस्त्वाहिताग्नि-

---

१. स्त्रीपुंसयोरिति, ग. पु.

२. अथैष पुनस्तोमः "यो बहु प्रतिगृह्य गरगीरिव मन्येत स एतेन यजेत" (तां. ब्रा. १९.४.१) (का. श्रौ. २२.१०.१६) इत्यनेन यो विहितस्सोमयाग एकाहात्मकः सः। एकसुत्याकस्सोमयाग एकाह इत्युच्यते।

३. बृहत्, रथन्तर वैरूप, वैराज, शाक्वर, रैवताख्यानि, षट् सामानि पृष्ठाख्यस्तोत्रसाधनभूतानि। तत्प्रतिपाद्य गुणविशिष्ट इन्द्रो देवताऽस्या इष्टेरिति कृत्वा इष्टिरियं सर्वपृष्ठेष्टिरिति कथ्यते।

मात्रस्य। सा च 'य इन्द्रियकामो वीर्यकामस्स्या'दित्यत्र विहिता। अनाहिताग्नेस्तु वक्ष्यति—'प्रतिषिद्धदेशगमन' इति ॥ १५ ॥

पुनरप्याहिताग्नेरेव देशान्तरगमने प्रायश्चित्तमाह—

अथाऽप्युदाहरन्ति—

पद्भ्यां स कुरुते पापं यः कलिङ्गान् प्रपद्यते।
ऋषयो निष्कृतिं तस्य प्राहुर्वैश्वानरं हविः ॥ १६ ॥

अनु०—इसी विषय में एक और गाथा कही जाती है—जो कलिङ्ग देश की यात्रा करता है वह पैरों से पाप करता है, उसके प्रायश्चित्त के लिए ऋषियों ने वैश्वानरी इष्टि का विधान किया है ॥ १६ ॥

टि०—कलिंगगमन के लिए १५ के अन्तर्गत उद्धृत गाथा में पुनस्तोम या सर्वपृष्ठ इष्टि का प्रायश्चित्त बताया गया है, उसका अन्य विकल्प वैश्वानरी इष्टि भी है। गोविन्दस्वामी ने एक विशिष्टता प्रदर्शित की है कि आरट्ट आदि में न केवल प्रवेश के लिए अपितु वहाँ के लोगों के साथ बोलने, उठने-बैठने के लिए भी प्रायश्चित्त करना होता है, किन्तु कलिंग में यात्रामात्र के लिए ही प्रायश्चित्त करना होता है।

[redacted]

म्लेच्छदेशे तथा रात्रौ संध्यायां च विशेषतः ।
न श्राद्धमाचरेत्प्राज्ञो म्लेच्छदेशे न च व्रजेत् ॥३०॥

म्लेच्छों के देश में, रात्रि में और विशेष रूप से सन्ध्याकाल में बुद्धिमान् श्राद्ध न करे और म्लेच्छों के देश में न जाए ।

हस्तिच्छायासु यद्दत्तं यद्दत्तं राहुदर्शने ।
विषुवत्ययने चैव सर्वमानन्त्यमुच्यते ॥३१॥

जो श्राद्ध गजच्छाया योग में दिया जाता है, जो राहुदर्शन (ग्रहण) में दिया जाता है, जो वैशाख अथवा श्रावण मास के अन्तिम दिन और जो मकर अथवा कर्कट सक्रान्ति में दिया जाता है, वह अनन्तता के लिये कहा गया है ।

प्रोष्ठपद्यामतीतायां मघायुक्तां त्रयोदशीम् ।
प्राप्य श्राद्धं तु कर्तव्यं मधुना पायसेन वा ॥३२॥

प्रोष्ठपदी (भाद्रपद की पूर्णिमा) के बीत जाने पर मघा नक्षत्र से युक्त त्रयोदशी को मधु अथवा खीर से श्राद्ध करे ।

प्रजा पुष्टि यशः स्वर्गमारोग्यं च धनं तथा ।
नृणां श्राद्धैः सदा प्रीताः प्रयच्छन्ति पितामहाः ॥३३॥

पितर गण मनुष्यों के द्वारा दिये हुए श्राद्धों से प्रसन्न होकर सदा सन्तान, पौष्टिकता, कीर्ति, स्वर्ग, नीरोगता और धन प्रदान करते हैं ।

इति शाङ्खीये धर्मशास्त्रे चतुर्दशोऽध्यायः ।

508

॥ पञ्चदशोऽध्यायः ॥

समस्त पाप धोकर देवता बन जाता है।

महादेवजीने कहा—बेटा! कार्तिक मासको उपस्थित देख जो मनुष्य दूसरेका अन्न त्याग देता है, वह प्रतिदिन कृच्छ्रव्रतका फल प्राप्त करता है। कार्तिकमें तेल, मधु, काँसेके बर्तनमें भोजन और मैथुनका विशेषरूपसे परित्याग करना चाहिये। एक बार भी मांस भक्षण करनेसे मनुष्य राक्षसकी योनिमें जन्म पाता है और साठ हजार वर्षोंतक विष्ठामें डालकर सड़ाया जाता है। उससे छुटकारा पानेपर वह पापी विष्ठा खानेवाला ग्राम-शूकर होता है। कार्तिक मासमें शास्त्रविहित भोजनका नियम करनेपर अवश्य ही मोक्ष प्राप्त होता है। भगवान् विष्णुका परमधाम ही मोक्ष है। कार्तिकके समान कोई मास नहीं है, श्रीविष्णुसे बढ़कर कोई देवता नहीं है, वेदके तुल्य कोई शास्त्र नहीं है, गङ्गाके समान कोई तीर्थ नहीं है, सत्यके समान सदाचार, सत्ययुगके समान युग, रसनाके तुल्य तृप्तिका साधन, दानके सदृश सुख, धर्मके समान मित्र और नेत्रके समान कोई ज्योति नहीं है।*

...नां तु भक्षाणां कार्तिके नियमे कृते ॥

...र्तिकसमो मासो न देवः केशवात्परः ॥

प्रानूनानिति च गत्वा पुनस्तोमेन यजेत सर्वपृष्ठया वा ॥ १५ ॥

अनु--आरट्ट, कारस्कर, पुण्ड्र, सौवीर, वंग, कलिंग, प्रानून--इनमें से किसी प्रदेश की यात्रा करने पर (प्रायश्चित्तस्वरूप) पुनस्तोम या सर्वपृष्ठा इष्टि करनी चाहिए ॥ १५ ॥

टि०—इस सूत्र के अनुसार उपर्युक्त प्रदेशों में प्रवेश करना पापजनक या दोष का कारण होता है और उसके लिए प्रायश्चित्त करना होता है। अवन्ती प्रयाग से पश्चिमोत्तर प्रदेश, अंग पूर्वी बंगाल, मगध बिहार, सौराष्ट्र दक्षिणी काठियावाड़ का प्रदेश है। सौवीर सम्भवतः पश्चिमी-दक्षिणी पंजाब के निवासी थे।

आरट्टों का निवासस्थान पंजाब था, कारस्कर सम्भवतः दक्षिण भारतीय थे। कलिंग कृष्णा नदी के मुहाने और उड़ीसा के बीच का प्रदेश है। उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण ७।१८ में तथा महाभारत में भी है। इस विषय में ब्यूह्लेर के अंग्रेजी अनुवाद की टिप्पणी द्रष्टव्य है।

[2]पुनस्तोमो नाम एकाहः। इष्टप्रथमसोमस्यैव प्रायश्चित्तमेकाहकाण्डोक्तं द्रष्टव्यम्। 'यदि पद्भ्यामेव विशेषं कुर्वीतैष ह वै पद्भ्यां पापं करोत्यारट्टान् कारस्करान् पुण्ड्रान् सौवीरान् वा गच्छति' इति। [3]सर्वपृष्ठेष्टिस्त्वाहिताग्नि-

१. स्त्रीपुंसयोरिति, ग. पु.

२. अथैष पुनस्तोमः "यो बहु प्रतिगृह्य गरगीरिव मन्येत स एतेन यजेत" (तां. ब्रा. १९.४.१) (का. श्रौ. २२.१०.१६) इत्यनेन यो विहितस्सोमयाग एकाहात्मकः सः। एकसुत्याकस्सोमयाग एकाह इत्युच्यते।

३. बृहत्, रथन्तर वैरूप, वैराज, शाक्वर, रैवताख्यानि, षट् सामानि पृष्ठाख्यस्तोत्रसाधनभूतानि। तत्प्रतिपाद्य गुणविशिष्ट इन्द्रो देवताऽस्या इष्टेरिति कृत्वा इष्टिरियं सर्वपृष्ठेष्टिरिति कथ्यते।

मात्रस्य। सा च 'य इन्द्रियकामो वीर्यकामस्स्या'दित्यत्र विहिता। अनाहिताग्नेस्तु वक्ष्यति—'प्रतिषिद्धदेशगमन' इति ॥ १५ ॥

पुनरप्याहिताग्नेरेव देशान्तरगमने प्रायश्चित्तमाह—

अथाऽप्युदाहरन्ति—

पद्भ्यां स कुरुते पापं यः कलिङ्गान् प्रपद्यते।
ऋषयो निष्कृतिं तस्य प्राहुर्वैश्वानरं हविः ॥ १६ ॥

अनु०—इसी विषय में एक और गाथा कही जाती है—जो कलिङ्ग देश की यात्रा करता है वह पैरों से पाप करता है, उसके प्रायश्चित्त के लिए ऋषियों ने वैश्वानरी इष्टि का विधान किया है ॥ १६ ॥

टि०—कलिंगगमन के लिए १५ के अन्तर्गत उद्धृत गाथा में पुनस्तोम या सर्वपृष्ठ इष्टि का प्रायश्चित्त बताया गया है, उसका अन्य विकल्प वैश्वानरी इष्टि भी है। गोविन्दस्वामी ने एक विशिष्टता प्रदर्शित की है कि आरट्ट आदि में न केवल प्रवेश के लिए अपितु वहाँ के लोगों के साथ बोलने, उठने-बैठने के लिए भी प्रायश्चित्त करना होता है, किन्तु कलिंग में यात्रामात्र के लिए ही प्रायश्चित्त करना होता है।

मथुरापुरीके राज्यका पालन करने लगे। भरतने सिंधु नदीके दोनों तटोंपर अधिकार जमाये हुए गन्धर्वोंका संहार करके उस देशमें अपने दोनों महाबली पुत्रोंको स्थापित कर दिया। इसी प्रकार लक्ष्मणने मद्रदेशमें जाकर मद्रोंका वध किया और अपने दो महापराक्रमी पुत्रोंको वहाँके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया। तत्पश्चात् अयोध्यामें आकर वे श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी सेवा करने लगे। श्रीरघुनाथजीने एक तपस्वी शूद्रको मारकर मृत्युको प्राप्त हुए एक ब्राह्मणबालकको जीवन प्रदान किया। तत्पश्चात् नैमिषारण्यमें गोमतीके तटपर श्रीरघुनाथजीने सुवर्णमयी जानकीकी प्रतिमाके साथ बैठकर अश्वमेध यज्ञ किया। वहाँ भारी जनसमाज एकत्रित था। उन्होंने बहुत-से यज्ञ किये।

इसी समय महात
लेकर वहाँ आये अ
बोले—'उत्तम व्रतक
मिथिलेशकुमारी सीता
निर्मल और सती-साध्
नहीं होती, उसी प्रकार ये भी कभी आपसे अलग नहीं होतीं। आप भी पापके सम्पर्कसे रहित हैं; फिर आपने इनका त्याग कैसे किया?'

श्रीराम बोले—ब्रह्मन्! मैं जानता हूँ, आपके कथनानुसार जानकी सर्वथा निष्पाप हैं। बात यह है कि सती-साध्वी सीताको दण्डकारण्यमें रावणने हर लिया था। मैंने उस दुष्टको युद्धमें मार डाला। उसके बाद सीताने अग्निमें प्रवेश करके जब अपनेको शुद्ध प्रमाणित कर दिया, तब मैं धर्मतः इन्हें लेकर पुनः अयोध्यामें आया। यहाँ आनेपर इनके प्रति नगरनिवासियोंमें महान् अपवाद फैला। यद्यपि ये तब भी सदाचारिणी ही थीं,

महादेवजीने कहा—बेटा ! [स्वर्गकी प्राप्ति तो उन्हें भी होती है; किन्तु] तुरंत ऐसा न होनेमें एक कारण है—उनका ज्ञान लुप्त रहता है, वे अपने हित और अहितकी बात नहीं जानते। [इसलिये आँवलेके महत्त्वमें उनकी श्रद्धा नहीं होती।]

जिस घरकी मालकिन सहज ही काबूमें न आनेवाली, पवित्रता और संयमसे रहित, गुरुजनोंद्वारा निकाली हुई तथा दुराचारिणी होती है, वहाँ प्रेत रहा करते हैं। जो कुल और जातिसे नीच, बल और उत्साहसे रहित, बहरे, दुर्बल और दीन हैं, वे कर्मजनित पिशाच हैं। जो माता, पिता, गुरु और देवताओंकी निन्दा करते हैं, पाखण्डी और वाममार्गी हैं, जो गलेमें फाँसी लगाकर, पानीमें डूबकर, तलवार या छुरा भोंककर अथवा जहर खाकर आत्मघात कर लेते हैं, वे प्रेत होनेके पश्चात् इस लोकमें चाण्डाल आदि योनियोंके भीतर जन्म ग्रहण करते हैं। जो माता-पिता आदिसे द्रोह करते, ध्यान और अध्ययनसे दूर रहते हैं, व्रत और देवपूजा नहीं करते, मन्त्र और स्नानसे हीन रहकर गुरुपत्नी-गमनमें प्रवृत्त होते हैं तथा जो दुर्गतिमें पड़ी हुई चाण्डाल आदिकी स्त्रियोंसे समागम करते हैं, वे भी प्रेत होते हैं। म्लेच्छोंके देशमें जिनकी मृत्यु होती है, जो म्लेच्छोंके समान आचरण करते और स्त्रीके धनसे जीविका चलाते हैं, जिनके द्वारा स्त्रियोंकी रक्षा नहीं होती, वे निःसन्देह प्रेत होते हैं। जो क्षुधासे पीड़ित, थके-माँदे, गुणवान् और पुण्यात्मा अतिथिके रूपमें घरपर आये हुए ब्राह्मणको लौटा देते हैं—उसका यथावत् सत्कार नहीं करते, जो गो-भक्षी म्लेच्छोंके

समस्त भोग-समर्पणके द्वारा, आत्मामें अभेद-बुद्धिसे क्षेत्रज्ञके चिन्तनद्वारा तथा सम्पूर्ण भूतोंमें भगवान्‌को व्यापक मानकर उनके प्रति समतापूर्ण भावके द्वारा श्रीहरिका पूजन करना चाहिये। इन सभी स्थानोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित भगवान्‌के चतुर्भुज एवं शान्त रूपका ध्यान करते हुए एकाग्रचित्त होकर आराधन करना उचित है। ब्राह्मणोंके पूजनसे भगवान्‌की भी पूजा हो जाती है। तथा ब्राह्मणोंके फटकारे जानेपर भगवान् भी तिरस्कृत होते हैं। वेद और धर्मशास्त्र जिनके आधारपर टिके हुए हैं, वे ब्राह्मण भगवान् विष्णुके ही स्वरूप हैं; उनका नामोच्चारण करनेसे मनुष्य पवित्र हो जाते हैं। राजन्! संसारमें धर्मसे ही सब प्रकारके शुभ फलोंकी प्राप्ति होती है और धर्मका ज्ञान वेद तथा धर्मशास्त्रसे होता है। उन दोनोंके भी आधार इस पृथ्वीपर ब्राह्मण ही हैं; अतः उनकी पूजा करनेसे जगदीश्वर ही पूजित होते हैं। देवाधिदेव विष्णु यज्ञ और दानोंसे, उग्र तपस्यासे, योगके अभ्याससे तथा सम्यक् पूजनसे भी उतने प्रसन्न नहीं होते, जितना ब्राह्मणोंको संतुष्ट करनेसे होते हैं। वेदोंके जाननेवाले ब्रह्माजी भी ब्राह्मणोंके भक्त हैं। ब्राह्मण देवता हैं, इस बातके वे ही प्रवर्तक हैं। वे ब्राह्मणोंको देवता मानते हैं; अतः

अंगुली से दंत धावन और प्रत्यक्ष (केवल) लवण का भक्षण, मिट्टी का भक्षण करना गौ मांस भक्षण के समान है।

दिवा कपित्थच्छायायां रात्रौ दधि शमीषु च ।
कार्पासं दन्तकाष्ठं च विष्णोरपि हरेच्छ्रियम् ।।३१५।।

दिन में कैंथ की छाया और रात्र में दधि का भक्षण और शमी (छोंकर) और कपास के काठ से दंत धावन, ये विष्णु की लक्ष्मी को भी हरते हैं।

शूर्पवातनखाग्रांबुस्नानं वस्त्रपदोदकम् ।
मार्जनीरेणुकेशांबु हंति पुण्यं दिवाकृतम् ।।३१६।।

मार्जनीरजकेशांबु देवतायतनोद्भवम् ।
तेनावगुंठितं तेषु गंगांभःप्लुत एव सः ।।३१७।।

सूप की पवन, नखों के अग्रभाग का जल, स्नान का वस्त्र, घट का जल और मार्जनी (झाडु) की धूल, और केशों का जल यदि ये पूर्वोक्त छओं देवता के स्थान के हों और इनमें जो लोटे तो वह पुरुष मानो गंगाजी के जल में लोटा है। मार्जनी धूल और केशों का जल ये दोनों दिन भर में किये गए पुण्य को नष्ट करते हैं।

मृत्तिकाः सप्त न ग्राह्या वल्मीके मूषिकस्थले ।
अंतर्जले श्मशानांते वृक्षमूले सुरालये ।।३१८।।

वृषभैश्च तथोत्खाते श्रेयष्कामैः सदा बुधैः ।।३१९।।
शुचौ देशे तु संग्राह्या शर्कराश्मविवर्जिता ।।३२०।।

वल्मी की, मूसों के स्थान की, जल के भीतर की, श्मशान की, वृक्ष के जड़ की, देवता के स्थान की, और बैलों द्वारा खोदी गई इन सातों स्थानों की मिट्टी को, कल्याण चाहने वाले द्विजों में उत्तम ग्रहण न करे। कंकर और पत्थर शुद्ध स्थान की मिट्टी ग्रहण करनी चाहिए।

देवत्व, सुख, राज्य, धन, यश, विजय, भोग, आरोग्य, आयु, विद्या, लक्ष्मी, पुत्र, बन्धुवर्ग एवं सब प्रकारके मङ्गलकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? यह बतानेकी कृपा कीजिये।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! इस पृथ्वीपर ब्राह्मण सदा ही विद्या आदि गुणोंसे युक्त और श्रीसम्पन्न होता है। तीनों लोकों और प्रत्येक युगमें ब्राह्मण-देवता नित्य पवित्र माने गये हैं। ब्राह्मण देवताओंका भी देवता है। संसारमें उसके समान दूसरा कोई नहीं है। वह साक्षात् धर्मकी मूर्ति है और इस पृथ्वीपर सबको मोक्ष प्रदान करनेवाला है। ब्राह्मण सब लोगोंका गुरु, पूज्य और तीर्थस्वरूप मनुष्य है। ब्रह्माजीने उसे सब देवताओंका आश्रय बनाया है। पूर्वकालमें नारदजीने इसी विषयको ब्रह्माजीसे इस प्रकार पूछा था—'ब्रह्मन्! किसकी पूजा करनेपर भगवान् लक्ष्मीपति प्रसन्न होते हैं?'

ब्रह्माजी बोले—जिसपर ब्राह्मण प्रसन्न होते हैं, उसपर भगवान् श्रीविष्णु भी प्रसन्न हो जाते हैं। अतः ब्राह्मणकी सेवा करनेवाला मनुष्य परब्रह्म परमात्माको प्राप्त होता है। ब्राह्मणके शरीरमें सदा ही श्रीविष्णुका निवास है। जो दान, मान और सेवा आदिके द्वारा प्रतिदिन ब्राह्मणोंकी पूजा करता है, उसके द्वारा मानो ... अनुसार उत्तम दक्षिणासे युक्त सौ ... हो जाता है। जिसके घरपर आया हुआ

न जमने दे। नखको मुँहमें न डाले। रविवार और मंगलको तेल न लगाये। अपने शरीर और आसनपर ताल न दे। गुरुके साथ एक आसनपर न बैठे। श्रोत्रियके धनका अपहरण न करे। देवता और गुरुका भी धन न ले। राजा, तपस्वी, पङ्गु, अंधे तथा स्त्रीका धन भी न ले। ब्राह्मण, गौ, राजा, रोगी भारसे दबा हुआ मनुष्य, गर्भिणी स्त्री तथा अत्यन्त दुर्बल पुरुष सामनेसे आते हों तो स्वयं किनारे होकर उन्हें जानेके लिये रास्ता दे। राजा, ब्राह्मण तथा वैद्यसे झगड़ा न करे। ब्राह्मण और गुरु-पत्नीसे दूर ही रहना चाहिये। पतित, कोढ़ी, चाण्डाल, गोमांस-भक्षी और समाजबहिष्कृतको दूरसे ही त्याग दे। जो स्त्री दुष्टा, दुराचारिणी, कलङ्क लगानेवाली, सदा ही कलहसे प्रेम करनेवाली, प्रमादिनी, निडर, निर्लज्ज, बाहर घूमने-फिरनेवाली, अधिक खर्च करनेवाली और सदाचारसे हीन हो, उसको भी दूरसे ही त्याग देना चाहिये।

बुद्धिमान् शिष्यको उचित है कि वह रजस्वला अवस्थामें गुरुपत्नीको प्रणाम न करे, उसका चरण-स्पर्श न करे; यदि उस अवस्थामें भी वह उसे छू ले तो पुनः स्नान करनेसे ही उसकी शुद्धि होती है। शिष्य गुरु-पत्नीके साथ खेल-कूदमें भी भाग न ले। उसकी बात अवश्य सुने; किन्तु उसकी ओर आँख उठाकर देखे नहीं। पुत्रवधू, भाईकी स्त्री, अपनी पुत्री, गुरुपत्नी तथा

पार्वती देवीने कहा—नारद ! युवती स्त्रियोंका चित्त सदा पुरुषोंमें ही लगा रहता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। नारी घीसे भरे हुए घड़ेके समान है और पुरुष दहकते हुए अँगारेके समान; इसलिये घी और अग्निको एक स्थानपर नहीं रखना चाहिये।* जैसे मतवाले हाथीको महावत अङ्कुश और मुगदरकी सहायतासे अपने वशमें करता है, उसी प्रकार स्त्रियोंका रक्षक उन्हें दण्डके बलसे ही काबूमें रख सकता है। बचपनमें पिता, जवानीमें पति और बुढ़ापेमें पुत्र नारीकी रक्षा करता है; उसे कभी स्वतन्त्रता नहीं देनी चाहिये।† सुन्दरी स्त्रीको यदि उसकी इच्छाके अनुसार स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय तो पर-पुरुषकी प्रार्थनासे अधीर होकर वह उसके आदेशके अनुसार व्यभिचारमें प्रवृत्त हो जाती है। जैसे तैयार की हुई रसोईपर दृष्टि न रखनेसे उसपर कौए और कुत्ते अधिकार जमा लेते हैं, उसी प्रकार युवती नारी स्वच्छन्द होनेपर व्यभिचारिणी हो जाती है। फिर उस कुलटाके संसर्गसे सारा कुल दूषित हो जाता है। पराये बीजसे उत्पन्न होनेवाला मनुष्य वर्णसंकर कहलाता है।‡ सदाचारिणी स्त्री पितृकुल और पतिकुल—दोनों कुलोंका सम्मान बढ़ाती हुई उन्हें कायम रखती है। साध्वी नारी अपने कुलका उद्धार करती और दुराचारिणी उसे नरकमें गिराती है। कहते हैं—संसारमें स्त्रीके ही अधीन स्वर्ग, कुल, कलङ्क, यश, अपयश, पुत्र, पुत्री और मित्र आदिकी स्थिति है। इसलिये विद्वान् पुरुष सत्पात्रकी

किये बिना ही मर जाता है, वह कौआ होता है। सौ वर्षोंतक कौएकी योनिमें रहनेके बाद वह मुर्गा होता है। तत्पश्चात् एक मासतक सर्पकी योनिमें निवास करता है। उसके बाद वह मनुष्य होता है। जो पिताके समान बड़े भाईका अपमान करता है, वह मृत्युके बाद क्रौञ्च-योनिमें जन्म लेता है और दस वर्षोंतक जीवन धारण करता है। तत्पश्चात् मरनेपर वह मनुष्य होता है। शूद्रजातीय पुरुष ब्राह्मणीके साथ समागम करनेपर कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है। उससे मृत्यु होनेपर वह सूअर होता है। सूअरकी योनिमें जन्म लेते ही रोगसे उसकी मृत्यु हो जाती है। तदनन्तर वह मूर्ख पूर्वोक्त पापके ही फलस्वरूप कुत्तेकी योनिमें उत्पन्न होता है। उसके बाद उसे मानव-शरीरकी प्राप्ति होती है। मानवयोनिमें संतान उत्पन्न करके वह मर जाता है और चूहेका जन्म पाता है। कृतघ्न मनुष्य मृत्युके बाद जब यमराजके लोकमें जाता है, उस समय क्रूर यमदूत उसे बाँधकर भयंकर दण्ड देते हैं। उस दण्डसे उसको बड़ी वेदना होती है। दण्ड, मुद्गर, शूल, भयंकर अग्निदण्ड, असिपत्रवन, तप्तवालुका तथा कूटशाल्मलि आदि

(369 / 434) -सी घोर यातनाओंका अनुभव करके वह संसारचक्रमें आता और कीडेकी योनिमें

दक्षिणमें एक यवनोंका राजा रहता था, उसने अपने पुत्र कालयवनको अपने राज्यपर अभिषिक्त किया और स्वयं वनमें चला गया। कालयवन बलके मदसे उन्मत्त रहता था। एक बार उसने नारदजीसे पूछा—'पृथ्वीपर बलवान् राजा कौन-कौन-से हैं?' नारदजीने यादवोंको बतलाया। उसने हाथी, घोड़े और रथसहित खरबों म्लेच्छोंकी सेना साथ लेकर यादवोंपर आक्रमणकी तैयारी की। वह प्रतिदिन अविच्छिन्न गतिसे यात्रा करता हुआ मथुराको गया। यादवोंके प्रति उसके हृदयमें बड़ा अमर्ष था। उसके आक्रमणका समाचार जानकर श्रीकृष्णने सोचा—'यदि कालयवनने आकर यादवोंकी सेनाका संहार कर दिया तो अवसर देखकर मगधराज जरासंध भी आक्रमण करेगा और यदि पहले जरासंधने ही आकर हमारी सेनाको क्षीण कर दिया तो बलवान् कालयवन बचे-खुचे सैनिकोंको मार डालेगा। अहो! यदुवंशियोंपर दोनों प्रकारसे संकट उपस्थित है; अतः इससे बचनेके लिये मैं यादवोंके निमित्त अत्यन्त दुर्जय दुर्गका निर्माण करूँगा, जहाँ रहकर स्त्रियाँ भी युद्ध कर सकती हैं, फिर वृष्णियों और यादवोंकी तो बात ही क्या। यदि मैं सोया अथवा बाहर गया होऊँ तो भी उस दुर्गमें रहनेपर दुष्ट शत्रु यादवोंको अधिक कष्ट न दे सकें।' यह सोचकर

(322 / 434)

मुद्रसे बारह योजन भूमि माँगी और उसीमें द्वारकापुरीका निर्माण किया। उसमें बड़े-

बाहर
अस्त्र
काल
ही व
पीछा
द्वारा
पकड़
उसके
गुफामें
सोये
करके
समझ

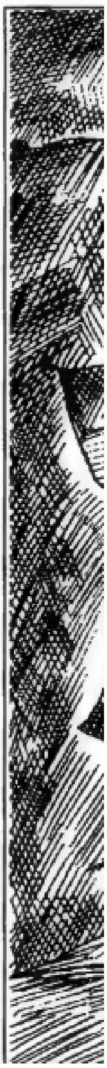

हुआ। उनका अग्निहोत्र और भोजन छूट गया। वे न किसीकी बात सुनते थे और न किसीकी ओर देखते थे। मृतककी-सी अवस्थामें पड़े रहते थे। उस समय पुरोहितने युक्तियुक्त वचनोंद्वारा उन्हें समझाया—'राजन्! तुम तो बुद्धिमान् हो; क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि इन स्त्रियोंका हृदय भेड़ियोंकी तरह कठोर होता है। तुम शोक न करो। महाराज! इस संसारमें कौन ऐसा पुरुष है, जो कामिनियोंसे ठगा न गया हो। वञ्चना, क्रूरता, चञ्चलता और दुश्चरित्रता—ये जिन स्त्रियोंके स्वाभाविक दुर्गुण हैं, वे सुखदायिनी कैसे हो सकती हैं? कालने किसको नहीं मारा। याचक होनेपर किसको गौरव प्राप्त हुआ। धन-सम्पत्तिसे किसका मन भ्रान्त नहीं हुआ और युवती स्त्रियोंने किसको धोखा नहीं दिया।* राजन्! जिनका हृदय मदसे उन्मत्त रहता है, वे युवतियाँ स्वप्न और मायाके समान मिथ्या हैं। वे किसको सुख दे सकती हैं। यह जानकर तुम निश्चिन्त हो जाओ। महामते! भगवान् शंकर, विष्णु तथा गोदावरी नदीको छोड़कर तीनों लोकोंमें दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो दुःखियोंको शरण दे सके।'

पुरोहितका यह कथन सुनकर राजाने यत्नपूर्वक अपने दुःखको दूर किया। वे गोदावरीके मध्यभागमें (जहाँ रेत थी) रहकर भगवान् शिव, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, गङ्गा तथा अन्यान्य देवताओंकी आराधना

(245 / 434) । जो विपत्तिमें पड़नेपर तीर्थों और

...ण पत्नी-त्यागके दोषका वर्णन, दुर्वासाका पुनः ...कृष्णका युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें पधारना, ...सके आत्माद्वारा श्रीकृष्णका स्तवन, ...ण-चरितका निरूपण

...र्षि दुर्वासा ...क्तिपूर्वक ...लासको ... शिवाको ...त्रभावसे ...ी स्तुति ..., अपनी ...वैराग्यका ...ी पार्वती ... संनिकट ...र्ति। ...का तत्त्व ...नते हो।

भला, तुम अपनी संतानहीना पत्नीका परित्याग करके कहाँ तपस्याके लिये जा रहे हो? जो अपनी कुलीना पतिव्रता युवती पत्नीको संतानहीन अवस्थामें त्यागकर संन्यासी, ब्रह्मचारी अथवा यति हो जाता है; व्यापार अथवा नौकर आदिके निमित्त चिरकालके लिये दूर चला जाता है, मोक्षके हेतु अथवा आवागमनका विनाश करनेके लिये तीर्थवासी अथवा तपस्वी हो जाता है, उसे पत्नीके शापसे मोक्ष तो मिलता नहीं; उलटे धर्मका नाश हो जाता है—परलोकमें उसे निश्चय ही नरककी प्राप्ति होती है और इस लोकमें उसकी कीर्ति नष्ट हो जाती है। ऐसा कमलजन्मा ब्रह्माने कहा है। इसलिये हे विप्र! इस समय

दिया। तब उसने भी पति और अग्निकी परिक्रमा करके कहा—'स्वामीके साथ चितामें प्रवेश करना स्त्रियोंके लिये बहुत बड़ा धर्म है। वेदमें इस मार्गका विधान है और लोकमें भी सबने इसकी प्रशंसा की है। जैसे साँप पकड़नेवाला मनुष्य साँपको बिलसे बलपूर्वक निकाल लेता है, उसी प्रकार पतिका अनुगमन करनेवाली नारी पतिके साथ ही स्वर्गलोकमें जाती है।'[२]

यों कहकर कपोतीने पृथ्वी, देवता, गङ्गा

त्। एतदप्यर्थिने देयं शीतार्तो लुब्धकस्त्वयम्॥ (८०।६०)

म्। वेदे च विहितो मार्गः सर्वलोकेषु पूजितः॥

त्। एवं त्वनुगता नारी सह भर्त्रा दिवं व्रजेत्॥

(८०।७५-७६)

जाकर राजाका संदेश सुना दिया। सरस्वतीने स्वीकार कर लिया तथा अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार वह पुरूरवाके पास आयी। राजाने सरस्वती नदीके तटपर उसके साथ अनेक वर्षोंतक विहार किया। यह देख मैंने सरस्वतीको शाप दे दिया। मेरे शापके कारण वह मृत्युलोकमें कहीं लुप्त हो गयी है और कहीं दिखायी देती है। जहाँ सरस्वती नदी गङ्गामें मिली है, वहाँ पहुँचकर राजा पुरूरवाने तपस्या की और महादेवजीकी आराधना करके गङ्गाजीके प्रसादसे सम्पूर्ण अभीष्ट प्राप्त कर लिया। तबसे उस स्थानका नाम पुरूरवस्तीर्थ, सरस्वती-संगम और ब्रह्मतीर्थ पड़ गया। वहाँ सिद्धेश्वर नामसे प्रसिद्ध महादेवजी रहते हैं। वह तीर्थ समस्त कामनाओंको देनेवाला है।

उसके सिवा सावित्री, गायत्री, श्रद्धा, मेधा और सरस्वती—ये पाँच पुण्य तीर्थ हैं। वहाँ स्नान और जलपान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो [illegible] है। ये पाँचों मेरी कन्याएँ हैं, जो नदीरूपमें [illegible] हो गयी हैं। जहाँ वे भगवती गङ्गासे

नित्य वेद का अध्ययन करने वाले, तथा जप और होम करने वाले, किन्तु शूद्र के अन्न के रस से पुष्ट होने वाले, (द्विज) को उक्त गति प्राप्त नहीं होती।

शूद्रान्न शूद्रसम्पर्कः शूद्रेण तु सहासनम्।
शूद्राज्ज्ञानागमश्चापि ज्वलन्तमपि पातयेत् ॥३२॥

शूद्र का अन्न, शूद्र का सम्पर्क, शूद्र के साथ एक आसन पर बैठना और शूद्र से ज्ञान प्राप्त करना—ये सब बातें प्रतापी को भी पतित कर देती हैं।

यः शूद्र्या पाचयेन्नित्य शूद्री च गृहमेधिनी।
वर्जितः पितृदेवेभ्यो रौरवं याति स द्विजः ॥३३॥

जो शूद्री से भोजन पकवाता है और शूद्री को जिसने पत्नी बना रखा है, पितरों और देवों से परित्यक्त वह द्विज रौरव नरक में जाता है।

मृतसूतकपुष्टाङ्गो द्विजः शूद्रान्नभोजने।
अहं तां न विजानामि कां कां योनिं गमिष्यति ॥३४॥

मृतक और सूतक में भोजन करने से पुष्ट हुए अ गों वाले और शूद्र के अन्न का भोजन करने वाले उस द्विज को मै नहीं जानता, कि वह किस-किस योनि में जाएगा।

गृध्रो द्वादश जन्मानि दश जन्मानि शूकरः।
श्वयोनौ सप्त जन्मानि इत्येवं मनुरब्रवीत् ॥३५॥

423

बारह जन्मों तक गीध, दस जन्मो तक सूअर बनेगा, और सात जन्मों तक कुत्ते की योनि में जाएगा-- ऐसा मनु का कथन है।

दक्षिणार्थं तु यो विप्रः शूद्रस्य जुहुयाद्धविः।
ब्राह्मणस्तु भवेच्छूद्रः शूद्रस्तु ब्राह्मणो भवेत् ॥३६॥

दक्षिणा के लिये जो ब्राह्मण शूद्र का होम कराएगा, तो वह ब्राह्मण शूद्र हो जाएगा और शूद्र ब्राह्मण हो जाएगा।

मौनव्रतं समाश्रित्य आसीनो न वदेद् द्विजः।
भुञ्जानो हि वदेद्यस्तु तदन्नं परिवर्जयेत् ॥३७॥

मौन व्रत धारण करके बैठा हुआ द्विज न बोले, और जो भोजन करता हुआ बोलता है, वह उस अन्न को (जिसे वह खा रहा है) त्याग दे।

ऊषरे वापितं वीजं भिन्नभाण्डेषु गोदुहम् ।
हुत भस्मनि हव्यञ्च मूर्खे दानमशाश्वतम् ॥६२॥

ऊषर में बोया हुआ बीज, फूटे पात्रों में दुहा हुआ गऊ का दूध, राख में डाली हुई आहुति और मूर्ख को दिया हुआ दान नाशवान् होता है ।

मृतसूतकपुष्टाङ्गो द्विज शूद्रान्नभोजने ।
अहमेवं न जानामि का योनि स गमिष्यति ॥६३॥

मृतक और सूतक के अन्न से पुष्ट हुए अगों वाला और शूद्र द्वारा पकाए अन्न का भोजन करने वाला ब्राह्मण मैं नहीं जानता कि वह किस योनि में जाएगा ।

शूद्रान्नेनोदरस्थेन यदि कश्चिन्म्रियेत यः ।
स भवेच्छूकरो नूनं तस्य वा जायते कुले ॥६४॥

जो कोई भी मनुष्य यदि उदर में स्थित शूद्र के अन्न के साथ मर जाए, तो वह निश्चय से सूअर बनता है, अथवा उस (शूद्र) के कुल में उत्पन्न हो जाता है ।

गृध्रो द्वादश जन्मानि सप्त जन्मानि शूकरः ।
श्वा चैव सप्त जन्मानि इत्येवं मनुरब्रवीत् ॥६५॥

बारह जन्मों तक गीध, सात जन्मों तक सूअर और सात जन्मों तक कुत्ता बनता है, ऐसा मनु ने कहा है ।

अमृतं ब्राह्मणान्नेन दरिद्रं क्षत्रियस्य च ।
वैश्यान्नेन तु शूद्रत्व शूद्रान्नान्नरकं व्रजेत् ॥६६॥

ब्राह्मण के अन्न से अमृत (मोक्ष), क्षत्रिय के अन्न से दरिद्रता, वैश्य के अन्न से शूद्रता और शूद्र के अन्न से (मनुष्य) नरक को प्राप्त करता है ।

यश्च भुङ्क्तेऽथ शूद्रान्नं मासमेकं निरन्तरम् ।
इह जन्मनि शूद्रत्वं मृतः श्वा चैव जायते ॥६७॥

और जो मनुष्य एक मास तक निरन्तर शूद्र का अन्न खाए, तो इस जन्म में शूद्रता को प्राप्त करता है, और मरकर कुत्ता उत्पन्न होता है ।

यस्य शूद्रा पचेन्नित्यं शूद्रा वा गृहमेधिनी ।
वर्जितः पितृदेवैस्तु रौरवं याति स द्विजः ॥६८॥

जिसके लिये शूद्र स्त्री नित्य भोजन पकाती है, अथवा शूद्रा जिसके घर वाली है, पितरों और देवताओं से त्यागा हुआ वह द्विज रौरव नरक में जाता है ।'

braham
vaivat puran

है। है। और और ण्णव ण्णव ाकर लेता ामन ब्रह्म ुरुष जाते कोंमें आते । वे और हैं। , वे भी ! जो

ही नरकमें जाते हैं। चारों ही वर्ण अपने धर्ममें कटिबद्ध रहनेपर ही शुभकर्मका फल भोगनेके अधिकारी होते हैं। जो अपना कर्तव्य-कर्म नही करते, वे अवश्य ही नरकमें जाते हैं। कर्मका फल भोगनेके लिये वे भारतवर्षमें नहीं आ सकते। अतएव चारों वर्णोंके लिये अपने धर्मका पालन करना अत्यन्त आवश्यक है।

अपने धर्ममें संलग्न रहनेवाले ब्राह्मण, स्वधर्मनिरत विप्रको अपनी कन्या देनेके फलस्वरूप चन्द्रलोकको जाते हैं और वहाँ चौदह मन्वन्तर कालतक रहते हैं। साध्वि! यदि कन्याको अलंकृत करके दानमें दिया जाय तो उससे दुगुना फल प्राप्त होता है। उन साधु पुरुषोंमें यदि कामना हो तब तो वे चन्द्रमाके लोकमें जाते हैं। निष्कामभावसे दान करें तो वे भगवान् विष्णुके परम धाममें पहुँच जाते हैं। गव्य (दूध), चाँदी, सुवर्ण, वस्त्र, घृत, फल और जल ब्राह्मणोंको देनेवाले पुण्यात्मा पुरुष चन्द्रलोकमें जाते हैं। साध्वि! एक मन्वन्तरतक वे वहाँ सुविधापूर्वक निवास करते हैं। उस दानके प्रभावसे उन्हें वहाँ सुदीर्घ कालतक निवास प्राप्त होता है। पतिव्रते! पवित्र ब्राह्मणको और ताम्र आदि द्रव्यका दान करनेवाले

अपात्रीकरण पातक करनेपर एक मासतक चान्द्रायणव्रत करनेसे शुद्धि होती है। मलिनीकरण पातक होनेपर तीन दिनतक तप्तयावकका पान करे। क्षत्रियका वध करनेपर ब्रह्महत्याका चौथाई प्रायश्चित्त विहित है। वैश्यका वध करनेपर अष्टमांश, सदाचारी शूद्रका वध करनेपर षोडशांश प्रायश्चित्त करे। बिल्ली, नेवला, नीलकण्ठ, मेढक, कुत्ता, गोह, उलूक, काक अथवा चारोंमेंसे किसी वर्णकी स्त्रीकी हत्या होनेपर शूद्रहत्याका प्रायश्चित्त करे। स्त्रीकी अज्ञानवश हत्या करके भी शूद्रहत्याका प्रायश्चित्त करे। सर्पादिका वध होनेपर 'नक्तव्रत' और अस्थिहीन जीवोंकी हत्या होनेपर 'प्राणायाम' करे॥ १८—२८॥

औषध अ
दूध पीक

मित्रप
वीर्यपात व
फुफेरी ब
बहनसे ग

मनुष्येतर
अन्य स्था

मनुष्य 'कृ
स्त्रीके सा
मैथुन क
चाण्डाल अ
समागम

ब्राह्मणका चरणोदक पीते रहो। इससे कामदेवके समान रूपवान् तथा रोगहीन हो जाओगे। जबतक पृथ्वी ब्राह्मणके चरणोदकसे भीगी रहती है, तबतक उस ब्राह्मणभक्त पुरुषके पितर कमलके पत्तोंमें जल पीते हैं। पृथ्वीपर जो-जो तीर्थ हैं, वे सब समुद्रमें भी हैं और समुद्रमें जो तीर्थ हैं, वे सब ब्राह्मणके चरणोंमें हैं। ब्राह्मणका चरणोदक पापों तथा रोगोंका विनाश करनेवाला है। वह सम्पूर्ण तीर्थोंके जलके समान भोग तथा मोक्ष देनेवाला और शुभ है। ब्राह्मण मनुष्यके रूपमें साक्षात् देवाधिदेव जनार्दन हैं। ब्राह्मणके दिये हुए पदार्थको सब देवता भोग लगाते हैं।

ऐसा कहकर ब्राह्मण सुतपा सुयज्ञके सत्कारको ग्रहण करके अपने घरको चले गये। जाते-जाते

दिव्[illegible]
किय[illegible]
परमेश्वरी
राजाके
मनुष्यदेह
कर लि

विमानद्वारा राजाको साथ ले गोलोकमें चली गयीं। राजाने विरजा नदी तथा मनोहर शतशृङ्ग पर्वतसे घिरे हुए, श्रीवृन्दावनसे युक्त तथा रासमण्डलसे मण्डित गोलोकका दर्शन किया। वह धाम गौओं, [illegible]पसमूहोंसे सेवित तथा रत्नेन्द्रसारसे [illegible] मनोहर भवनोंद्वारा सुशोभित हो

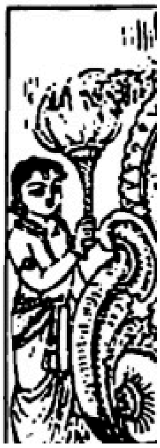

श्रीराधाजीका गङ्गापर रोष, श्रीकृष्णके प्रति राधाका उपालम्भ, श्रीराधाके भयसे गङ्गाका श्रीकृष्णके चरणोंमें छिप जाना, जलाभावसे पीड़ित देवताओंका गोलोकमें जाना, ब्रह्माजीकी स्तुतिसे राधाका प्रसन्न होना तथा गङ्गाका प्रकट होना, देवताओंके प्रति श्रीकृष्णका आदेश तथा गङ्गाके विष्णुपत्नी होनेका प्रसङ्ग

नारदजीने पूछा—सुरेश्वर! कलिके पाँच हजार वर्ष बीत जानेपर गङ्गाका कहाँ जाना होगा? महाभाग! यह प्रसङ्ग मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायणने कहा—नारद! सरस्वतीके शापसे गङ्गा भारतवर्षमें आयीं। शापकी अवधि पूरी हो जानेपर वह पुनः भगवान् श्रीहरिकी आज्ञासे वैकुण्ठमें चली जायँगी। ऐसे ही सरस्वती भारतवर्षको छोड़कर श्रीहरिके धाममें पधारेंगी। शाप समाप्त हो जानेपर लक्ष्मीका भी भगवान्के पास पधारना होगा। नारद! ये ही गङ्गा, सरस्वती और लक्ष्मी भगवान् श्रीहरिकी प्रेयसी पत्नियाँ हैं। ब्रह्मन्! तुलसीसहित चार पत्नियाँ वेदोंमें प्रसिद्ध हैं।

नारदजीने पूछा—भगवन्! भगवान् श्रीहरिके चरणकमलोंसे प्रकट हुई गङ्गादेवी किस प्रकार परब्रह्मके कमण्डलुमें रहीं तथा शंकरकी प्रिया होनेका सुअवसर उन्हें कैसे मिला? मुनिवर! गङ्गा भगवान् नारायणकी प्रेयसी भी हो चुकी हैं। अहो! किस प्रकार ये सभी बातें संघटित हुईं? आप यह रहस्य मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायणने कहा—नारद! पूर्वकालमें

सभी अङ्ग रत्नमय अलंकारोंसे अलंकृत थे। शरद्-ऋतुके मध्याह्नकालमें खिले हुए कमलकी भाँति उनका मुस्कानभरा मुख परम मनोहर था। उनकी आभा तपाये हुए सुवर्णके सदृश थी। तेजमें वह शरत्कालके चन्द्रमाको भी परास्त कर रही थीं। मनोहरसे भी मनोहर उनकी कान्ति थी। उन्होंने शुद्ध सात्त्विक स्वरूप धारण कर रखा था। विशाल दो नेत्र अनुपम शोभा बढ़ा रहे थे। अत्यन्त कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे वे देख रही थीं। सुन्दर अलकावली शोभा बढ़ा रही थी। उसमें उन्होंने मालतीके पुष्पोंका मनोहर हार लगा रखा था। ललाटपर चन्दन-विन्दुओंके साथ सिन्दूरकी सुन्दर बिंदी थी। दोनों मनोहर गण्डस्थलोंपर कस्तूरीसे पत्ररचनाएँ हुई थीं। नीचे उनका अधर-ओष्ठ इतना सुन्दर था मानो दुपहरियाका विकसित फूल हो। दाँतोंकी अत्यन्त उज्ज्वल पंक्ति पके हुए अनारके दानोंकी भाँति चमक रही थी। अग्नि-शुद्ध दो दिव्य वस्त्रोंको उन्होंने धारण कर रखा था। ऐसी वे गङ्गा लज्जाका भाव प्रदर्शित करती हुई भगवान् श्रीकृष्णके पास विराजमान हो गयीं। वे अञ्चलसे अपना मुँह ढककर निर्निमेष नेत्रोंसे भगवान्के मुखरूपी अमृतका निरन्तर प्रसन्नतापूर्वक

अपात्रीकरण पातक करनेपर एक मासतक चान्द्रायणव्रत करनेसे शुद्धि होती है। मलिनीकरण पातक होनेपर तीन दिनतक तप्तयावकका पान करे। क्षत्रियका वध करनेपर ब्रह्महत्याका चौथाई प्रायश्चित्त विहित है। वैश्यका वध करनेपर अष्टमांश, सदाचारी शूद्रका वध करनेपर षोडशांश प्रायश्चित्त करे। बिल्ली, नेवला, नीलकण्ठ, मेढक, कुत्ता, गोह, उलूक, काक अथवा चारोंमेंसे किसी वर्णकी स्त्रीकी हत्या होनेपर शूद्रहत्याका प्रायश्चित्त करे। स्त्रीकी अज्ञानवश हत्या करके भी शूद्रहत्याका प्रायश्चित्त करे। सर्पादिका वध होनेपर 'नक्तव्रत' और अस्थिहीन जीवोंकी हत्या होनेपर 'प्राणायाम' करे॥ १८—२८॥

औषध अ
दूध पीक
मित्रप
वीर्यपात
फुफेरी ब
बहनसे
मनुष्येतर
अन्य स्था
मनुष्य 'कृ
स्त्रीके सा
मैथुन क
चाण्डाल
समागम

का ध्यान एवं पूजन
का दर्शन कराते हैं।
और जपका उपदेश
है; किंतु इष्टदेवने
ये गुरु इष्टदेवसे भी
ष्णु हैं, गुरु महेश्वरदेव
ो (दुर्गा देवी) हैं,
, गुरु ही वायु और
और सुहृद् हैं तथा
गुरुसे बढ़कर दूसरा
के रुष्ट होनेपर गुरु
करनेमें समर्थ हैं।
म्पूर्ण देवता मिलकर
नेमें समर्थ नहीं हैं।
से पग-पगपर विजय
त्र रुष्ट हैं, उसके लिये
रहती है। जो मूढ़
इष्टदेवका पूजन करता
पापका भागी होता
दमें साक्षात् भगवान्
ो है। इसलिये गुरु
जनीय हैं।
देव तथा इष्टदेवका
क वेदमें बताये हुए
क मल और मूत्रका
निकटका स्थान,
निवासके निकट,
जड़के पास, मार्ग,
ीसे भरे हुए खेत,
का स्थान, फुलवाड़ी,
भूमि, गाँव आदिके
आसपासका स्थान,
त, सरकंडोंके वन,
क्रीडास्थल (खेल-
, मचानके नीचेका

स्थान, पेड़की छायासे युक्त स्थान, जहाँ भूमिके भीतर प्राणी रहते हों वह स्थान, जहाँ ढेर-के-ढेर पत्ते जमा हों वह भूमि, जहाँ घनी दूब उगी हो अथवा कुश जमे हों वह स्थान, बाँबी, जहाँ वृक्ष लगाये गये हों वहाँकी भूमि तथा जो किसी विशेष कार्यके लिये झाड़-बुहारकर साफ की गयी हो, वह भूमि—इन सबको छोड़कर सूर्यके तापसे रहित स्थानमें गड्ढा खोद उसीमें मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये।

दिनमें उत्तराभिमुख होकर मल-मूत्रका त्याग करे; रातमें पश्चिमकी ओर मुँह करके और संध्याकालमें दक्षिणकी ओर मुँह रखते हुए मलोत्सर्ग तथा मूत्रोत्सर्ग करना उचित है। मौन रहकर, जोर-जोरसे साँस न लेते हुए मलत्याग करे, जिससे उसकी दुर्गन्ध नाकमें न जाय। मलत्यागके पश्चात् उस मलको मिट्टी डालकर ढक दे। तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुष गुदा आदि अङ्गोंको शुद्ध करे। पहले ढेले या मिट्टीसे गुदा आदिकी शुद्धि करे। तत्पश्चात् उसे जलसे धोकर शुद्ध करे। मृत्तिकायुक्त जो जल शौचके उपयोगमें आता है, उसका परिमाण सुनो। मूत्रत्यागके पश्चात् लिङ्गमें एक बार मिट्टी लगाये और धोये। फिर बायें हाथमें चार बार मिट्टी लगाकर धोये। तत्पश्चात् दोनों हाथोंमें दो बार मिट्टी लगाकर धोना चाहिये, यह मूत्र-शौच कहा गया। यदि मैथुनके अनन्तर मूत्र-शौच करना हो तो उसमें मिट्टी लगाने और धोनेकी संख्या दुगुनी कर दे अथवा मैथुनके अनन्तरका शौच मूत्र-शौचकी अपेक्षा चौगुना होना चाहिये। मलत्यागके पश्चात् लिङ्गमें एक बार, गुदामें तीन बार, बायें हाथमें दस बार तथा दोनों हाथोंमें सात बार मिट्टी देनी चाहिये। छठे बार मिट्टी लगाकर धोनेसे पैरोंकी शुद्धि होती है। गृहस्थ ब्राह्मणोंके लिये मलत्यागके अनन्तर यही शौच बताया गया है। विधवाओंके लिये इस शौचका परिमाण दुगुना बताया गया है।

एवं ब्रह्मचारियोंके
गुने शौचका विधान

पालन करके मुँह धोये। पहले सोलह बार कुल्ला करके मुख शुद्ध करनेके पश्चात् दँतुवनसे दाँतकी

शालिहोत्र, अग्निवेश्य, युवनाश्व, शरद्वसु, छगल, कुण्डकर्ण, कुम्भ, प्रवाहक, उलूक, विद्युत, शाद्वल, आश्वलायन, अक्षपाद, कुमार, उलूक, वत्स, कुशिक, गर्ग, मित्रक और ऋष्य (नामक शिष्य थे)॥ २२—२६॥

योगियोंके* समस्त अवतारोंकी आवृत्तिमें ये ही महात्मा शिष्य होते हैं। ये सभी शुद्ध, ब्रह्मभूयिष्ठ और ज्ञान-योगपरायण हैं। ब्राह्मणोंके कल्याणके लिये तथा वेदोंकी स्थापनाके लिये योगेश्वर(परब्रह्म)-के आदेशसे (ये महात्मा) अवतार धारण करते हैं॥ २७-२८॥

जो ब्राह्मण सर्वदा इनका स्मरण करते हैं, इन्हें नमस्कार करते हैं, इनका तर्पण करते हैं और इनकी पूजा करते हैं, वे ब्रह्मविद्याको प्राप्त कर लेते हैं। वैवस्वत मन्वन्तरका विस्तारसे वर्णन किया। सावर्ण (आठवाँ) तथा (नवाँ) दक्षसावर्ण मन्वन्तर भविष्यमें होंगे। दसवाँ ब्रह्मसावर्ण, ग्यारहवाँ धर्मसावर्ण, बारहवाँ रुद्रसावर्ण तथा तेरहवाँ रोचमान मन्वन्तर है। चौदहवाँ भौत्य मन्वन्तर कहा गया है। ये मनु क्रमसे भविष्यमें होंगे॥ २९—३१॥

मैंने नारायणद्वारा कहे गये भूत, भविष्य तथा वर्तमानके आख्यानोंसे उपबृंहित इस पूर्वभागको आप लोगोंसे कहा। जो (ब्राह्मण) इसे पढ़ेगा, सुनेगा अथवा श्रेष्ठ द्विजोंको* सुनायेगा, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्माके साथ आनन्द प्राप्त करेगा। स्नान करनेके अनन्तर नदियोंके किनारोंपर अथवा देवमन्दिरमें भक्तिभावसे

सब पापों के विनाश के लिये नित्य शान्तचित्त होकर एक मास तक गोबर को खाते हुए यावक नामक व्रत को करे।

ग्रासं चन्द्रकलावृद्ध्या प्राश्नीयाद्वर्धयन्सदा।
ह्रासयेच्च कलाहानौ व्रत चान्द्रायणं चरेत् ॥११॥

चन्द्रमा की कला की वृद्धि के साथ सदा एक-एक ग्रास को बाढ़ाता हुआ भोजन करे, और फिर कला के ह्रास के साथ एक-एक ग्रास को घटाते हुए, इस प्रकार चान्द्रायण व्रत करे।

मुण्डस्त्रिषवणस्नायी अधःशायी जितेन्द्रियः।
स्त्रीशूद्रपतितानां च वर्जयेत्परिभाषणम् ॥१२॥

सिर मुंडवा कर त्रिषवण स्नान करे, जितेन्द्रिय होकर धरती पर शयन करे और स्त्रियों, शूद्रों और पतितों के साथ वार्तालाप का परित्याग करे।

पवित्राणि जपेच्छक्त्या जुहुयाच्चैव शक्तितः।
अयं विधिः स विज्ञेयः सर्वकृच्छ्रेषु सर्वदा ॥१३॥

शक्ति के अनुसार पवित्रो का जप करे और सामर्थ्य के अनुसार अग्नि में होम करे। व्रत करने वाले को सदा यह विधि सभी कृच्छ्रो में जाननी चाहिये।

पापात्मानस्तु पापेभ्यः कृच्छ्रैः सतारिता नराः।
गतपापादिकं यान्ति नात्र कार्या विचारणा ॥१४॥

अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता॥

जो अधमसे भी अधम हैं, स्त्रियाँ उनमें भी अत्यन्त अधम हैं; और उनमें भी हे पापनाशन! मैं मन्दबुद्धि हूँ। श्रीरघुनाथजीने कहा—हे भामिनि! मेरी बात सुन। मैं तो केवल एक भक्तिहीका सम्बन्ध मानता हूँ॥ २॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि स्त्रीशूद्रपतनानि च ।
जपस्तपस्तीर्थयात्रा प्रव्रज्या मंत्रसाधनम् ।।१३५।।
देवताराधनं चैव स्त्रीशूद्रपतनानि षट् ।

इससे आगे स्त्री और शूद्रों के पतित होने के कारणों को कहता हूं। जप, तप, तीर्थो की यात्रा, सन्यास, मंत्र को सिद्ध करना, और देवता की आराधना—ये छः कर्म स्त्री और शूद्रों के पतित करने के हेतु है।

जीवद्भर्त्तरि या नारी उपोष्य व्रतचारिणी ।।१३६।।
आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ।
तीर्थस्नानार्थिनी नारी पतिपादोदकं पिबेत् ।।१३७।।

जो स्त्री पति के जीते हुए उपवास व्रत करती है वह स्त्री अपने पति की अवस्था को हरती है और स्वयं नरक को जाती है। यदि स्त्री को तीर्थ के स्नान की इच्छा हो तो अपने पति के चरणों को धोकर पीये।

शंकरस्यापि विष्णोर्वा प्रयाति परमं पदं ।
जीवद्भर्तरि वामांगी मृते वापि सुदक्षिणे ।।१३८।।

शिव अथवा विष्णु के पद को अर्थात् कैलाश और वैकुंठ को वह स्त्री प्राप्त होती है जो पति के जीते हुए वाम अंग में और पति के मरने पर दक्षिण अंग में स्थित होती है।

बृहस्पतिजी बोले—हम आपको अब श्राद्ध में दिये दान और उसके फलों को बतलायेंगे। जो मनुष्य श्राद्ध में अन्न का दान करता है। वह मनुष्य स्वर्ण के बने हुए दिव्य सुन्दरी अप्सराओं से भरे हुए विमान को प्राप्त करता है जो मनुष्य श्राध्द में औरन के लिए नया वस्त्र दान करे उसको ऐश्वर्य, सुन्दरता, पुत्र और दीर्घायु मिलती है। जो मनुष्य श्राद्ध कर्म में जनेऊ का दान करता है और सभी श्रेष्ठ पवित्र ब्राह्मणों को पानी पिलाते हैं, उसे ब्रह्म विद्या दान का फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य श्राध्द के दिन कमंडुल दान करते हैं उसको गौ दान का फल प्राप्त होता है जो मनुष्य श्राध्द के समय चक्राकार चिन्ह से बना हुआ कमण्डुल दान करता है, उसके सभी मनोरथ सफल होते हैं। जो मनुष्य सुन्दर फूलों से सजी हुई शय्या दान करते हैं उसकी वह दान दी हुई उत्तम शय्या परलोक तक उसके साथ २ चलती है। श्राद्ध के दिन हीरे, मोती और रत्नों से सजी हुई शय्या दान करता है उसे स्वर्ग प्राप्त होता है। एक हजार घोड़ों का दान करने से, एक हजार हाथियों के दान करने से तथा सौ रथों के दान करने से वह मनुष्य योगिनी के साथ निवास करता है। जो मनुष्य श्रध्दा सहित पितरों के निमित्त दीपक जलाते हैं उसे एक हजार निष्कों के दान का फलप्राप्त होता है सभी प्राणियों के एक दूसरे

प्राणों की रक्षा का दान करना चाहिये, क्योंकि प्राणदान के समान
कोई दूसरा दान नहीं है। श्राद्धों में सोने के बर्तनों का दान करना
चाहिये। श्राद्ध के समय सभी प्रकार के खाद्य पदार्थों से भरा हुआ
चांदी का बर्तन दान करने से श्राद्ध करने वाले व्यक्ति के सभी मनो-
रथ पूर्ण होते हैं। जो व्यक्ति श्राद्ध में ब्याही हुई गाय के साथ दूध
दुहने के पात्र को दान करने से उसे बहुत सी गायों के पुण्य का फल
मिलता है। सरदी के मौसम में जो व्यक्ति अग्नि और सूखे ईंधन को
दान करता है वह मनुष्य हर समय विजयी होता है। श्री सम्पन्न
होकर सुखी रहता है। श्राध्द के समय फूल मालाओं को और सुन्दर
बर्तनों को दान करना चाहिये। जो मनुष्य आसन, शय्या, प्रचुर

74

कुमारीसम्भवस्त्वेकः सगोत्रायां द्वितीयकः ॥९॥
ब्राह्मण्यां शूद्रजनितश्चाण्डालस्त्रिविधः स्मृतः ।

ब्राह्मणी में शूद्र के द्वारा उत्पन्न किया हुआ चाण्डाल होता है और उसका धार्मिक क्रियाओं में अधिकार नहीं होता । चाण्डाल तीन प्रकार का माना गया है—एक कुमारी से उत्पन्न होने वाला, दूसरा सगोत्र से उत्पन्न होने वाला और (तीसरा) ब्राह्मणी में शूद्र के द्वारा उत्पन्न किया हुआ ।

वर्द्धकी नापितो गोप आशापः कुम्भकारकः ॥१०॥
वणिक्किरातकायस्थमालाकारकुटुम्बिनः ।
वरटो मेदचण्डालदासश्वपचकोलकाः ॥११॥
एतेऽन्त्यजाः समाख्याता ये चान्ये च गवाशनाः ।
एषां सम्भाषणात् स्नानं दर्शनादर्कवीक्षणम् ॥१२॥

वैवाहिक सबध के स्थायित्व का विचार वर्ण की दृष्टि से किया जाता था। वसिष्ठ का मत है कि जितना ही ऊँचा वर्ण होगा वैवाहिक जीवन उतना ही अधिक स्थाई होगा। इसी दृष्टि से विहित किया गया है कि यदि पति घर छोडकर चला जाए तो ब्राह्मण या क्षत्रिय की पत्नी जिसे सतान हो पाँच वर्ष तक प्रतीक्षा करेगी वैश्य की पत्नी चार वर्ष तक और शूद्र की तीन वर्ष तक राह देखेगी। यदि उसे सतान नही हो तो ब्राह्मण की स्थिति में प्रतीक्षा की अवधि एक वर्ष घट जाएगी और क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र की प्रतीक्षा अवधि दो दो वर्ष कम हो जाएगी।[267] इसके फलस्वरूप शूद्र की पत्नी को केवल एक वर्ष तक प्रतीक्षा करनी होगी। इस तरह के नियम से पुन यह अर्थ निकलता है कि निम्न वर्ण की स्त्रियाँ अपेक्षाकृत अधिक स्वाधीन होती थी और उनका विवाह सबध आसानी से विच्छेदन योग्य था।

किंतु उच्च वर्ण के पति अपनी शूद्र पत्नियों के प्रति समान बर्ताव नही करते थे। वसिष्ठ का कहना है कि काली जाति की शूद्र पत्नी को सुख संभोग के लिए रखैल रखा जा सकता है [268] पर उससे विवाह नही किया जा सकता।[269] इसी ग्रथ के एक परिच्छेद में यह अनुमति दी गई है कि आर्य शूद्र जाति की महिलाओं से विवाह कर सकता है यदि उस विवाह में समुचित वेदमत्रों का पाठ न किया जाए। किंतु स्वय वसिष्ठ इसे वाछनीय नहीं

← शतपथ ब्राह्मणम् खंड १...

मनोर्ह वाऽऋषभ आस। तस्मिन्नसुरघ्नी सपत्नघ्नी वाक्प्रविष्टास तस्य ह स्म श्वसथाद्रवथादसुररक्षसानि मृद्यमानानि यन्ति ते हासुराः समूदिरे पापं वत नोऽयमृषभः सचते कथं न्विमं दभ्नुयामेति किलाताकुलीऽइति हासुरब्रह्मा वासतुः ॥१४॥

तौ होचतुः। श्रद्धादेवो वै मनुरावं नु वेदावेति तौ हागत्योचतुर्मनो याजयाव त्वेति केनेत्यनेनर्षभेणेति तथेति तस्यालब्धस्य सावागपचक्राम ॥१५॥

सा मनोरेव जायांमनावीं प्रविवेश। तस्यै ह स्म यत्र वदन्त्यैशृण्वन्ति ततो ह स्मैवासुररक्षसानि मृद्यमानानि यन्ति ते हासुराः समूदिरऽइतो वै नः पापीयः सचते भूयो हि मानुषी वाग्वदतीति किलाताकुली हैवोचतुः श्रद्धादेवो वै मनुरावं न्वेव वेदावेति तौ हागत्योचतुर्मनो याजयाव त्वेति केनेत्यनयैव जाययेति तथेति तस्याऽआलब्धायै सा वागपचक्राम ॥१६॥

सा यज्ञमेव यज्ञपात्राणि प्रविवेश। ततो हैनां न शेकतुर्निर्हन्तुꣳ सैषासुरघ्नी वागुद्वदति स यस्य हैवं विदुष एतामत्र वाचं प्रत्युद्वादयन्ति पापीयाꣳसोहैवास्य सपत्ना भवन्ति ॥१७॥

मनु के पास एक बैल था। उसमें असुर को मारने वाली और शत्रु को मारने वाली वाणी घुस गई। जब वह हुँकारता और चिल्लाता तो असुर राक्षस मर जाते थे। तब असुरों ने कहा, 'यह यह बैल तो हमारा बड़ा अनर्थ करता है, इसको कैसे मारें ? 'असुरों के ऋत्विज थे 'किलात' और 'आकुली' ॥१४॥

यह दोनों बोले, 'कहते हैं कि मनु श्रद्धालु है, इसको जाचें'। तब वे मनु के पास गये और कहा, 'हे मनु, हम तुम्हारे लिये यज्ञ करना चाहते हैं'। मनु ने पूछा 'किस से'। उन्होंने कहा, 'इस बैल से'। उसने कहा, 'अच्छा'। बैल के मरने पर वाणी वहाँ से चली गई ॥१५॥

वह मनु की पत्नी मनावी में घुस गई। जब वह उस को बोलते हुये सुनते तो राक्षस और असुर मर जाते। तब असुरों ने कहा, 'यह तो और भी बुरा हुआ क्योंकि (बैल की अपेक्षा) मनुष्य अधिक बोलता है'। तब किलात और आकुली ने कहा, 'मनु को श्रद्धालु कहते हैं, चलो इसकी जाच करें'। वे उसके पास गये और कहा, 'हम तुम्हारे लिये यज्ञ करना चाहते हैं'। मनु ने पूछा, 'किससे ?' उन्होंने कहा, 'इस तेरी पत्नी से'। उसने कहा, 'अस्तु', उसके मर जाने पर वाणी उसमे से निकल गई ॥१६॥

कुमारीने घोर तपस्या की। इस प्रकार तपमें लगी हुई उस कन्याके समीप राजसम्पदा उपस्थित हुई। उस समय इन्द्रने उसे प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा—'शुभे! तुम कन्यावस्थामें ऋतुकालको प्राप्त हुई हो, इस कारण सदोष हो गयी हो। अतः किसी पतिका वरण करो, जिससे पवित्रताको प्राप्त होओगी।' यह सुनकर उस कन्याको बड़ी लज्जा हुई। उसने वर्धमानपुरमें जाकर हाथ उठाकर कहा—'यदि कोई कुलीन ब्राह्मण मेरा पाणिग्रहण करे, तो मेरी आधी तपस्या उसकी हो जायगी और मैं उसका कल्याण करूँगी।'

यह सुनकर किसी कोढ़ी ब्राह्मणने उसे बुलाकर कहा—यदि तू सदा मेरे कहे अनुसार चले, तो मैं तेरा पाणिग्रहण करके तेरे साथ विवाह करूँगा।

कुमारी बोली—द्विजश्रेष्ठ! तुम शास्त्रोक्त विधिसे मेरा पाणिग्रहण करो, मैं तुम्हारी प्रत्येक आज्ञाका पालन करूँगी। तदनन्तर ब्राह्मणने गृह्यसूत्रोक्त विधानसे देवता, अग्नि तथा गुरुके समीप उस

1147 (1167 / 1394) हण किया। विवाहके पश्चात्

दीर्घिका ब्राह्मणी पतिसे बोली—'नाथ! आज्ञा

सदा नमस्कार करें, अन्न-पान देकर सदैव उनकी पूजामें संलग्न रहें। सभी ब्राह्मण सब प्रकारके दान लेनेके अधिकारी हैं। दूसरा कोई दान लेनेमें समर्थ नहीं है। यदि लोभवश कोई दान ग्रहण करता है तो वह अधम गतिको प्राप्त होता है। तपस्यासे पवित्र हुआ ब्राह्मण पापरहित होता है। अतः प्रतिग्रह लेकर वह कष्टमें नहीं पड़ता और न उसे कोई पाप लगता है। जो हृदयमें सदा पवित्र [illegible] लगा रहता [illegible] नहीं प्राप्त [illegible] लोक और [illegible] ब्राह्मण यदि [illegible] सकते हैं, [illegible] ये ही स्वर्गलोकमें पहुँचानेवाले सनातन देवदेव हैं। ब्राह्मण पूजनीय हैं, वन्दनीय हैं; उन्हींमें सब कुछ प्रतिष्ठित है। वे ही इन सब लोकोंका परस्पर पालन करते हैं। अपने स्वाध्याय और तपको प्रकट न करनेवाले ब्राह्मण उत्तम व्रतवाले हैं। जो विद्या और व्रतमें स्नात हैं, दूसरेके आश्रित न रहकर जीवन-निर्वाह करते हैं, वे ब्राह्मण कुपित होनेपर कालसर्प बन जाते हैं; अतः उनका पूजन करना चाहिये, उन्हें कुपित नहीं करना चाहिये। अध्यात्मस्वरूपका चिन्तन करनेवाले ब्राह्मण ही सब प्राणियोंकी गति हैं। ब्राह्मण यदि विपत्तिमें पड़ा हो तो उसकी सब उपायोंसे रक्षा करे। ये ब्राह्मण मनुष्योंद्वारा सर्वत्र पूजा पाने योग्य हैं। फिर जो अपने चित्तको संयममें रखनेवाले तथा विशेषतः पुण्यक्षेत्रके निवासी हैं, उनके विषयमें तो कहना ही क्या है। जो द्विज विधिपूर्वक क्षेत्र-संन्यास तथा वृत्तिभेदके क्रम जानते हैं, वे क्षेत्रके पूर्ण फलके भागी होते हैं। प्राजापत्य, महीपाल, कपोत, ग्रन्थिक, कुटिक, वेताल, पद्म, हंस, धृतराष्ट्र, वक, कंक, गोपाल, त्रुटिक, प्रवर, गुटिक तथा दण्डिक—ये क्षेत्रवासी ब्राह्मणोंके भेद हैं।

अहिंसा, गुरु-शुश्रूषा, स्वाध्याय, शौच, संयम, सत्य तथा अस्तेय (चोरीका अभाव)—यह

अब शिवजी जहाँ-जहाँ जाते थे, वहाँ-वहाँ संक्षुभित, कामार्त एवं मदसे विकल इन्द्रियोंवाली स्त्रियाँ भी जाने लगीं। मुनियोंकी वे स्त्रियाँ अपने आश्रमोंको सूना छोड़ उनका इस प्रकार अनुसरण करने लगीं, जैसे करेणु

मदमत्त गजका अनुसरण करे। मुने! यह देखकर ऋषिगण क्रुद्ध हो गये एवं कहा कि इनका लिङ्ग भूमिपर गिर जाय। फिर तो महादेवका लिङ्ग पृथ्वीको विदीर्ण करता हुआ गिर गया एवं तब नीललोहित त्रिशूली अन्तर्धान हो गये॥ ६३—६६॥

उत्तरमें परम पूजनीय परापरेश्वर लिंग है, जिसके दर्शनमात्रसे निर्मल ज्ञानकी प्राप्ति होती है। दण्डखात नामक महातीर्थके समीप जब ब्राह्मणलोग परम
… उस समय प्रह्लादके
… दुष्ट दैत्यने मन–
… देवताओंको किस
… सकता है। इसका
… निश्चय किया कि
ब्राह्मण ही देवताओंके सबल होनेमें कारण हैं, क्योंकि देवता यज्ञमें दिये हुए भागका ही आहार करते हैं। यज्ञ वेदोंसे सम्पन्न होते हैं और वे वेद ब्राह्मणोंके अधीन हैं। अतः ब्राह्मण ही देवताओंके बल हैं। यदि ब्राह्मण नष्ट हो जायँ तो वेद स्वयं नष्ट हो जायँगे और जब वेद नष्ट हो जायँगे तब यज्ञ तो नष्ट ही हैं। यज्ञोंका नाश होते ही देवताओंका आहार छिन जायगा। इस प्रकार निर्बल हुए देवतालोग सुगमतापूर्वक जीते जा सकते हैं। देवताओंके परास्त होनेपर मैं ही तीनों लोकोंका सम्माननीय सम्राट होऊँगा।' यह सोचकर उसने ब्राह्मणोंको ही मार डालनेका बार–बार उद्योग किया। काशीमें आकर उस मायावी दैत्यने कितने ही ब्राह्मणोंका वध किया। श्रेष्ठ द्विज जिस किसी ओर भी समिधा और कुशा लानेके लिये जाते, उधर ही वनमें उन सबको पकड़कर वह दुर्बुद्धि दैत्य …ना लेता था। उसका रूप किसीको दिखायी नहीं देता था। देवता लोग भी उस

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! यदि जो कोई भी प्राणी अनशनव्रत करके मृत्युका वरण करता है तो वह मानव-शरीर छोड़कर मेरे समान हो जाता है। निराहारव्रत करते हुए वह जितने दिन जीवित रहेगा, उतने दिन उसके लिये समग्र श्रेष्ठ दक्षिणासहित सम्पन्न किये गये यज्ञोंके समान हैं। यदि मनुष्य संन्यास-धर्मको स्वीकार करके तीर्थ अथवा घरमें अपने प्राणोंका परित्याग करता है तो उस अवधिमें वह प्रतिदिन पूर्वोक्त पुण्यका दुगुना फल प्राप्त करता है। शरीरमें महाभयंकर रोगके हो जानेपर अनशनव्रत करके जो मृत्युको प्राप्त करता है, पुनर्जन्म होनेपर उसके शरीरमें रोगकी उत्पत्ति नहीं होती है। वह देवतुल्य सुशोभित होता है। जो मनुष्य रुग्णावस्थामें संन्यास ग्रहण कर लेता है, वह इस दुःखमय अपार संसार-सागरकी भूमिपर पुनः जन्म नहीं लेता है।

हे गरुड! अपने बान्धवकी मृत्यु होनेपर उनके निमित्त बन्धुजन धर्मार्थ जो दान देते हैं, उसके विषयमें विशेष बात मैं कह रहा हूँ, उसको तुम सुनो।

हे पक्षिराज! अपने घरमें पहलेसे जो कुछ उपयुक्त वस्तु हो, उस मृतकके शरीरसे सम्बन्धित जो वस्त्र, पात्र और वाहन हो, जो कुछ उसको अभीष्ट रहा हो, वह सब एकत्र करे। शय्याके ऊपर भगवान् विष्णुकी स्वर्णमयी प्रतिमाको स्थापित करके विद्वान् व्यक्ति उनकी पूजा करे और जैसा पहले कहा गया है, उसीके अनुसार ब्राह्मणको उस मृतशय्याका दान कर दे।

शय्यादानके प्रभावसे प्राणीको प्राप्त होनेवाला सम्पूर्ण सुख इन्द्र और यमराजके घरमें विद्यमान रहता है। इसके प्रभावसे महाभयंकर मुखवाले यमदूत उसको पीड़ित नहीं करते हैं। वह मनुष्य यमलोकमें कहीं धूप और ठंडकसे कष्ट नहीं पाता है। शय्यादानके प्रभावसे प्रेत बन्धनमुक्त हो जाता है। इस दानसे पापी व्यक्ति भी स्वर्गलोक

संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ॥
याजनाध्यापनाद्यौनादन्नपानासनादपि ॥

इन सब विषयोंमें पंडितोंने कहा है कि, पतितके साथ एक वर्ष तक संग, एक वर्ष तक यज्ञ करना, पढाना, संबन्ध करना, भोजन, जलपान, बैठना इनके करनेसे मनुष्य पतित होता है ।

अथाप्युदाहरंति–

विद्या प्रनष्टा पुनरभ्युपैति जातिप्रणाशे त्विह सर्वनाशः ॥
कुलापदेशेन हयोऽपि पूज्यस्तस्मात्कुलीनां स्त्रियमुद्वहंतीति ॥

और यह भी कहा है कि "विद्या नष्ट होने पर फिर भी मिल सकती है, परन्तु जातिका नाश होने पर सर्व नाश हो जाता है, वंशकी मर्यादाके बलसे घोडा भी सन्मान पाता है इस कारण अच्छे वंशकी स्त्रीके साथ विवाह करे;"

त्रयो वर्णा ब्राह्मणस्य वशे वर्तेरन् तेषां ब्राह्मणो धर्मं यं ब्रूयात्तं राजा चानुतिष्ठेत्। राजा तु धर्मेणानुशासत् षष्ठं षष्ठं धनस्य हरेत् । अन्यत्र ब्राह्मणात् । इष्टापूर्तस्य तु षष्ठमंशं भजति ॥ इति ह ब्राह्मणो वेदमाढ्यं करोति । ब्राह्मण आपद उद्धरति । तस्माद्ब्राह्मणोऽनाद्यः सोमोऽस्य राजा भवतीतीह प्रेत्य चाभ्युदयिकमिति ह विज्ञायते ॥

इति श्रीवाशिष्ठे धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

वसिष्ठने कहा—हे राजन्! शास्त्रवेत्ता अनेक प्रकारके धर्मोंका वर्णन करते हैं, किंतु कर्ममार्गसे विमोहित जन सूक्ष्मतया उनको नहीं जानते। दान, तीर्थ, तपस्या, यज्ञ, संन्यास तथा पितृक्रिया आदि सभी धर्म हैं, उन धर्मोंमें भी वृषोत्सर्गका विशेष महत्त्व है। मनुष्यको बहुत-से पुत्रोंकी अभिलाषा करनी चाहिये। यदि उनमेंसे एक भी पुत्र गया-तीर्थमें जाय, अश्वमेधयज्ञ करे अथवा नील वृषभ यथाविधि छोड़े तो जाने-अनजाने किये गये ब्रह्महत्या आदि पाप भी विनष्ट हो जाते हैं। यह शुद्धि नील वर्णके वृषभका उत्सर्ग अथवा समुद्रमें स्नान करनेसे भी हो सकती है। हे राजेन्द्र! जिसके एकादशाहमें वृषोत्सर्ग नहीं होता, उसका प्रेतत्व स्थिर ही रहता है। मात्र श्राद्ध करनेसे क्या लाभ होगा? जिस-किसी भाँति नगर अथवा तीर्थमें वृषोत्सर्ग अवश्य करना चाहिये।

परित्याग तथा जितने मुख्य आचरण हैं, उनका परित्याग करता है और दूसरेके कर्ममें निरत रहता है वह निश्चित ही यमलोक जाता है।[१] जो शूद्र द्विज-सेवाके बिना अन्य कर्म करता है, वह यमलोक जाता है। तदनन्तर वह उत्तम-मध्यम या अधम कोटिवाले यमलोकमें पहुँचकर दुःख भोगता है।

जिस दिन स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय और देवपूजन नहीं होता है, मनुष्योंका वह दिन व्यर्थ ही जाता है—

स्नानं दानं जपो होमो स्वाध्यायो देवतार्चनम्॥
यस्मिन् दिने न सेव्यन्ते स वृथा दिवसो नृणाम्।

(२४। १७-१८)

रसोद्भूत यह शरीर अनित्य, अध्रुव तथा

विष्ठ
शरी
विन
जीव
वार्ण
जन्म
स्मर
करन
महा
आत
नहीं
जहाँ
वृद्धा

यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन.
क्व१ स्य पुल्वघो मृगः कमगञ्जनयोपनो विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः.. (२२)

हे इंद्र एवं वृषाकपि! तुम ऊपर को मुंह करके मेरे घर आओ. अनेक रसमय पदार्थों को खाने वाला तथा मनुष्यों को प्रसन्न करने वाला मृग कहां है? इंद्र सबसे श्रेष्ठ हैं. (२२)

पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम्.
भद्रं भल त्यस्या अभूद्यस्या उदरमामयद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः.. (२३)

हे इंद्र द्वारा छोड़े गए बाण! मनु की पुत्री पर्शु ने एक साथ बीस पुत्रों को जन्म दिया. जिसका पेट मोटा था, उसका कल्याण हुआ. इंद्र सबसे श्रेष्ठ हैं. (२३)

सूक्त—८७ देवता—राक्षसहंता अग्नि

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म.
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम्.. (१)

मैं राक्षसों के हंता शक्तिशाली यजमानों के मित्र और अधिक स्थूल अग्नि का घृत से हवन करता हूं एवं अग्नि के घर के पास जाता हूं. ज्वालाओं को तेज करने वाले अग्नि यजमानों द्वारा प्रज्वलित होते हैं. वे हमें हिंसक राक्षसों से रात-दिन बचावें. (१)

******ebook converter DEMO Watermarks*******

मार्कण्डेयजी कहते हैं—शालग्रामक्षेत्रमें हरिकेश नामसे विख्यात एक श्रेष्ठ ब्राह्मण रहते थे। वे शिल और उञ्छवृत्तिसे* जीवन-निर्वाह करते थे। बड़े ही धर्मात्मा और सत्यपरायण थे। उनकी धर्मपत्नी ब्राह्मणी भी उत्तम व्रतका पालन करनेवाली, यशस्विनी, पतिव्रता, परम सौभाग्यवती और पतिसेवामें संलग्न रहनेवाली थी। वह स्त्री समयपर रजस्वला हुई और ब्राह्मणने ऋतुकालमें उसके साथ सहवास किया। ब्राह्मणीके गर्भसे सौ पुत्र उत्पन्न हुए। वे सभी कपिलापुरमें रहते थे। ब्राह्मणदेवता शिलोञ्छवृत्तिके प्रयोगसे एक प्रस्थ अन्न प्रतिदिन उपार्जन करते थे। इससे उनके बच्चे भूखसे दुर्बल होकर बड़े करुण स्वरमें रोते रहते थे। बालकोंको भूखा देख माता शोक और पीड़ासे व्याकुल रहती थी। एक दिन वह अत्यन्त दुःखसे कातर हो पतिसे बोली, 'आर्यपुत्र! बूढ़े माता-पिता, साध्वी पत्नी और छोटी अवस्थावाले बालक—इन सबका प्रयत्नपूर्वक भरण-पोषण करना चाहिये, यही सनातन धर्म है। यों तो सभी पोष्यवर्गका भरण-पोषण आवश्यक है, परंतु पुत्रोंके पालन-पोषणपर तो विशेष ध्यान देना चाहिये।'

वस्तुका स्पर्श ही करे। उच्छिष्ट दशामें सूर्य, चन्द्रमा, तारे, देवता और अपने मस्तककी ओर देखना भी मना है। बहन, बेटी अथवा माताके साथ भी एकान्तमें न बैठे; क्योंकि इन्द्रिय-समुदाय दुर्जय होता है; उनसे विद्वान् पुरुष भी मोहमें पड़ जाते हैं।* यदि गुरुदेव घरपर आ जायँ तो उनके लिये स्वयं उठकर यत्नपूर्वक आसनकी व्यवस्था करे और चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम करे। विद्वान् मनुष्य उत्तर और पश्चिमकी ओर सिर करके कभी न सोवे। सिरहानेकी ओर दक्षिण दिशा अथवा पूर्वदिशाको रखकर शयन करना चाहिये। रजस्वला स्त्रीका दर्शन-स्पर्श न करे, उसके साथ बातचीत भी नहीं करनी चाहिये। जलके भीतर मल-मूत्र और मैथुन न करे। भगवान् शिवके भक्तको चाहिये कि वह अपने वैभवके अनुसार देवता, मनुष्य,

---

* ...त्रा मात्रा वा नैकान्तासनमाचरेत्। दुर्जयो हीन्द्रिय

165 (185 / 1394)

अपात्रीकरण पातक करनेपर एक मासतक चान्द्रायणव्रत करनेसे शुद्धि होती है। मलिनीकरण पातक होनेपर तीन दिनतक तप्तयावकका पान करे। क्षत्रियका वध करनेपर ब्रह्महत्याका चौथाई प्रायश्चित्त विहित है। वैश्यका वध करनेपर अष्टमांश, सदाचारी शूद्रका वध करनेपर षोडशांश प्रायश्चित्त करे। बिल्ली, नेवला, नीलकण्ठ, मेढक, कुत्ता, गोह, उलूक, काक अथवा चारोंमेंसे किसी वर्णकी स्त्रीकी हत्या होनेपर शूद्रहत्याका प्रायश्चित्त करे। स्त्रीकी अज्ञानवश हत्या करके भी शूद्रहत्याका प्रायश्चित्त करे। सर्पादिका वध होनेपर 'नक्तव्रत' और अस्थिहीन जीवोंकी हत्या होनेपर 'प्राणायाम' करे ॥ १८—२८ ॥

औषध अ
दूध पीकर
मित्रप
वीर्यपात व
फुफेरी ब
बहनसे ग
मनुष्येतर
अन्य स्था
मनुष्य 'कृ
स्त्रीके सा
मैथुन क
चाण्डाल
समागम

जातिमात्रोपजीवी वा कामं स्याद्ब्राह्मणब्रुवः ।
धर्मप्रवक्ता नृपतेर्न तु शूद्रः कथंचन ॥ २० ॥

केवल जातिसे जीविका करनेवाला, कर्मरहितभी, ब्राह्मण राजाकी ओरसे धर्मवक्ता होसक्ता है, परंतु शूद्र कभी नहीं हो सक्ता ॥ २० ॥

यस्य शूद्रस्तु कुरुते राज्ञो धर्मविवेचनम् ।
तस्य सीदति तद्राष्ट्रं पङ्के गौरिव पश्यतः ॥ २१ ॥

जिस राजाके यहां धर्मका विचार शूद्र करता है उसके देखते २ वह राज्य ऐसा दुखी होता है कि जैसे कीचमें फँसी गौ दुखी होती है ॥ २१ ॥

यद्राष्ट्रं शूद्रभूयिष्ठं नास्तिकाक्रान्तमद्विजम् ।
विनश्यत्याशु तत्कृत्स्नं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम् ॥ २२ ॥

जो राज्य बहुतसे शूद्रोंसे भरा, नास्तिकोंसे युक्त और द्विजरहित होता है वह सब देश अकाल और व्याधिसे पीड़ित हो शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ २२ ॥

धर्मासनमधिष्ठाय संवीताङ्गः समाहितः ।
प्रणम्य लोकपालेभ्यः कार्यदर्शनमारभेत् ॥ २३ ॥

वस्त्र पहिनकर, सावधान होकर, धर्मके आसनपर बैठकर और लोकपालों प्रणाम करके कार्यका देखना आरंभ करै ॥ २३ ॥

अर्थानर्थावुभौ बुद्ध्वा धर्माधर्मौ च केवलौ ।
वर्णक्रमेण सर्वाणि पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम् ॥ २४ ॥

के समान दण्डके योग्य है ॥ १८ ॥

वध्यो राज्ञा स वै शूद्रो जपहोमपरश्च यः ॥
यतो राष्ट्रस्य हंतासौ यथा वह्नेश्च वै जलम् ॥ १९ ॥

जप, होम इत्यादि ब्राह्मणोंके उचित कर्ममें रत होनेसे शूद्रका राजा वध करै, कारण कि जलधारा जिस प्रकारसे अग्निको नष्ट करती है, उसी प्रकारसे यह जप होममें तत्पर हुआ शूद्र सम्पूर्ण राज्यका नाश करता है ॥ १९ ॥

प्रतिग्रहोऽध्यापनं च तथाऽविक्रेयविक्रयः ॥
याज्यं चतुर्भिरप्येतैः क्षत्रविट्पतनं स्मृतम् ॥ २० ॥

---

१ शास्तिः शासनम् ।

अथाप्युदाहरंति-

विद्या प्रनष्टा पुनरभ्युपैति जातिप्रणाशे त्विह सर्वनाशः ॥
कुलापदेशेन हयोऽपि पूज्यस्तस्मात्कुलीनां स्त्रियमुद्वहंतीति ॥

और यह भी कहा है कि "विद्या नष्ट होने पर फिर भी मिल सकती है, परन्तु जाति-का नाश होने पर सर्व नाश हो जाता है, वंशकी मर्यादाके बलसे घोडा भी सन्मान पाता है इस कारण अच्छे वंशकी स्त्रीके साथ विवाह करे;"

त्रयो वर्णा ब्राह्मणस्य वशे वर्तेरन् तेषां ब्राह्मणो धर्मं यं ब्रूयात्तं राजा चानुतिष्ठेत्। राजा तु धर्मेणानुशासत् षष्ठं षष्ठं धनस्य हरेत् । अन्यत्र ब्राह्मणान् । इष्टापूर्तस्य तु षष्ठमंशं भजति ॥ इति ह ब्राह्मणो वेदमाद्यं करोति । ब्राह्मण आपद उद्धरति । तस्माद्ब्राह्मणोऽनाद्यः सोमोऽस्य राजा भवतीतीह प्रेत्य चाभ्यु दयिकमिति ह विज्ञायते ॥

इति श्रीवाशिष्ठे धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

तीन वर्णोंको ब्राह्मण वशमें रक्खे, ब्राह्मण उनको जिस धर्मका उपदेश दे राजा उसे प्रचलित करे, राजाके धर्मानुसार राज्य पालन करने पर ब्राह्मणको छोड कर और सब प्रजा से राजा छठा भाग ले, राजा ब्राह्मणोंके इष्टापूर्त्त धर्मकार्यके छठे भागको लेता है, यह प्रसिद्ध है कि ब्राह्मण ही वेदका आदि प्रकाशक है, ब्राह्मण ही सबको आपत्तियोंसे उद्धार करता है, इस कारण ब्राह्मण अनादि है और करग्रहण करनेके अयोग्य है, चन्द्रमा ब्राह्मणोंका राजा है, यही इसलोक और परलोकका कल्याण करनेवाला है यह विदित है ।

इति वशिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु.
दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि.. (४५)

हे अभिलाषापूरक इंद्र! तुम इस वधू को शोभन पुत्रों-वाली एवं सौभाग्यशालिनी बनाओ. तुम इसमें मुझे दस पुत्रों को दो एवं मेरे पति को ग्यारहवां करो. (४५)

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव.
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु.. (४६)

ऐसा कहा है कि, महीने २ में ऋतुमती होनेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं, वह स्त्री रजस्वला होने पर तीन दिन तक अशुद्ध रहती है, रजस्वला स्त्री नेत्रोंमें अंजन न लगावे, उबटन न करे जलमें स्नान न करे, पृथ्वी पर शयन करे, अग्निका स्पर्श न करे और रस्सीको न धोवे, दांतोंको न धोवे, मांसको न खाय, घरको न देखे, हँसे नहीं और कुछ कर्म न करे, छोटे पात्रमें अंजुलिसे जल न पिये और लोहेके पात्रसे भी जल पीनेका निषेध है, यह शास्त्रसे जाना गया है, कि इन्द्रने तीन शिरवाले त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपको मार कर अपनेको पापसे गृहीत माना तब उस इन्द्रको सब प्राणियोंने इस प्रकार कोशा कि, हे ब्रह्महत्या करनेवाले ३ तब वह इन्द्र स्त्रियोंके निकट जा कर यह बोला कि इस मेरी ब्रह्महत्याका पापका तीसरा

भाग तुम ग्रहण करो, स्त्रियोंने यह सुन कर कहा कि हमें क्या होगा, तब इन्द्रने कहा कि वर मांगो तब स्त्रियोंने कहा कि हमें ऋतुकालमें सन्तानकी प्राप्ति हो, तब इन्द्रने कहा कि हम आज्ञा देते हैं और प्रसन्न हो कर कहते हैं कि तुम्हें इच्छानुसार सन्तानकी प्राप्ति हो, फिर स्त्रियोंने कहा कि गर्भके रहने पर भी सन्तान होनेके समय तक हम पुरुषके साथ मैथुन करसकें एक वर हमको यह भी मिले; तब इन्द्रने कहा कि "अच्छा" ऐसा ही होगा, तब वह स्त्रियें उस हत्याका तीसरा भाग ग्रहण करती हुई, प्रत्येक महीने २ में वही हत्या प्रगट होती है; इस कारण रजस्वला स्त्रीने अन्न नहीं खाना इसी कारण रजस्वला स्त्री रजरूपी ब्रह्महत्याको महीने महीनेमें छोडके मुक्त होती है जैसे सर्प केंचलीको छोडके मुक्त हो जाता है।